http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

(११, १२, १३, १४ भाग);

[एकादश भाग]

●

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज

●

अज्ञानतिमिरांधानाम् ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

●

विश्वका स्वरूप— लोकमें दो प्रकारके पदार्थ होते हैं—एक चेतन, दूसरा अचेतन, जीव और अजीव । इन दो प्रकारके पदार्थोंमें समस्त पदार्थ गर्भित होते हैं। चेतनमें आया एक चेतन और अचेतनमें आये पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। पुद्गल उसे कहते हैं जो पूरे और गले। मिलकर बड़ा बन जाय, बिछुड़कर घट जाय। ऐसी बात जिनमें सम्भव है उनको पुद्गल कहते हैं। पुद्गलमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये चार गुण नियमसे होते हैं। हम आपको जो कुछ दिख रहा है यह सब पुद्गलका मायारूप है, इन दिखने वाले पदार्थोंमें जो परमार्थ अणु हैं वह तो पुद्गलका परमार्थ स्वरूप है, पर उन अणुवोंके मिल जानेसे जो एक यह स्कंध बन गया है यह मायारूप है। इसमें पुद्गल तत्व है। धर्मद्रव्य, जो समस्त लोकमें व्यापक है जिसके होनेके कारण जीव पुद्गल जब गमन करना चाहें तो गमन कर सकते हैं। जहां धर्म द्रव्य न हो वहां जीव पुद्गलका गमन नहीं हो सकता है। जैसे लोकके बाहर धर्म द्रव्य नहीं है तो वहां जीव पुद्गलभी नहीं है। धर्म द्रव्यकी तरह अधर्म द्रव्य भी इस लोकमें व्यापक है, जो चलते हुए जीव पुद्गलके ठहरनेमें सहायक होता है। आकाश द्रव्य तो सर्वव्यापक है, जहां पदार्थ ठहर सके वह आकाश द्रव्य है। काल द्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु है जो कि प्रति समय समय-समयरूप पर्यायसे परिणमन करता रहता है। इस कालद्रव्यके निमित्तसे समस्त पदार्थोंका परिणमन होता है। यों जगतमें चेतन और अचेतन दो प्रकारके पदार्थ पाए जाते हैं।

चेतन का सामर्थ्य—विश्व के समस्त पदार्थोंमें चेतन तो प्रतिभास स्वरूप है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानमय है, आनन्दका उपभोक्ता है और शेष अचेतन पदार्थ ज्ञान और आनन्दसे शून्य हैं। वे सब जड़ हैं, चेतन पदार्थोंमें क्या सामर्थ्य है उस सामर्थ्यपर विचार किया जाता है तो जो कोई पुरुष निष्पक्ष दृष्टिसे एकमात्र जानकारी ही करता है, किसी धर्म मजहबका कुछ भी परिचय रखे बिना अपने आप की जानकारी मात्रसे प्रयोजन है, इतना अभिप्राय रखकर समस्त पर पदार्थोंसे विकल्प हटाकर विश्राममें रहकर यदि अन्तः निरीक्षण करता है तो प्रत्येक मनुष्यको और मनुष्य ही क्या, पशुओं और पक्षियोंको भी अपने आपके स्वरूपका और सामर्थ्यका बोध हो सकता है। आत्मामें ज्ञान और आनंद स्वभाव है। ज्ञानका काम जानना है। जो भी हो सब जाननेमें आ जाय ऐसा यह ज्ञान स्वभाव सबको स्पष्ट जाननेके लिये, मानों गर्भित कर दे, इसके लिये तैयार बैठा रहता है। ज्ञानमें सारा लोकलोक भी आ जाय वह भी बिन्दुवत भासता है। ज्ञानकी ऐसी सामर्थ्य है कि ऐसे लोकालोक यदि अनगिनते भी होते तो भी सब ज्ञानमें समा जाता ज्ञान एक भाव है और भावस्वरूप द्रव्यमें है, इसलिये कितनेही पदार्थ जाननेमें आ जायें यहाँकी जगह भरती नहीं है, क्योंकि वह अमूर्त है, एक जाननभावको लिए हुए है। तो ज्ञानमें इतनी सामर्थ्य है कि समस्त सत् पदार्थ इसके ज्ञानमें आ जायें और तिसपर भी अनगिनतें गुने भी पदार्थ होते तो वे भी सब ज्ञानमें आते।

आत्मसामर्थ्य और वर्तमान दशा—ज्ञानस्वरूपका अतुल सामर्थ्य रखने वाले आत्मा की, हम आप सबकी जो कुछ आज दशा बन रही है वह दयनीय दशा है। कहाँ तो हम आपका वह वैभव, कि निस्तरंग नीरंग क्षोभ कषायरहित विशुद्ध ज्ञानके विकाससे पावन रहते और आत्मीय स्वाभाविक आनन्दका अनुभव करते और कैसी यह दशा बन रही है कि कोई कीड़ा मकौड़ा बन रहा है, कोई पशु सूकर, कुत्ता, गधा आदि बन रहे हैं, कोई मनुष्य भी बना है तो वह भी निरन्तर आकुलित रहता है। क्या स्थिति बन रही है इस भगवान आत्माकी? हम अपने वैभवका सामर्थ्य नहीं समझना चाहते और बाहरी विषय प्रसंगोंमें ही सुख मानते हैं जिनमें सार रंच भी नहीं है, क्या कर रहे हैं? धन जोड़कर क्या कर लिया जायगा? अपने आत्माको निरखकर उत्तर तो दीजिए जिसके लिए रात दिन व्याकुल रहते हैं इन मायामयी पुरुषोंमें जो स्वयं सब स्वार्थी हैं, अपने प्रयोजन बिना किसीका कुछ यश नाम भी कभी कह नहीं सकते, इन मायामयी जीवोंमें इस असार लोकमें तुम अपना क्या बताना चाहते, और अपना भी क्या, इस शरीरका। ये सब असार बातें हैं। इनसे मुक्त होनेका साहस जगेगा और ज्ञान वैभवके आवरणका विनाश होगा तो अतुल वैभव मिलेगा जो प्रभुमें विकसित है।

निरावरणताके विरोधमें अनादिमुक्तताकी कल्पना--अतुल वैभवकी चर्चा सुनते हुएमें सर्वज्ञका अलौकिक वैभव क्या है उस विभूतिको सुनते हुए कोई पुरुष शंका कर रहा है कि ऐसा भी कोई प्रभु सर्वज्ञ होता है क्या कि जिसके पहिले तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आवरण हो, कर्मोंसे दबा हो और फिर कर्मोंका वियोग हो तब वह सर्वज्ञ बने, प्रभु बने, ईश्वर बने यह बात हमारी समझमें नहीं आती। शंकाकारका आशय यह है कि ईश्वर तो एक ही होता है लोकमें, और वह अनादि कालसे कर्मोंसे, आवरणोंसे, बन्धनोंसे मुक्त रहा करता है वह इस सारे विश्वका मालिक है और वही इस लोककी रचना किया करता है। ऐसे आशयको रखकर शंकाकार कह रहा है कि कर्मोंका आवरण हो और फिर उसका वियोग हो तब सर्वज्ञ बने, उसका ज्ञान बने यह बात गलत है क्योंकि ईश्वर तो अनादिकालसे ही मुक्त है। उसमें आवरण सम्भव नहीं है।

यथार्थश्रद्धानसहायक उपयोगी प्रकरणोंको समझनेका अनुरोध—देखिये अब जो प्रकरण चलेगा—१०-१५ दिन, यह प्रकरण अपने आपकी श्रद्धा सही बनानेके लिए और भ्रमभरी बातोंका संस्कार मिटानेके लिए बहुत उपयोगी प्रकरण होगा। जिसके अभिप्रायमें यह बात बैठी है कि हम लोग किसी गिनतीके नहीं हैं, हम में कुछ सामर्थ्य नहीं है, हम तो एक दास हैं, ईश्वर जिस प्रकार हमें बनायेगा, नरक स्वर्ग जहां पटकेगा, जो सुख दुःख देना चाहेगा, सब उसकी मर्जी पर है, हम अपनेमें कुछभी पुरुषार्थ कर सकने वाले नहीं हैं, इस प्रकारका अभिप्राय रखकर जो अपनेको कायर बना रहे हैं, दीनता रखते हैं और अतुल जो समाधि है, ज्ञानप्रकाश है उस प्रकाशमें रहनेका, पहुँचनेका साहस भी नहीं जिनके जग पाता है, ऐसा भ्रमका संस्कार जब तक रहता है तब तक यह जीव क्या कर सकता है ? यह आत्मा स्वयं ज्ञानानन्द-स्वरूप है। यहां ज्ञान जब पूर्ण विकसित हो जाता है, आवरण समस्त हट जाते हैं तो यह ज्ञान परिपूर्ण शुद्ध बनता है और वहां जन्ममरण आदिक समस्त संकट मिट जाते हैं। आत्माको तो हित चाहिए। जिस प्रकार हित हो उसी प्रकारकी बुद्धि और यत्न ही तो करना है। और वहभी बनावटसे नहीं करना, दिखावटसे नहीं करना है, किंतु जो यथार्थ है, स्वरूपमें है, स्वाभाविक है, सुगम है, स्वाधीन है वही तो करना है जब अपने आपके सत्वका ही निर्णय न हो, अपने सामर्थ्यका, गुणका, विकासका, विलास का, लीलाका कुछ पताही न हो। केवल एक किसी पर पदार्थकी आशा रखकर उस ही की भक्ति करके दीनता ही बनायी जाती रहे तो आत्मा जन्ममरणके संकटोंसे मुक्त कब हो सकेगा ? इन सब समस्याओंको सुलझानेके लिये यह प्रकरण बहुत काम देगा।

कर्मोंसे छूटे बिना मुक्त कहनेकी असङ्गतता—यहाँ आत्माका सामर्थ्य न समझ सकने वाला शङ्काकार कर रहा है कि ईश्वर तो अनादिमुक्त होता है। उसके तो कर्मोंका आवरण भी कभी नहीं रहा। तब फिर यह कहना कि जब आवरण सब हट जाते हैं तो अशेष वेदी विज्ञान उत्पन्न होता है, यह बात अयुक्त है। समाधानमें कहा जा रहा है कि ईश्वर कोई भी अनादिमुक्त सिद्ध नहीं है, क्योंकि पहले तो मुक्त ही नाम किसका है ? जो छूट गया ! किससे छूट गया, वह तो कुछ बताना चाहिए। जिससे छूट गया वह छूटना तब ही सम्भव है जबकि पहिले लगा हो। अबसे कितने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही अनन्त काल पहिले जो भी मुक्त हुए वे यद्यपि अब तक भी मुक्त हैं और अनन्त काल तक मुक्त रहेंगे, किन्तु प्रारम्भमें वे भी कर्मोंसे सहित थे और रत्नत्रयके उपाय से कर्मोंका आवरण उनका दूर हुआ और वे मुक्त हुए। ईश्वर अनादिमुक्त नहीं होता मुक्त होनेसे, अन्य मुक्तोंकी तरह।

द्विविध मुक्त मानने वालोंका आशय - इस सम्बन्धमें शङ्काकारका एक मंतव्य भी जान लीजिये। शङ्काकार यह मान रहा है कि एक ईश्वर तो अनादिमुक्त होता है और बाकी इन जीवोंमें जो कोई भी ईश्वरकी भक्ति करे और उसके नामपर तपश्चरण करे तो वह भी मुक्त हो जाता है। तो बाकीके जो लोग कर्मोंसे मुक्त हुए, मुक्त होकर प्रभु बने वे तो कर्मोंसे सहित थे पहिले, लेकिन वह मूलका एक ईश्वर कर्मोंसे अनादिकालसे ही रहित था। उस मुक्तमें इन मुक्तोंमें एक फर्क भी मानना है कि कर्मोंसे मुक्त होकर जो प्रभु बने उसे तो किसी दिन वह ईश्वर संसारमें पुनर्जन्मके लिए भेज देगा कि फिर जावो और जन्म लो, क्योंकि उसके सामने एक समस्या है कि ऐसे सभी मुक्त हो जायेंगे। तो फिर संसारमें फिर करनेके लिए उसे काम ही क्या रहेगा? सो कर्ममुक्त प्रभु चिर काल तक मुक्त बना रहता है, पर बहुत समयके बाद वह संसारमें पुनः जन्म लेता है। इसे यदि थोथा साम्य रखकर समझना है तो यों समझ लीजिए कि जैन शासनमें बताते हैं कि नवग्रैवेयकमें भी मिथ्यादृष्टि अथवा अभव्य पहुंच जाते हैं लेकिन सदा तो नहीं रह सकते। भले ही वहाँ ३१ सागर तककी आयु है। आखिर अन्त उसका भी होता है। यहाँ जन्म मरण लेना पड़ता है। तो कुछ ऐसा ही समझकर उन्होंने प्रभुका स्वरूप यों माना है।

निरावरण होनेके कारण मुक्ति और अशेषवेदित्व अब प्राकरणिक बात कहते हैं कि जैसे अन्य मुक्त कर्मोंसे मुक्त हुए हैं इसी प्रकार यह ईश्वर भी मुक्त है, सो कर्मोंसे मुक्त हुआ है। मुक्त नाम ही उसका है जिसको पहिले बन्धन था और और अब बन्धन नहीं रहा तो वह मुक्त हो गया। जिसमें बन्धन नहीं है, उसे मुक्त तो नहीं कहा जा सकता। कोई पुरुष किसी कहे जिसका घर बड़ा कुलीन है, सदाचारी है और कह दे कि आपके पिता तो जेलखानेसे मुक्त हो गए तो वह अच्छा तो न मानेगा। और असत्य भी है जेल कभी गया ही नहीं है, तो मुक्त कैसे कहा जा सकता है। मुक्त नाम उसमें ही पड़ता, जो कर्म बन्धनसे लिप्त था, अनादिमुक्त कोई ईश्वर नहीं है तब यह मानना चाहिए कि इस जीवपर अनादिसे आवरण पड़ा हुआ उस आवरणका वियोग होनेसे उसके अशेषवेदी विज्ञान उत्पन्न होता है। ऐसा ज्ञान समस्त विश्वको, लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जान लेता है।

सृष्टिकर्तृत्व हेतु देकर ईश्वरको अनादिमुक्त माननेका अभिमत— अब शङ्काकार कहता है कि ईश्वर वह एक अनादि मुक्त ही है। यदि अनादिमुक्त न होता तो अनादिकालसे इन पृथ्वी पहाड़ आदिकको जो करता आया है, बनाता आया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है यह कैसे सम्भव होता ? चूंकि ईश्वरने नदी पहाड़, जमीन, सूर्य, चन्द्र आदिक सब कुछ बनाया है इस कारणसे वह अनादि मुक्त है और सबसे विशिष्ट है, फिर यह शङ्काकार कह रहा है, और यह भी नहीं कि ईश्वर इस सब लोकका कर्ता नहीं होता है, क्योंकि अनुमान बनाकर देख लीजिए पृथ्वी आदिक समस्त पदार्थ, पदार्थ किसी न किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं क्योंकि कार्य होनेसे। सब काम हैं ना। जैसे खम्भा छत ये सब काम हैं तो किसीके द्वारा बनाये गए हैं ना ये जमीन आकाश सूर्य चन्द्र पहाड़ नदियां आदिक भी कार्य हैं सो किसी न किसी ज्ञान वालेके द्वारा बनाये गये हैं। जो जो कार्य होते हैं वे वे किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए देखे जाते हैं, जैसे ये जमीन आदिक इस कारण किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं। कोई कहे कि पृथ्वी पहाड़ आदिक तो कार्य हैं ही नहीं, तो शङ्काकार कह रहा है कि पृथ्वी पहाड़ आदिक कार्य हैं क्योंकि ये अवयव सहित है, प्रचयरूप हैं, जो जो पदार्थ अवयव सहित हैं, प्रचयरूप हैं वे कार्य हुआ करते हैं। जैसे ये घड़ी तख्त खम्भा ये अवयव सहित हैं तो कार्य हैं ना, तो ये पृथ्वी आदिक भी अवयव सहित हैं। अतएव कार्य हैं। शङ्काकारका आशय यह है कि इन खम्भा घड़ी आदिकको तो यह मनुष्य बना लेता है पर ये जो पर्वत आदिक हैं ये मनुष्यके द्वारा नहीं बनाये जा सकते हैं। इतनी सामर्थ्य मनुष्यमें नहीं है सो किसी बहुत बड़े शक्तिमान अनादिमुक्त ईश्वरद्वारा बनाया गया है।

पदार्थस्वरूपके निर्णय बिना शान्तिमार्गका अलाभ – देखिये–जब तक पदार्थके स्वरूपका निर्णय न होगा तब तक कल्याण नहीं हो सकता। अपने आपका ज्ञानबल बढ़ाये बिना, स्वरूपका यथार्थ निर्णय किये बिना जो जैसा कह देगा भक्तिमें आकर, बहती श्रद्धामें आकर वह सब मान जायेगा। आजकल पुराणोंके नामपर, मजहबोंके नामपर ऐसी-ऐसी बातें भी मान डालते हैं जो कल्पना तकमें नहीं आ सकतीं पदार्थके स्वरूपका निर्णय करिये। ये समस्त पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक हैं। कोई इसे त्रिगुणात्मक भी कहते––पदार्थ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणकरि व्याप्त हैं। पदार्थमें यह स्वरूप पड़ा हुआ है हाथमें लेकर भी इस बातको बताया जा सकता है। कोई छोटा फल, रसीला फल ले लो और बतावो-देखो यह फल है, गोल है, इस सकलमें है, और वही मसल कर बतादो कि देखो यह फलका व्यय हो गया है, अथवा बादामको ही फोड़कर जलाकर बता दो कि देखो यह राख हो गया। बादाम तो न रहा, लेकिन जो आधारभूत तत्त्व, द्रव्य, उसकी शक्ति अथवा पदार्थ जो भी है वह तो कहीं नहीं गया। वह तो पहिले भी था और अब भी है। तो उस शक्तिकी अपेक्षा तो वह ध्रुव रहा किन्तु उसने अपनी सकलको परिवर्तित कर दिया तो वहां एक पर्यायका व्यय हुआ और एक पर्यायका उत्पाद हुआ। ऐसा समस्त पदार्थोंका स्वरूप है, चाहे उसका यह परिवर्तन समझमें आये तो, न आये तो। जहां उत्पादव्यय ध्रौव्य नहीं होता वह सत् ही नहीं है चाहे कोई चेतन हो, निगोद हो, सिद्ध हो, प्रभु हो, आकाश हो कोई भी सत् हो वह नियमसे उत्पादव्यय ध्रौव्य वाला है। किसीका उत्पाद व्यय समान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चल रहा है तो समझमें परिवर्तन नहीं आता।

शुद्ध पदार्थमें उत्पादव्ययध्रौव्यमयी झांकी—सिद्ध पदार्थ है अनादि सिद्ध है, उसका परिणमन भी समझमें नहीं आ पा रहा क्योंकि वह एक तो अमूर्त है और पर पदार्थ है, दूसरे उसका समान-समान परिणमन है, और इस ही बुनियादपर कि समान समान परिणमन होता है, सिद्ध पदार्थमें हमें सिद्धका भी उत्पादव्यय समझमें नहीं आता। लेकिन यह तो बतावो कि कोई पुरुष एक मनका बोझ शिरपर रखकर खड़ा हो और वह ५ मिनट तक बराबर निष्कम्प उसी तरह खड़ा है तो उसके संबधमें क्या यह कहा जाना युक्त है कि पहिले सेकेण्डमें इसने जो काम किया, बोझ लादा वही काम तो ५ मिनटसे कर रहा है, कोई नया काम तो नहीं कर रहा। अरे नये कामके निषेध करने वाले पर वह बोझ उठाकर धर दो, फिर पूछो कि तुम अब ५ मिनट तक नया-नया काम कर रहे हो कि नहीं। अगर नहीं कर रहे तो बांधकर ऐसे ही छोड़कर चल दो, पड़ा रहेगा दो चार घंटे, तो वह चिल्लायेगा, अरे बोझ उठालो, मरे जा रहे हैं। अरे कहां मरे जा रहे 'तुम तो कुछ नया काम ही नहीं कर रहे' अरे जो बार-बार अपनी शक्ति लगा रहा है वह प्रति समयका नया नया काम है या नहीं? यों ही प्रभु जानगए एक ही समयमें सारे विश्वको, पर प्रति समयमें जानते रहें, जानते रहें, क्या यह नया, नया परिणमन, सो हम उसमें परिवर्तन नहीं समझ पाते। लेकिन उत्पाद व्यय सर्वत्र चलता है। तो ये पृथ्वी आदिक पदार्थभी उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्व-भाव वाले हैं। सो अपने ही स्वभावके कारण बनते हैं, बिगड़ते हैं, रहते हैं, अनादिसे व्यवस्था है। इस मर्मके पहिचाने बिना दुनिया कहती है कि हम सबको तो किसी एक भगवानने बनाया है। उस ही प्रसंगका यह प्रकरण चल रहा है।

असत्की उत्पत्तिकी असंभवता—जगतके प्रत्येक पदार्थ अपना अपना सत्व रखते हैं और उस ही सत्वके कारण उनमें यह प्रकृति पड़ी हुई है कि वह प्रतिसमय नवीन पर्यायमें आये और पुरानी पर्यायका विलय करे। इस मर्मको न जानकर ही विमुग्ध पुरुषोंको ऐसी कल्पना जगती है कि आखिर ये सब कोई चीज हैं तो इनका कोई बनाने वाला है। एक मूल बातपर ही दृष्टि दे कोई तो भी यह बात नहीं ठहर सकती है। जो असत् है, जो है नहीं वह त्रिकालमें भी सत् नहीं हो सकता है। कुछ भी बने तो किस रूपमें बने, क्या आधार पाकर बने किसमें परिणति बने, और कुछ यदि पहिले सत् है जिसका कि कुछ बनाया गया, जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है तो पहिलेसे सद्भूत मिट्टी है, उसका परिणमन रचता है तो इस प्रकार यदि कुछ सत् है, जिसे किसी एक ईश्वरने बनाया है तो वह सत् था ही, सत्की उत्पत्ति तो नहीं हुई। तो असत्का कोई सद्भाव नहीं होता, सत्का कभी विनाश नहीं होता। साथ ही जो सत् है उस सत्में ये तीन बातें पायी ही जाती हैं। अन्यथा सत् नाम किसका? सत् का लक्षण ही यह है—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। किन्तु, तत्वज्ञता जब नहीं होती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है जब इतनी बात समझमें नहीं बैठती तो तब कोई कर्ता है, ईश्वर अथवा बुद्धिमान, ऐसी कल्पना जगती है।

ईश्वरकी उत्कृष्ट आदर्शरूपताके समर्थनका प्रयास—भैया ! इस प्रसंगमें यह दृष्टि रखकर सुनना है कि इसमें ईश्वरका निरावरण नहीं है किन्तु ईश्वरका उत्कृष्ट रूप रखनेके लिये यह प्रसंग बना है। प्रभु अनन्त ज्ञानमय है, अनन्त द्रष्टा है। अनन्त शान्ति है उनमें और वे प्रभु अनन्त आनन्दमय रहते हैं। वे समस्त कलंकोंसे मुक्त हैं, वे योगीश्वरोंके लिये आदर्श रूप हैं। वे योगीश्वर दीनतापूर्वक भगवानकी भक्ति नहीं किया करते कि हे प्रभो, तेरे ही हाथ मेरा जन्म मरण है, तेरे ही हाथ मेरी सुगति दुर्गति है, तेरे ही हाथ मेरा सुख दुःख है, इसलिए प्रभु दया कर। इसमें भक्ति कहां उमड़ी है। भक्ति उमड़ती है गुणोंके प्रेमसे। कोई यदि कर्ता धर्ता है तो उसकी भक्ति तो डरसे बनेगी। जैसे छोटे बालक लोग पिताके गुणोंके प्रेमसे वशीभूत नहीं रहते किन्तु पीटेंगे, डाटेंगे, दण्ड देंगे, इन डरोंसे वे उनकी आज्ञामें रहते हैं, किन्तु शिष्यजन अपने गुरुके प्रति डरसे भक्ति नहीं करते किन्तु वे गुणानुरागसे भक्ति करते हैं। तो प्रभु आदर्शरूप हुआ, ज्ञानदर्शन शक्ति आनन्दमय है, कृतकृत्य है, अनन्त निराकुलता है, यह स्वरूप समझमें आये तो प्रभुके सच्चे हृदयसे भक्त बन सकते हैं। और, वे हम लोगोंको सुख दुःख देते हैं ऐसा भाव रखकर भक्ति करे तो डरकी वजह से भक्ति हुई। ईश्वरका उत्कृष्ट विशुद्ध आदर्श रूप बतानेके लिए यह प्रकरण है।

लोककर्तत्वके अनुमानमें शंकाकार द्वारा दिये गये कार्यत्व हेतुके समर्थक सावयवत्व हेतुमें तीन विकल्प पदार्थोंके स्वरूप अथवा धर्मसे अनभिज्ञ पुरुष यह शंका कर रहे थे कि ये पृथ्वी, पर्वत आदिक जितने भी पदार्थ हैं ये किसी न किसी उत्कृष्ट बुद्धिमानके द्वारा बनाए गए हैं क्योंकि ये कार्य हैं। ये सब पदार्थ कार्य हैं क्योंकि सावयव हैं अवयव सहित हैं, जिसकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई है, यह पिण्ड रूप है, इसमें अनेक अवयव हिस्से पाए जाते हैं, जो अनेक हिस्सोंका पिण्ड हो वह किसी न किसीके द्वारा किया गया है। जैसे घड़ा अनेक हिस्सोंका पिण्ड है, सावयव है तो देखो ना—वह कुम्हारके द्वारा किया गया है तो ये पहाड़, पृथ्वी आदिक ये सावयव हैं तो ये भी किसीके कार्य हैं। इस शंकाके समाधानमें वस्तुस्वरूपवादी यह पूछ रहा है कि तुमने सावयवताका क्या अर्थ समझा ? क्या उसका यह अर्थ है कि ये सारे पदार्थ हिस्सोंके साथ वर्तमान हैं, अपने अवयवोंके साथ रहते हैं। अथवा यह अर्थ है कि अवयवोंसे हमारी उन्नति हुई है, या यह भाव समझा है कि यह सावयव है ऐसा हमारे ज्ञानने विषय हुआ है। इस कारण यह कार्य है। तीन विकल्प रखे गए हैं—कार्यत्वहेतु को सिद्ध करनेके लिए जो सावयत्वकी युक्ति दी उनके अर्थमें।

अवयवोंके साथ वर्तमान होनेरूप सावयत्वहेतुका निराकरण—सावयवका अर्थ तो ठीक नहीं बैठता यह, कि अवयवोंके साथ वर्तमान है पदार्थ इस कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह कार्य है । जो जो अवयवोंके साथ रहे, आकार प्रकार जिनके साथ रहे इस कारण सावयव माना जाय और किसीका कार्य माना जाय तो इसमें अनैकांतिक दोष आता है । मनुष्यत्व सामान्य, गोत्व सामान्य, यह अवयवोंके साथ रहा है, पर किसीका कार्य नहीं है । जैसे सैकड़ों गायें खड़ी हैं–कोई मुंडी है, कोई पीली है, चितकबरी है, छोटी है मोटी है, बड़ी है, बूढ़ी है, दुधार है, कितनी ही तरहकी गायें हैं उन सब गायोंमें जो गोत्व सामान्य है वह सामान्य क्या उन गायोंको छोड़कर अलग रहता है उन ही अवयवोंके साथ, उन ही आकार प्रकारोंके साथ वह गोत्व सामान्य है तो क्या जो जो अवयवोंके साथ वर्तमान है वह किसीका कार्य होता है इसको सिद्ध कर सकते हैं यहां। गोत्व सामान्य किसीका कार्य नहीं है और रह रहा अवयवोंके साथ, इस कारण यह कहना कि जो सावयव हो वह किसीका कार्य होता ही है, यह असंगत ठहरा ।

अवयवोंसे जन्यमानत्वरूप सावयवत्वरूप हेतुका निराकरण—यदि कहो कि हम सावयवताका यह अर्थ समझते हैं कि अवयवोंके द्वारा ये पदार्थ उत्पन्न हुए हैं तो वह अवयव प्रत्यक्षसे सिद्ध ही नहीं है । परमाणु आदिक अवयव जिसके द्वारा ये पदार्थ रचे गए माने जा रहे हैं वे परमाणु आदिक पदार्थ प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं हैं, फिर यह पृथ्वी आदि उन अवयवोंसे उत्पन्न होती है यह सिद्ध कैसे हो सकता है ? अब शङ्काकार इस विषयमें कह रहा है कि ये सब परमाणुवोंसे अवयवोंसे जन्य हैं, इसकी सिद्धि हम करते हैं । देखिये ! द्वयणुकादिक जितने भी ये पदार्थ हैं, दिखने वाले जितने पदार्थ हैं ये सब महा परिमाण वाले पदार्थ छोटे परिमाण वाली किसी चीजसे रचे गए हैं, क्योंकि कार्य होनेसे । जो जो कार्य होते हैं और जितने बड़े परिमाण वाले कार्य होते हैं वे अपनेसे छोटे परिमाण वाली चीजसे मिलकर रचकर बनते हैं । शङ्काकार उदाहरण भी दे रहा है, जैसे कपड़ा बहुत बड़ी चीज है, पर वह तंतु जैसे अल्प परिमाण वाले सूतसे बना है ना, तो जो बड़ी चीज होती है वह अल्प परि, माण वाली चीजसे मिलकर बनती है । और ते पृथ्वी पर्वत आदिक बड़े परिमाणकी चीजें हैं तो ये छोटे परमाणुकी चीजोंसे बनाये गए हैं और जो छोटे परमाणु वाली चीज है बस वह अवयव है, वह ही परमाणु है । इस अनुमानसे शङ्काकार कार्यपना सिद्ध तो कर रहा है, किन्तु इसमें एक चक्रक दोष आता है, वह किस प्रकार कि जब परमाणु सिद्ध हो जाय कि परमाणु होता है कुछ तब तो यह सिद्ध हो कि उन परमाणुवोंके द्वारा ये स्कंध रचे गए हैं, इस कारण ये सावय हैं, और जब ये पृथ्वी आदिक सावय हैं यह सिद्ध हो जाय तब यह पृथ्वी कार्य है यह सिद्ध होगा और जब ये सब कार्य सिद्ध हो जायें तब परमाणुकी सिद्धि होगी । शंकाकारका यह कहना है कि जो बहुत बड़े परिमाणकी चीज होती है वह छोटे परिमाण वाली चीजसे बनती है तो आटेके हो छोटे छोटे कण उन सब कणोंके कारणसे बनी है, तो चूंकि यह महा परिमाण वाली चीज है रोटी तो छोटे परिमाण वाले आटेमें कणोंसे उस रोटीकी उत्पत्ति हुई है । तभी इस आटेका नाम बुन्देलखण्डमें कनक पड़ा । कनकका अर्थ है कणक ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कण और कणक। अत्यन्त छोटे छोटे कणोंको कनक कहते हैं। उन कनकोंसे उस महा परिमाण वाले भोजनकी उत्पत्ति हुई है तो ये भी पर्वत, पृथ्वी आदिक ये सब बड़े बड़े परिमाणकी वस्तुवें हैं। यह ही यहां शंकाकार सिद्ध कर रहे हैं कि छोटे २ आकार प्रकार वाली चीजोंसे रचा गया है पर इसमें चक्रक दोष आता है।

अल्पपरिमाणीसे महापरिमाणीकी जन्यताका अनियम—अल्पपरिमाण से महापरिमाणकी जन्यतासे अवयवोंसे जन्यता माननेमें दूसरी बात यह है कि तुम कहते हो कि छोटे परिमाण वाली चीजसे बड़े परिमाणकी चीज बनती है किन्तु बात कहीं कहीं उससे उल्टी भी देखी जाती है। बहुत बड़े परिमाण वाली चीजसे छोटे परिमाण वाली चीज बनती है। जैसे रूई बहुत बड़े विस्तार वाली चीज है, एक किलो रूई बहुत सी जगह घेरती है, पर उस बड़े परिमाणवाली रुईसे एक चार अंगुल लम्बी चौड़ी मोटी चीज बनायी जा सकती है। उस परमाणुको घटाकर दबाकर प्रेस करके बहुत छोटे रूपमें उसे किया जा सकता है, तो बहुत बड़े परिमाणकी चीजसे भी छोटे परमाणकी चीज बन जाती है अतः यह नियम नहीं बना कि महा परिमाण वाले पदार्थ अल्प परिमाण वाले पदार्थसे रचे गए हैं इस कारण ये सावयव हैं और कार्य हैं और कार्य हैं तो किसी न किसीके द्वारा रचे गए हैं, यह बात संगत नहीं बैठती है। तो उन परमाणुओंकी ही सिद्धि नहीं है जिन परमाणुओं से सावयव पदार्थोंकी कल्पना की जाय। तो ये पदार्थ सावयव हैं, पिंड वाले हैं यह बात सही नहीं बैठी।

सावयवरूपसे ज्ञानविषयताकी सावयवताका निराकरण यदि तीसरा पक्ष लोगे कि हम तो सावयवका यह अर्थ करते हैं कि हमारे ज्ञानमें जिस पदार्थके सम्बन्धमें ऐसी बात बैठ जाय कि यह पदार्थ सावयव है तो सावयव है ऐसी बुद्धिका विषयपना आनेका नाम ही सावयव है। यों इसका आत्मा आदिक पदार्थोंके साथ अनैकांतिक दोष होगा। आत्माके सम्बन्धमें विचार करो—क्या यह आत्मा परमाणुकी तरह एक बिन्दु मात्र है? अथवा कुछ बड़े परिमाणको लिए हुए है। जरा अनुभवसे भी विचारों। अनुभव यह कहता है कि इस समय हम जितने बड़े शरीरको लादे हुए हैं बस उतनेमें फैले हुए हम हैं। कहीं वेदना हुई तो वह वेदना केवल उस जगह नहीं होती जिस जगह काटा लगा हो या कुछ बात हुई हो? वेदनाका अनुभव समस्त प्रदेशोंमें होता है, इसी प्रकार ज्ञानका भी अनुभव है। जब कभी ऐसा लगता है कि मेरी इस अंगुलीमें दर्द है तो उस अंगुली भरमें वह दर्द नहीं है। अरे उस समय उस वेदनाका अनुभव यह दिलमें भी तो कर रहा है। दिलमें ही क्या, सर्वत्र आत्म प्रदेशमें अनुभव हो रहा है। अंगुलीमें तो वह यों समझता है कि उस वेदनाकी उत्पत्ति इस अंगुलीके फोड़ेके निमित्तसे हुई है तो जिस निमित्तको पाकर वेदना जगी है इस मोही की दृष्टि उस निमित्त पर अधिक रहती है और ऐसी आकृष्ट दृष्टि हो गई है कि यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समझता है कि यह वेदना है, और कोई पूछे तो बताता भी है कि यहां नहीं, जरा और सरको, यहां है वेदना। उस वेदनाके जाननेका जो प्रयोग किया गया है वह निमित्तसे ढूंढ़नेका प्रयोग है। निमित्त वेदनाको माननेका प्रयोग नहीं है। जब आत्मा महा परिमाणवाला हुआ, जितने जितने देहमें जो जो बस रहा है वह वह आत्मा उतने परिमाणवाला तो है ही। तो अब जो महापरिमाण वाला हो उसमें सावयवकी कल्पना हो सकती है ना। अब देखो आत्मा सावयव है फिर भी किसीका कार्य नहीं इससे सावयव हेतु सदोष है।

अखण्ड आत्माकी असंख्यात प्रदेशरूपता—आत्मा असंख्यातप्रदेशी है। एक प्रदेशके मायने एक परमाणु आकाशके जितने हिस्सोंको रोक सके उतनेको एक प्रदेश कहते हैं। एक सूईकी नोकसे कागज पर छोटासा बिन्दु बना दिया जाय, जरा सा निशान कर दिया जाय तो उस उतने निशानमें असंख्यात प्रदेश हुआ करते हैं हजार लाख प्रदेश की बात नहीं, असंख्यात प्रदेश हुआ करते हैं और यह सारा लोक जो ३४३ घन राजू प्रमाण है इतने बड़े लोकमें भी असंख्यात ही प्रदेश हैं। असंख्यात असंख्यात प्रकारके होते हैं, तो ऐसे ऐसे एक एक प्रदेशकी कल्पनाके माध्यमसे इस आत्माको निरखा जाय तो यह आत्मा असंख्यात प्रदेशी है, लेकिन है अखण्ड। असंख्यात प्रदेशी होने पर कभी भी यह न हो सकेगा कि जैसे यह अनन्तप्रदेशी आत्मा अनन्त परमाणु वाले स्कंध टूट फूटकर अलग हो जाते हैं, बिखर जाते हैं। इस तरह असंख्यातप्रदेशी आत्मा टूट फूटकर बिखर जाय, खण्ड खण्ड हो जाए, यह कभी नहीं हो सकता। वह तो समस्त एक अखण्ड आत्मा है।

आत्माकी अखण्ड सावयवताके सम्बन्धमें एक प्रश्नोत्तर—कभी कोई यह शङ्का कर सकता है कि जब छिपकलियाँ परस्परमें लड़ती हैं तो किसी न किसी किसी छिपकलीकी पूँछ टूट जाती है। छिपकली अत्यन्त हिंसक जानवर है, कीड़ोंके सवा उसका अन्य कोई भोजन नहीं, साथ ही वह मायाचारिणी भी अत्यन्त अधिक है। कीड़ोंको छिप छिपकर लेती है इससे इसका नाम है छिपकली – अर्थात् छिपकर ली। तो परस्पर लड़नेपर पूँछ टूटकर गिर जाती है। पूँछका हिस्सा अलग तड़फता रहता है और बाकी धड़ अलग तड़फता रहता है। तो क्या वहां आत्माके खण्ड हो गए? कोई कह सकता है कि जब दो हिस्से करीब ८–१० हाथकी दूरीपर अलग अलग तड़फ रहे हैं तब तो आत्माके खण्ड हो गए, पर ऐसा नहीं है। बात वहाँ यह है कि जितनी दूरीपर वे दोनों खण्ड पड़े हुए तड़फ रहे हैं उतनी दूरीमें वे आत्मप्रदेश फैल गए। यह एक समुद्घात जैसी स्थिति है। कुछ कालमें ही पूँछके आत्मप्रदेश सिकुड़ करके उस मूल शरीरमें आ जाते हैं तब वह पूँछ फिर निष्कम्प रह जाती है। आत्मा एक अखण्ड है, यह प्रदेशोंकी दृष्टिसे आत्माके सम्बन्धमें कुछ कहा जा रहा है। वैसे तो आत्माकी पहिचान प्रदेशोंसे नहीं हो पाती, प्रदेश हैं आत्मामें। अगर पहिचान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो सकती है तो आत्माके असाधारण गुणसे होती है और वह असाधारण गुण है है ज्ञान। आत्माकी पहिचान ज्ञान गुणसे होती है। किन्तु इस प्रकरणमें कार्यत्व सिद्ध करनेके लिए सावयवताकी युक्ति दी गई थी और अवयवोंकी रचना होती है प्रदेशोंमें, तो आत्माका प्रदेशोंसे वर्णन करके यह कहा जा रहा है कि देखो आत्मा भी सावयव है लेकिन किसीका कार्य नहीं है। तब यह कहना अयुक्त है कि जो सावयव होता है वह कार्य होता है। सावयव तो आत्मा भी है परन्तु किसीका कार्य नहीं है।

परमार्थसे सावयव आत्मामें कार्यत्वकी अनुपलब्धिसे अकर्तत्वका समर्थन—इस सम्बन्धमें शंकाकार एक अपनी युक्ति दे रहा है। दोष यह कहा गया था कि आत्मा सावयव है किन्तु वह कार्य नहीं है, इस पर शंकाकार यह कह रहा है कि आत्मा तो निरावयव है, सावयव नहीं है, किन्तु सावयव जो शरीर है, जिसमें भाग हैं, अवयव है, हिस्सा है, ऐसे अनेक हिस्सों वाला जो यह शरीर है इस शरीरके सयोग से निरावयव होने पर भी आत्मामें ऐसी जानकारी होती है कि यह आत्मा सावयव है तो आत्मा सावयव है ऐसी बुद्धिका विषय होना यह औपचारिक है। वास्तवमें आत्मा सावयव नहीं है, और जब सावयव नहीं है तो सावयव न होते हुए काय भी नहीं है। फिर सावयवत्व हेतुमें दोष नहीं आ सकता। अब बात बनाकर हमारे इस अनुमानमें कि ये पृथ्वी आदिक समस्त पदार्थ किसी न किसीके द्वारा रचे गये हैं कार्य होनेसे इसमें दोष देना युक्त नहीं है। समाधानमें कहते हैं कि आत्मा यदि निरवयव है तो निरवयव चीज कभी व्यापकर रह ही नहीं सकती, जहां फैलाव नहीं, परिमाण नहीं, प्रदेश नहीं, अस्तिकाय नहीं, तो जो पदार्थ अस्तिकाय नहीं है वह व्यापकर नहीं रह सकता परमाणुकी तरह। परमाणु चीज चूंकि निरावयव है, अस्तिकाय नहीं है तो क्या परमाणु कहीं फैलकर रह सकता है, व्यापकर रह सकता है। ग्रन्थोंमें पुद्गल को अस्तिकाय बताया है वह परमार्थसे नहीं बताया गया है, किन्तु उपचारसे कहा गया है। वास्तवमें तो पुद्गल एक एक अणु परमार्थ पुद्गल है और अणु होता है एक प्रदेशी तो परमार्थभूत सही सकल में रहने वाले पुद्गलको अस्तिकाय न कहेंगे, किन्तु उन परमाणुओंके मेलमें स्कंध बनता है। स्कंध बनने पर यदि अस्तिकाय होता है तो यह अस्तिायपना बनानेका सामर्थ्य परमाणुओंमें न होता तो मिलकर भी न बनता। इस युक्तिसे समस्त पुद्गलोंको अस्तिकाय कह दिया गया है। जब निरवयव आत्माको सम्बन्धसे सरायव कहकर उपचारसे अवयव बताया, तो यों शरीरको भी सावयव उपचारसे कहना पड़ेगा। तो ये पृथ्वी आदिक सावयव सिद्ध नहीं होते। कार्य सिद्ध नहीं होते। बात तो परमार्थसे यह है कि आत्मा तो सावयव परमार्थसे है और पुद्गल सावयव उपचारसे है। तो सावयव आत्मा किसीका कार्य नहीं है। अतः क्षित्यादिक कार्य हैं सावयव होनेसे यह कहना अयुक्त रहा।

कार्यत्व सिद्धिके आधारमें विकल्प— जितने भी जगतमें ये पदार्थ दिखते

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं–पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र आदिक ये सब चूंकि कार्य है अतएव किसी न किसी बुद्धिमान द्वारा बनाये गए हैं ऐसी बात शंकाकारने रखी थी और उस कार्यत्व हेतुकी सिद्धिके लिए सावयवपना साधन बताया था किन्तु किसीके द्वारा कृत हों इससे नियतपना रखने वाले सावयवत्वकी सिद्धि तो नहीं हुई उसी प्रसंगमें यह पूछ रहे हैं कि अब जिन पदार्थोंको तुम कार्य कह रहे हो ये पृथ्वी, आसमान, सूर्य, चन्द्र, पर्वत आदिक तो इनके कार्यपनेकी सिद्धि क्या पहिले असत् रहे पदार्थमें कारणका समवाय होनेसे हुआ अथवा सत्त्वका समवाय होनेसे हुआ। इस सम्बन्धमें ये दो प्रश्न किए जा रहे हैं शंकाकारसे कि जो जमीन पर्वत आदिक कार्य बन बैठे ये कार्य हैं तो ये कैसे कार्य बने। ये पहिले असत् थे और फिर इनके कारणोंका समवाय जुटा तब ये कार्य बने, क्या ऐसा भाव है? अथवा ये पहिले असत् थे और इनको सत्ताका समवाय सम्बन्ध जुड़ गया तब ये कार्य बने? जैसे कि लोकमें एक प्रश्न तो किया जा सकता ना, कि जैसे घड़ा कार्य है तो उस घड़ेके सम्बन्धमें यह लोगोंकी धारणा है ना, कि घड़ा पहिले न था और जब घड़ा बना तो क्या इस प्रकार ये पृथ्वी आदिक पहिले न थे और इनके कारणोंका सम्बन्ध बना तब ये कार्य बने, क्या ऐसी बात है इन पृथ्वी पर्वत आदिकमें अथवा ये पहिले न थे। अब इनमें एग्जिस्टेंस डाला गया है, पहिले न था क्या ऐसी बात है?

प्राक् असत् पदार्थका कारण समवायसे कार्यत्व माननेका निराकरण – कार्यत्व सिद्धिमें कारण समवाय या सत्ता समवाय इन दो विकल्पोंमें से कुछ भी मानो पहिले यही बताओ कि पहिले न था, इस पहिले शब्द का तुम क्या अर्थ लगाते हो? क्या कारणोंका समवाय सम्बन्ध जुड़नेसे पहिले न था, असत् था, यह अर्थ है? यदि यह है तुम्हारा तो कारणोंका समवाय सम्बन्ध होनेके समयमें भी पहिलेकी ही तरह अब भी स्वरूपका सत्व नहीं हो सकता? या हो सकता है? क्या मतलब है? जो असत् है वह तो असत् ही है। कोई कारण जुट जाय, कारण जुट जानेके बाद भी उसमें स्वरूप सत्त्व नहीं आ सकता। नहीं आ सकता ना यदि कारणके जुट जाने पर स्वरूपमें सत्त्व नहीं आ सकता है तो फिर प्राग कहना, पहिले कहना, ये शब्द व्यर्थ हैं क्योंकि असत् तो असत् ही है? जो असत् है वह कारण जुटनेसे पहिले भी असत् है और कारण जुट जानेके बाद भी असत् है। यदि यह कहा कि जब कारण समवाय होता है तब कार्यका स्वरूपसे सत्त्व आ जाया करता है अर्थात् कारण जुट जाने पर कार्यमें अस्तित्व आ जाया करता है। तो ऐसा माननेकी अपेक्षा यह मानो ना, कि सत् तो था, मगर पहिले उस सत्में कार्यपना आया। यह बात यहांकी बातोंमें स्पष्ट दिखती है। मिट्टी है, सत् है अब इसमें कारण कार्यपन न रहा और कारण जुटने पर उस सामग्रीकलापके होने पर कुम्हारने नाना साधक बनाकर तो अब उसही सत् पदार्थ में जो घड़ा बननेसे पहिले किसी रूपमें वह था उसमें कार्यपना आ जाता है यों मानने पर तो कुछ कहीं ठीक बैठेगा, किन्तु पृथ्वी आदिमें कृतत्व फिर भी न बैठेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्राक् असत्में कारण समवाय होनेसे कार्यपना मानने पर दोषोंका कुछ विवरण—यदि यह मानोगे कि पहिले कुछ न था और कारण जुट जाने पर अब कार्यका अस्तित्व हो गया तो यहां यह हेतु व्यभिचारी हो जायगा। घड़ा बना तो वह पहिले कुछ न हो और फिर घड़ा आ जाय तब तो कहना ठीक है, पर पहिले कुछ भी न था यह तो अयुक्त है. मिट्टी थी उसमें घटकार्यपना न था, जब कारण जुटे तब घटकार्यपना आया। ऐसा ही तुम मानो ! जो कसर रहेगी उसे पीछे बतायेंगे, पर इतना तो तुम्हें भी मानना ही होगा कि ये जमीन पर्वत आदिक पहिले थे, पर इस रूप न थे, तो कारण जुटाकर फिर ईश्वरने किस किसको इस रूपमें तैयार कर दिया. यदि ऐसा कहो कि असत् तो हमारा एक मूलवाला उत्तर आ ही गया है कि यह पहले सत् था, असत् बात तो रही नहीं, और यदि यह कहो कि असत् तो असत् ही है, जैसे पहिले असत् था उसी प्रकार कारणका समवाय होने पर भी सम्बन्ध होने पर भी वह स्वरूपसत्त्व नहीं आता तो असत् इतना ही कहो 'प्राक् (पहिले) शब्द क्यों कहते ? एक बात और है जो बिल्कुल असत् है उसमें कारणोंका समवाय सम्बन्ध भी नहीं जुटता। अगर असत् पदार्थमें कारण जुटे और उसका कार्य बन जाय तो फिर आप लाइये आकाशके फूलकी माला बनाकर ले आइये। आप ला सकते हैं क्या ? आकाश के फूलोंकी माला असत् है आकाशके फूल ही नहीं होते तो कहांसे आकाशके फूल ले आवोगे ? अच्छा—बांझका लड़का ले आओ—हम उसे पढ़ायेंगे। तो लावो आप, कहांसे लाओगे। जो असत् है, है ही नहीं, उसमे कारणकलाप क्या जुड़ावोगे ? तो असत् पदार्थमें कारण नहीं जुड़ा करते। गधेके सींगका धनुष बनाकर लाइये, क्या आप ला सकेंगे ? लाया ही नहीं जा सकता। असत् है, उसमें कारणकलाप ही नहीं जुड़ सकते। यदि यह कहो कि कि गधेके सींग आदिकमें कारणोंका अभाव है इसलिये यह दोष न कहेंगे। तो कहते हैं कि पृथ्वी आदिकमें भी कारणोंका समवाय सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता इसलिये उसमें भी कार्यपना न आ सकेगा।

लोक परिणमन व्यवस्थाका मूल कारण वस्तुस्वरूप—भैया ! बात तो सीधी है कि जगतमें ये सब पदार्थ हैं और, हैं' में ही ऐसा गुण भरा हुआ है कि प्रतिसमय नया बनता रह पुराना बिगड़ता रहे और उसका सत्त्व बना रहे, यह बात तो सत्त्वमें ही पड़ी हुई है। चूंकि ये सब सत् हैं इस कारणसे ये निरन्तर बनते हैं, बिगड़ते हैं बने रहते हैं। बनना बिगडना बना रहता है। यह सब प्रत्येक पदार्थमें एक साथ होता है। जैसे देखो -यह अंगुली अभी सीधी है और इसको अब टेढ़ी कर दिया तो बतलावो बन क्या गया ? टेढ़ी अंगुली बन गई। और, बिगड़ क्या गया ? सीधी अंगुलीका विनाश हो गया। और, अंगुली सामान्य तब भी था और अब भी है। तो क्योंजी यह बतावो कि पहिले सीधका विनाश हुआ फिर टेढ़ी हुई अंगुली पहिले टेढ़ी अंगुली हुई तब सीधी मिटी ? कुछ कह ही नहीं सकते। और, इसमें तो कुछ समय लगता है सीधीको इतनी टेढ़ी करनेमें, एक समयके बादकी पर्याय देखो चाहे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह कितना ही छोटा समय हो पर एकदम पहिले समयमें जो परिणति बनी है उस परिणतिका बनना और पहिलेकी परिणतिका विलय होना ये दोनों एक साथ हैं। और वस्तु भी वही सदा है। अच्छा–यह भी बतावो टेढ़ो अंगुली किए बिना अंगुली का विनाश हो सकता है क्या ? नहीं हो सकता। और, सीधी अंगुलीका विनाश किए बिना टेढ़ी हो सकती है क्या ? नहीं हो सकती। तो उत्पाद बिना व्यय नहीं होता, व्यय बिना उत्पाद नहीं होता और ध्रौव्य बिना ये उत्पाद और व्यय दोनों नहीं होते। यदि अंगुली ही न हो और कहें कि सीधी अंगुली टेढ़ी कर दो तो क्या कर दें ? तो ये तीनों चीजें पदार्थमें एक साथ गुम्फित हैं। यह पदार्थका स्वरूप है और इसीसे सारी व्यवस्था बन रही है। एक पदार्थके किसी प्रकारके परिणमनमें अन्य परपदार्थ निमित्त हो रहे हैं और उस निमित्त नैमित्तिक भावमे।

प्रभुके पावन स्वरूपके अवगमसे ही चित्तकी समाधानता – पदार्थके स्वरूपसे ही लोककी सारी व्यवस्था बन रही है। अब इस मर्मको तो कोई जाने नहीं और कल्पना करलें कि इतना बड़ा लोक है तो इसके बनाने वाला कोई होगा। इस लोकको ईश्वरने बनाया है। तो ऐसा कहनेमें उस ईश्वरकी कोई तारीफ नहीं हुई। ईश्वरकी तारीफ तो इसमें है कि वह समस्त लोकालोकका ज्ञाता रहे और अनन्त निराकुलतामें सतत् विराजमान रहे। तारीफ तो इस स्वरूपमें है। और इस ही स्वरूपको आदर्श मानकर योगीजन अपने विकल्पोंका विलय किया करते हैं। कई वर्ष पहिले जब रेलगाड़ी प्रथम हो प्रथम निकली थी तो ग्रामीण लोग उन गाड़ियोंको देखनेके लिए इकट्ठा हो जाते थे, और उसके आगेके काले भागको देखकर यह कल्पना कर लेते थे कि इसको चलाने वाली काली देवी है। आजके समयमें यदि कोई इस तरहकी बातको कह दे तो लोग उसे बुद्धू कहेंगे। देखो बात वहाँ क्या है कि किसी एक पुर्जेने दूसरे पुर्जेमें धक्का मारा। दूसरेने तीसरे पुर्जेमें धक्का मारा, यों पहिये चल उठे, फिर सारी गाड़ी उस निमित्त नैमित्तक सम्बन्धवश चल उठी। तो जो बात समझमें नहीं आती उसमें लोग अपनी बुद्धिपर जोर नहीं देना चाहते और सीधा वह मान लेते हैं कि यह तो ईश्वरकी की हुई बात है, उसकी मर्जी है। सुख दुःख जो भी होते हैं वे उसकी मर्जीसे होते हैं पर यह तो बतावो कि वह ईश्वर इन खटपटोंमें पड़ेगा क्या ? ईश्वरका तो कैसा विशुद्ध स्वरूप है, कितना पवित्र स्वरूप है वह तो निराकुलतासे और कृतार्थतासे बन सकता है। जो पुरुष करने करनेका विकल्प लादे हैं—मुझे यह करना है अब यह करना है उसे चैन तो नहीं मिलती। वह तो अपने ऊपर एक विकल्पोंका बहुत बड़ा बोझ लादे फिरता है। इतने कठिन विकल्प वह लाद लेता है कि कहीं हार्ट फैल हो जाता और मरणको भी प्राप्त हो जाता। तो करनेका काम जिसके लिए पड़ा हो उसका तो कोई पावन स्वरूप नहीं हुआ। जो कृतार्थ हो, अनन्तआनन्दमय हो, विशुद्ध ज्ञायक हो वह ही आत्मा पावन हो सकता है।

कर्तृत्वके आशयमें व्यसनसंपात - कोई एक धुनिया कहीं विदेशसे आ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा था, समुद्री जहाजका रास्ता था। उस जहाजमें वह आदमी तो अकेला था, पर हजारों मन रूई उसमें लदी हुई थी। उस इतना अधिक रूईको देखकर उसका सिर दर्द करने लगा, सोचा ओह! यह सारी रूई हमीको धुननी पड़ेगी। सो इस संकल्प से उसके दिलपर इतना असर बढ़ता गया कि उसके बुखार हो गया। आखिर घर पहुँचते-पहुँचते वह बहुत अधिक बीमार हो गया। कई लोगोंने उसकी औषधिकी, पर वह ठीक न हुआ। एक बुद्धिमान पुरुष आया बोला—आप लोग यहांसे जावो, इसकी औषधि हम करेंगे। पूछा—भाई तुम कबसे बीमार हुए?…दो तीन दिनसे… कहांसे बीमार हुए?…विदेशसे आते समय रास्तेमें समुद्री जहाजपर बीमार हुए।… जिस समुद्री जहाजसे आप आ रहे थे उसपर कितने आदमी थे?…उसमें आदमी तो एक भी न था, सिर्फ मैं था, पर उसमें हजारों मन रूई लदी हुई थी। उसकी उस दर्द भरी आवाजको सुनकर वह पहिचान गया कि इसको कौनसी बीमारी है? बोला—अरे तुम उस जहाजसे आये। वह तो आगेके बंदरगाहपर पहुँचते ही न मालूम कैसे क्या हुआ कि उसमें आग लग गयी और सारी रूई भी जल गई व साथ ही जहाज भी जल गया। लो इस बातको सुनकर उसकी सारी बीमारी दूर हो गई। तो जिसके मनमें यह भाव पड़ा है कि मुझे तो अमुक काम करनेका पड़ा हुआ है उसको निराकुलता कहांसे सम्भव है।

यथार्थ स्वरूपमें निरखकर प्रभुकी भक्ति किये जानेका लाभ—प्रभुका स्वरूप—जो कृतार्थ हो, सर्वज्ञ हो, वीतराग हो, अनन्त आनन्दमय हो, सो ही प्रभु का स्वरूप है। यहां ये पदार्थ तो सब स्वयं सत् होनेके कारण और जिसके जैसी योग्यता पड़ी है उस योग्यताके अनुकूल परपदार्थोंका निमित्त पाकर परिणमते रहते हैं, इनके रचने वाला कोई अलग पुरुष नहीं है। देखिये—प्रभुभक्ति प्रभुके गुणोंका आदर्श स्वरूप समझमें आनेपर ही हुआ करता है और अपने कल्याणका चाव प्रभुके स्वरूप की भांति अपनी शक्ति समझमें आनेपर जगती है और यह वस्तुस्वरूप जब यथार्थ समझमें आता है कि यह पदार्थ सत् है स्वयं ही परिणमनशील है परिणमता है तो इस ओरका विकल्प हट जाता है। इससे अपने लिये भी तो यह शिक्षा लेना चाहिए कि होता स्वयं जगत परिणाम। मैं जगका करता क्या काम। समस्त पदार्थोंका परिणमन उनका उपादान, उनकी योग्यतासे होता रहता है, मैं उनमें क्या कर सकता हूँ। तो ये समस्त पदार्थ स्वयं परिपूर्ण हैं, स्वयं परिणमते रहते हैं, इनके करने वाला कोई बुद्धिमान है ऐसा माननेमें न तो युक्तियां गवाह देती हैं न अनुभव गवाह देता है और न लोक व्यवस्था बन सकती है।

प्राक् असत् पदार्थमें सत्तासम्बन्धसे कार्यत्व माननेका निराकरण—शंकाकारसे यह पूछा गया था कि ये पर्वत आदिक कार्य हैं, उनमें कार्यपनाकी सिद्धि कैसे हुई। क्या पहले असत् रहे पदार्थमें कारण समवाय होनेसे कार्यपना आया।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

या उनमें सत्त्वका समवाय होनेसे हुआ। यदि कहो कि जो पहिले असत् था, उनमें अस्तित्वका समवाय सम्बन्ध जोड़ा गया तब उसमें कार्यपना आया। तो इसमें भी उतने ही दोष समानतासे आ पड़ते हैं। जितने दोष अभी दिए गए थे कि पहिले असत् था फिर सत् कैसे हुआ, अथवा प्राक् कहनेकी आवश्यकता क्या आदिक जो जो बातें कही गई थी वे सब दोष इस पक्षमें भी आते हैं। शंकाकार कहता है कि वे दोष इस पर नहीं आ सकते क्योंकि गधेके सींग आदिकसे इस पृथ्वीके कार्यपनेकी विशेषता है। वह क्या विशेषता है कि गधेके सींग, आकाशके फूल, बांझका पुत्र, ये तो अत्यन्त असत् हैं, परन्तु पृथ्वी आदिक ये न सत् हैं न असत् हैं किन्तु सत्ताके समवाय होनेसे सत् बनते हैं। गधेके सींग तो सर्वथा असत् हैं। उनमें तो सत्ताका सम्बन्ध भी नहीं पड़ सकता। वे तो कोई सत् ही नहीं बन सकते परन्तु पर्वत आदिक ये सत् ही नहीं बन सकते और इसे सर्वथा असत् भी न कह सकते थे क्योंकि आगे सत्ताका सम्बन्ध जुड़नेसे ये सत् बन जाया करते हैं। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी कथन मात्र है। इस युक्तिमें दम कुछ नहीं है तुम कहते हो कि पृथ्वी आदिक गधेके सींगकी तरह न सर्वथा सत् है न सर्वथा असत् है किन्तु सत् भी है असत् भी है। तो सत्ता और असत्ताका तो एक जगह सम्बन्ध नहीं बनता। अपेक्षा दृष्टिसे सत्त्व और असत्त्व सिद्ध करे तो बात और है पर एकान्तवादमें यहां अपेक्षाको तो आधार ही नहीं लिया गया। वह तो स्याद्वादमें माना गया। यह घड़ा पहिले सत् थी कि असत् बतलावो। या यह चौकी जिस पर शास्त्र रखा है बतलावो यह चौकी बननेसे पहिले कुछ थी कि न थी। उत्तर है पहिले भी थी और न भी थी। काष्ठके रूपमें थी, चौकीके रूपमें न थी। तो यह अपेक्षावाद तो स्याद्वादमें आ गया। पर स्याद्वादके आश्रम बिना उसमें अपेक्षावाद का क्या अवकाश ? असत् है तो वह कभी उत्पन्न हो नहीं सकता और सत् है तो कारण कलापसे उसकी परिणति शकल बदल जायेगी मगर एकदम असत्की उत्पत्ति न होगी।

सत्तामें सत्त्वके सद्भाव व अभावका पृष्टव्य विकल्प—और, बतलावो आपका (शंकाकार) जो यह कहता है कि ज़मीन पर्वत आदिक पहिले सत् न थे। कुछ न थे, उनमें सत्ताका सम्बन्ध जुड़ा सत्ताका सम्बन्ध होनेसे ही तो वे सत् हुए जुड़ा तब वे सत् हुए। नन् एग्जिस्टेंसमें एग्जिस्टेंट को सम्बन्ध जुड़ा तब वे एग्जिस्टेंस हुए। तो क्या यह बिल्कुल ही असत् था जिसमें सत्ताका सम्बन्ध जुड़ गया वह सत्ता भी सत् है या नहीं। एग्जिस्टेंसमें एग्जिस्टेंट है कि नहीं। यह पूछा जा रहा है। यदि उस सत्ताका भी अस्तित्व नहीं, वह भी असत् है तो असत्के सम्बन्धसे अन्य पदार्थ कैसे सत् बन जायेंगे, जो कुछ है ही नहीं, एग्जिस्टेंस में एग्जिस्टेंस रखा ही नहीं तो उसके सम्बन्धसे दूसरा एग्जिस्टेंट क्यों हो जाएगा ? और यदि कहो कि सत्ता सत्त्व सहित है, सती है, है वह मौजूद, तो उसमें जो सत्त्व आया वह किसी अन्यके सम्बन्धसे आया या स्वतः आया ? यदि कहो कि अन्य सत्त्वके सम्बन्धसे आया तो उसमें सत्ता-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किससे आयी ? अन्यसे आना मानोगे तो यों अनावस्था दोष होगा । और स्वयं आया तो बातें घुमाने फिरानेका इतना परिश्रम क्यों कर रहे हो ? इन पदार्थोंको ही सत् मान लो । पदार्थ नहीं है फिर इसमें सत्ताका सम्बन्ध जुटे तब ये पदार्थ सत् हुए और फिर इस झूठको सिद्ध करनेके लिये अनेक झूठ बातें लावो इससे न तो यथार्थ निर्णय होगा न कोई भलाई होगी ।

विपरीत बातके पोषणमें भलाईका अभाव —जो सीधी बात है उसे मानो झूठसे यथार्थका निर्णय नहीं होता । एक साहुकारने किसी बाबूको जंगलमें बड़के पेड़के नीचे उसके मांगने पर उसे ५०० रु० उधार दे दिये । लिखा पढ़ी कुछ न हुई । साल दो साल बादमें जब उसने अपने रुपये मांगे तो उसने मना कर दिया, कहा कि तुमने हमें रुपये नहीं दिये । तो उसने अदालत की । वहां बहुतसे प्रश्न किये जजने, पर बाबू ने हर बातमें यही कहा कि मैं जानता ही नहीं कि इन्होंने कहां कब रुपये दिए । हमको नहीं दिये इन्होंने रुपये । तो जज बोला—सेठ तू बिल्कुल झूठ बोलता है, तूने रुपये दिए नहीं हैं । इन बातोंको सुनकर बाबूजी मन हीं मन खुश हो रहे थे कि अब तो हमारा मामला ठीक बन गया । तो जज बोला अच्छा सेठ तुम उस पेड़को हमारे सामने लाओ जिसके नीचे तुमने रुपये दिए थे । तो वह कहता है कि वह पेड़ हम यहां कैसे ला सकते हैं । वह यहां हमसे न आ सकेगा । तो जजने कहा-अरे तू जा तो सही आएगा क्यों नहीं । वह बेचारा सेठ चला गया उस बट वृक्षके पास जानेके लिये । वह था वहांसे बड़ी दूर । जब उसे बहुत देर हो गई, न आया तो जजने पूछा क्यों बाबूजी वह सेठ अब तक क्यों न आया ? तो बाबूजी बोल उठे –अरे अभी कैसे आ पाये–वह पेड़ तो यहांसे करीब दो मील दूर है । लो निर्णय हो गया । तो झूठ विकल्प जोड़े जायें, यथार्थ बात एकदम स्वीकार न की जाय तो उससे कुछ भलाई नहीं होती । तो तुम सीधा ही मान लो कि पदार्थ सत् है और परिणमता रहता है, इसमें किसी कर्ता को ढानेका प्रयास क्यों करते ?

पदार्थके स्वरूपसे लोकव्यवस्था —यह सारा लोक अनन्त द्रव्योंका समूह है अनन्तानन्त जीव, उनसे भी अनन्त पुद्गल, एक धर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असंख्यात काल द्रव्य । इन समस्त द्रव्योंके समूहका ही नाम लोक है लोक कहते हैं उसे–यत्र लोक्यंते पदार्था: स लोक: । जहां पदार्थ देखे जायें उसे लोक कहते हैं । सब पदार्थोंके समूहका नाम लोक है । ये समस्त पदार्थ अपने ६ साधारण गुणोंसे युक्त हैं– अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, प्रमेयत्व । प्रत्येक पदार्थ 'है' अपने स्वरूपसे नही 'हैं' और परिणमते रहते हैं, अपनेमें ही परिणमते रहते हैं दूसरेमें नहीं, और उसका कुछ न कुछ आकार है, विस्तार है, और वह किसी न किसीके द्वारा प्रमेय है । इस प्रकार प्रत्येक द्रव्यमें ये ६ साधारण गुण पाये जाते हैं और इसी गुणके कारण संसारकी रचनाकी व्यवस्था अपने आप बन रही है । किन्तु, यह मर्म जब तक परिचय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में नहीं होता है तब तक कल्पनाएँ उठती हैं।

नास्तिक और कर्तावादियोंके लोकमें स्वरूपदर्शियोंकी विरलता—देखिये अनेक प्रकारोंके लोगोंका समूह इस लोकमें है। कुछ तो लोग ऐसे हैं जिनकी यह धारणा है कि जो कुछ दुनियामें दिख रहा है वही मात्र है सब कुछ। अदृष्ट तत्त्व अन्य कुछ नहीं हैं न आत्मा है न परमात्मा है। न ईश्वर है, न स्वर्ग नरक है, न पुण्य पाप है। जो कुछ है वह सब यही है जो दिखनेमें आ रहा है। बहुतसे लोग तो इस आशयके हैं और बहुतसे लोग इस आशयके हैं कि हम लोग जीव हैं और हम सबका निर्माता, सारे जगतका निर्माण करने वाला कोई एक ईश्वर है। बस इन दो भागोंमें विभक्त प्रायः मनुष्योंके दिमाग हैं। कुछ ही बिरले पुरुष ऐसे हैं जो पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपपर ध्यान देते हैं आत्मा है वह ज्ञान गुण निर्भर है, जैसे घड़ेमें पानी भरा हो तो वह घड़ा पानीसे परिपूर्ण है। उसके अन्दर कहीं एक सूत भी जगह अपूर्ण रह जाय ऐसी बात नहीं है। उस घड़ेके अगल बगल सब जगह पानी समाया हुआ है। उस घड़ेके अन्दर पानी जितनेमें भरा हुआ है वह घनरूपसे सर्वत्र भरा हुआ है। उसके बीच कहीं अन्तर नहीं है। इस ही प्रकार यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है।

पूर्णकलशवत् आत्माकी ज्ञानभरितावस्थता आत्माके सर्वप्रदेशोंमें वही ज्ञान स्वरूप घनरूपसे भरा हुआ है इसी कारण लोग भरे कलशको सगुन मानते हैं। यदि कोई पुरुष अथवा महिला सामनेसे जलसे भरा हुआ घड़ा लिए दिख जाय तो लोग कहते हैं कि आज मुझे सगुन हुआ है। अरे वह घड़ा तो है मिट्टीका, उसके अन्दर भरा है पानी, और जो उसको लिए जा रहा है वह एक संसारी मलिन प्राणी है, उसमें सगुनकी बात क्या हो गई ? सगुनकी बात यह हुई है कि उस भरे हुए घड़ेको निरखकर देखने वालेने अपने आपके आत्माकी सुध ली। जैसे यह घड़ा पानीसे अत्यन्त भरा हुआ है, कहीं कोई प्रदेश खाली नहीं है इसी प्रकार यह मैं आत्मा ज्ञानरससे पूर्ण भरा हुआ हूं। यहां कोई प्रदेश ऐसा नहीं है जो उस ज्ञानसे खाली हो। ऐसी दृष्टि जिसके हो उसीका बेड़ा पार होगा। अपने आपका स्वरूप जिसे दृष्टिगत हो, मैं हूँ यह ज्ञान पुञ्ज और पूरा सर्वत्र प्रदेशोंमें भरा हुआ हूं, ऐसे ज्ञानघन निज आत्मतत्त्वकी सुधि होती है उस पूर्ण कलशके देखनेसे, अतएव वह सगुन है। जलसे भरा हुआ कलश दिख जाय तो क्यों सगुन है ? अब पूर्ण कलश ज्ञाननिर्भर आत्माकी याद दिलाता है सो सगुन होता है यह बात तो भूल गए और कुछ कालके बाद क्यों सगुन है इसका कारण भूल हुए, उस पूर्ण कलसको निरखकर आत्माकी सुधि आती है अतएव सगुन है यह बात भूल गये, सगुन है यह पकड़ लिया। तो अब भी वही प्रथा चली आ रही है कि जल भरे कलशको देखकर लोक सगुन मानते हैं। तो यों आत्माकी ज्ञाननिर्भरता समझियेगा।

कर्तावादियोंके प्रति कार्यत्व हेतुमें दो विकल्प—आत्मा ज्ञान निर्भर है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और स्वयं परिणमनशील है। निरन्तर परिणमता रहता है। ऐसे ही समस्त पदार्थ परिणमनशील हैं, परिणमने रहते हैं और इस अर्थक्रियासे इस लोककी बराबर व्यवस्था बनी चली आ रही है। ऐसा वस्तुस्वरूप जब दृष्टिमें नहीं रहता है तो लोग मनमें तो जिज्ञासा रखते ही हैं कि यह दुनिया क्या है, कैसी बनी है, किसने बनाया है। बस इस जिज्ञासामें अनेक लोग ऐसा मानते हैं कि कोई ईश्वर है अलग। वही हमसे सब कुछ कराता है, वही हम सबको बनाता रहता है। इस सम्बन्धमें सृष्टिकर्तावादियों ने एक अनुमान बनाया था कि ये पर्वत आदिक समस्त पदार्थ किसी न किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाए गए हैं क्योंकि कार्य होनेसे। ये चूंकि सब कार्य हैं इस कारणसे किसी के द्वारा बनाये गए हैं। इस अनुमान ज्ञानमें विकल्पोंका निराकरण अभी बहुत विस्तारसे किया गया है। अब एक बात यह पूछी जा रही है कि तुम जो पृथ्वी, पर्वत आदिकको कार्य बतलाते हो तो यह बतलावो कि ये कथंचित् कार्य हैं या सर्वथा कार्य हैं ? ये जमीन, आसमान, सूर्य चन्द्र, पर्वत आदिक कथंचित्कार्य हैं या सर्वदृष्टियों से कार्य हैं ?

कार्यत्वके सर्वथा अथवा कथंचित् दोनों विकल्पोंकी असिद्धि यदि कहो कि सर्वदृष्टियोंसे कार्य हैं तो भी यह बात सिद्ध नहीं होती। प्रत्येक पदार्थ चाहे कितना ही परिणमे, पर द्रव्य दृष्टिसे वह कार्यरूप नहीं है, पदार्थ द्रव्यदृष्टिसे न किसीका कारण है। हाँ आधार अवश्य है कि उसमें से पर्यायें उत्पन्न होती हैं, इस सिलसिलेमें अन्य पदार्थोंसे आत्मपदार्थकी कुछ विशेषता है। अन्य पदार्थ चूंकि अचेतन हैं इस कारण उनके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धमें उनसे कार्य होता रहता है, पर वे स्वयं अपने आपको कुछ नहीं जान पाते किन्तु यह आत्मा समस्त परिणतियोंका आधार भी है और यह आत्मा जब अपने आपके उस शुद्ध चैतन्य स्वभावका परिचय कर लेता है तो उसकी दृष्टि करनेसे उसका आलम्बन लिया जानेसे इसमें शुद्ध पर्यायें प्रकट होने लगती हैं। प्रत्येक पदार्थ ये चूंकि परिणमते रहते हैं अतएव कार्य कहलाते, और उनमें द्रव्यदृष्टिसे निरखा जाय तो उनका सत्त्व, उनका वह ध्रुव स्वभाव ये कोई कार्य रूप नहीं हैं, ये किसीके द्वारा नहीं बनाए गए हैं और न ये किसी भी प्रकार स्वयंके द्वारा भी कार्यरूप हैं। तो सर्वथा कार्यरूप कोई पदार्थ नहीं है। यदि कहो कि ये पृथ्वी आदिक कथंचित् कार्यरूप हैं तो हेतु विरुद्ध अर्थात् अनैकान्तिक हो गया। कोई पदार्थ कभी कार्यरूप हो गया, कोई पदार्थ कभी कार्यरूप नहीं रहा, सर्वथा किसी बुद्धिमान का इसमें निमित्तपना है, यह जो साध्य विषय है उससे विपरीत अर्थात् बुद्धिमान निमित्तक नहीं है, इस विपरीत साध्यके साथ पाया गया सो विरुद्धकी भी सिद्धि हो जाती है। तो न यह सर्वथा कार्य है यह कहा जा सकता है और न कथंचित् कार्य है यह कहा जा सकता है।

कार्यत्व हेतुकी आत्मादिकके साथ अनैकान्तिकता देखो आत्मा आदिक

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थोंके साथ इस अनुमानमें अनेकांतिक दोष आताहै। इसमें हेतु यों समझना चाहिये कि आत्मादिक पदार्थ किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाए नहीं गए फिर भी कार्य हैं। कार्य होने पर भी किसीके द्वारा बनाये नहीं गए। कार्यका अर्थ इतना ही नहीं कि कोई मनुष्य उसे करे सो कार्य है, किन्तु पदार्थमें पूर्व पर्यायसे विलक्षण अथवा अपूर्व नई पर्याय आये उसको कार्य कहते हैं तो आत्मा आदिक पदार्थ ये कार्य तो हैं। इनका परिणमन चलता है लेकिन ये किसीके द्वारा भी बनाए गए नहीं हैं। यदि यह कहो कि आत्मा आदिक पदार्थ भी कथंचित् अकार्य हैं, किसी दृष्टिसे ये कार्य नहीं है, तो जब इसमें कार्यकारिता न रही तो ये कुछ काम भी न कर सकेंगे, क्योंकि पदार्थ अकर्ता रूपको त्यागकर कर्तारूपमें आये तब ही तो उसमें परिणमन होता है। पदार्थ स्वरूप स्वभावमें द्रव्यत: अपरिणामी है पर पर्यायदृष्टिसे यह परिणमन करता है। तो अपनी उस अपरिणामितामें सकर्तकताको रूपमें त्याग कर (यह सब दृष्टियोंसे लगाना है) कर्तारूपमें आये अर्थात् द्रव्यदृष्टि गौण होकर पर्याय दृष्टि प्रधान बने अथवा पदार्थ में पदार्थ अपने स्वरूपको न त्यागकर द्रव्य गुणके कारण उसमें ही कोई नवीन परिस्थिति बने, यदि यह बात नहीं मानी जायगी तो पदार्थ कुछ भी काम का न रहा। उसमें कोई अर्थक्रिया ही नहीं सम्भव है।

कर्तृत्वसिद्धिके प्रसंगमें अकर्तत्व सिद्ध करनेकी आपतित नौबत —यहां शंकाकारके प्रति यह दोष दिया गया है कि आत्माको जो तुम अकर्ता मानते हो सो आत्मा अकर्ता नहीं है। आत्मामें पर्यायें नवीन बनती हैं, पुरानी पर्यायें विलीन होती हैं, अतएव आत्मामें कथंचित् कार्यपना है। देखिए जैन शासनमें जो नीति स्याद्वाद की अपनाई गई है उससे वस्तुका सही परिज्ञान होता है। साथ ही यह भी समझिये कि स्याद्वादवादी अटपट धर्मोंको सिद्ध नहीं करता। पदार्थमें जो बात पायी जाती है उस पदार्थके स्वरूपसे स्वभावका वर्णन करते हैं और यह एक अपनी पावनताको लिए हुए है अर्थात् इस जैन शासनमें पहिले कुछ जैन शासनकी बात मानी जाय और कुछ कुछ अन्य सिद्धान्तोंकी भी बात मानी जाय ऐसा मिश्रण नहीं है जब अन्य अनेक शासनोंमें यह मिश्रण पाया जाता है तो कभी कुछ मान रहे हैं, कभी कुछ। शंकाकार ने अभी माना था कि जितने भी पदार्थ होते हैं वे सब किसी न किसीके द्वारा किये हुए होते हैं कहां तो सर्व पदार्थोंको कार्यपना माननेकी धुनि और अब कहां यह गले पड़ गया कि आत्माको अकार्य सिद्ध करनेकी नौबत आ गई क्योंकि मिश्र सिद्धान्त है।

शङ्काकार द्वारा प्रस्तुत आत्मासे अर्थान्तरभूत कर्तृत्व व अकर्तृत्व रूपकी मीमांसा—आत्मा चूंकि अनेक परिणमनोंसे नवीन अवस्था अंगीकार करता है अतएव कार्य है, इस बातपर शङ्काकार आत्माको अकर्ता सिद्ध करनेके लिए कह रहा है कि भाई आत्मामें जो ये दो रूप हैं कतृत्व और अकतृत्व सो कर्तृत्व रूप और अकर्तृत्वरूप ये आत्मासे जुदे हैं। आत्मा तो कूटस्थ नित्य अपरिणामी है। और,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मामें जो ये दो रूप आये—कर्तृत्व और अकर्तृत्व ये दोनों रूप आत्मासे भिन्न हैं, इस कारणसे आत्माके कर्तृत्व रूपका अगर त्याग होता है, उत्पाद होता है और अकर्तृत्वरूपका विनाश होता है तो ऐसा होनेसे आत्माका भी उत्पाद और विनाश हो जाय यह बात युक्त नहीं है क्योंकि आत्माके वे दो रूप हैं कि आत्मा अकर्ता है और अकर्तृत्वरूपको त्यागकर वह कर्तृत्वरूपमें आ गया। ये दोनों रूप आत्मासे जुदे हैं और उनको आत्मासे जुदे हैं और उनकी उत्पत्ति होनेसे, विनाश होनेसे आत्मामें कुछ भी उत्पाद विनाश नहीं होता। तब आत्मामें कुछ भी कार्यपना नहीं है। यह समाधानमें कह रहे हैं कि यह कहना भी केवल अपनी मनगंढ़त बात है। हैं कि वे जो दो रूप हैं, अकर्तृत्व व कर्तृत्व सा दोनों आत्मासे अर्थान्तर हैं। ये दोनों कर्तृत्व होना और अकर्तृत्व होना यों समझें कि जैन शासन मानता है कि द्रव्यदृष्टिसे आत्मा अकर्ता है और पर्यायदृष्टिसे आत्मा कर्ता है यों कर्तृत्व—अकर्तृत्व दोनोंको शङ्काकारके सिद्धान्तके अनुसार यदि आत्माको भिन्न मान लिया जाय तो इन दोनों रूपोंका आत्मामें सम्बन्ध ही सिद्ध नहीं हो सकता जो चीज मुझसे निराली है उसका मेरेसे निराली है सम्बन्ध कैसे होगा और सम्बन्ध जबरदस्ती मानले तो उसका सम्बन्ध और भी अटपट हो जाना चाहिए अन्यत्र सम्बन्ध हो वैसे। अतएव यह कर्तृत्वरूप आत्मासे कथंचित् भिन्न नहीं कहा जा सकता है।

स्याद्वादसे व्यवहार एक पदार्थस्वरूपकी व्यवस्था भैया! स्याद्वादके बिना गति नहीं है लोककी। जैसे कोई मानता है कि आत्मा सर्वथा अपरिणामी है, तो कोई मानता है कि आत्मा तो क्षण क्षणमें नया नया बना करता है। एक शरीरमें वहींका वही आत्मा नहीं रहता दिनभर भी, एक मिनट भी, किन्तु क्षण क्षणमें नवीन आत्मा आया करते हैं, लेकिन दोनों ही स्थितियोंमें लोकव्यवहार सब खतम हो जाता है। किसीको अपने रुपया पैसा या अन्य कोई चीज उधार दे दें और दूसरे दिन आप उससे मांगने लगें तो वह क्या जवाब देगा कि हमको तुम कब दिया था रुपया ? अजी कल दिया था। अजी तब से लेकर अब तक अनगिनते आत्मा हो गए, उनके बाद मैं तो अब हुआ हूं। तो यों सारा लेन देन खतम हो जायगा। अपरिणामी है कुछ उसमें क्रिया ही नहीं होती है यदि यह हठ किया जाय तो समझना, बोलना, मिलना, समझाना ये सब बातें कैसे हो जायेंगी। स्याद्वाद बिना तो इनकी गति भी नहीं है बोल भी नहीं सकते, खा पी भी नहीं सकते और फिर मोक्षमार्ग, शान्तिका उपाय तो निकल ही नहीं सकता। आत्मा अपरिणामी है। सर्वथा, तो फिर कोई अदल बदल ही नहीं होगी। तो संसार क्या और मोक्ष क्या, ऐसा कहने मात्रसे यह संसार तो नष्ट न हो जायगा। वह यो शिरपर बीत रही है। उस चक्करमें तो स्वयं पड़े हुए हैं और क्षणिक हैं, तो क्योंजी— व्रत तप करनेसे फायदा क्या है ? हम तो व्रत, तप करें, मरें और दूसरे आत्माको मोक्ष हो गया, क्योंकि क्षण क्षणमें नया नया आत्मा बन रहा है ऐसा सिद्धान्त मान लिया। तो स्याद्वादके बिना न शान्तिका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मार्ग चल सकता है और न लोकव्यवहार चल सकता है। ये समस्त पदार्थ द्रव्यदृष्टि से तो अकर्ता हैं और पर्यायदृष्टिसे कर्ता हैं।

निमित्त नैमित्तक भावके प्रति लोकोंका कर्तृत्व विकल्प—अब देखिये पदार्थमें जो जो कुछ भी परिणमन हो वह सब निमित्त नैमित्तक भाव पूर्वक होता है। ईन्धनमें अग्नि पड़ जाय तो ईन्धन जल जाता है। किसी वस्तुमें किसी वस्तुकी ठोकर लग जाय यो वह वस्तु आगे निकल जाती है, कोई पदार्थ उपरसे गिर जाय अथवा कोई भींटकी ईंट निकलकर नीचे गिर जाय और वहां पड़ा हो कोई पदार्थ तो वह टूट जाता है। ये सब निमित्त नैमित्तक भावोंसे स्वयं कार्य हो रहे हैं, उनमे कौन कर्ताका व्यवहार करता है। देखो इस ईंटने हमारा कांच फोड़ दिया, यों तो कोई नहीं बोलता, क्योंकि वह ईंट भी अचेतन है और यह दर्पण भी अचेतन है, ईंट गिर गई, दर्पण टूट गया तिस पर भी कोई नहीं कहता कि ईंटने मेरा दर्पण तोड़ दिया। तो जैसे निमित्त नैमित्तिक भाव अचेतनमें चला करते हैं। अब कोई चेतन परम्परा किसी अचेतनके कार्यमें निमित्त बन गया तो लोग वहां उस चेतनको कर्तारूपमें पकड लेते हैं, किन्तु देखो तो जब निमित्त नैमित्तिक भावपूर्वक अचेतन अचेतनमें इतना कार्य बना वहां तो किसीको ये कर्ता नहीं कहना चाहते और यहां किसी चेतनके निमित्तसे परम्परा किसी अचेतनमें कोई परिणति बन गई तो यहां झट उस चेतनको कर्तारूपसे कह डालते हैं। निष्पक्षतया देखो तो जसे जो कुछ अचेतन अचेतनके प्रसंगोंमें परिणमन होकर बात है वही चेतन और अचेतनके सम्बन्धमें प्रसंगमें भी उसी किस्मकी बात है फिर इस चेतनको कर्ता क्यों कहा जाता ? इसलिये कहते कि इसमें ज्ञान है। समझ है, यह विकल्प मचाता है, सोचता है, और मैं कर दूंगा, ऐसा उसने भाव किया ऐसे ऐसे अनेक विकल्प यह किया करता हैं इस कारणसे उस चेतनके निमित्तसे बाह्य पदार्थोंमें कुछ परिणतियां दिख जायें तो झट चेतनको कर्ता कह डालते हैं। स्वरूपतः देखो तो प्रत्येक पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे अकर्ता है और पर्यायदृष्टिसे कर्ता है। किसका कर्ता है ? अन्यका कर्ता नहीं। अन्यका कर्ता तो निमित्तरूपसे कह सकते हैं पर प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय निरन्तर परिणमते रहते हैं, उन सब परिणमनोंका कर्ता वह वह पदार्थ है।

परमात्मगुणभक्ति—अहा इन पदार्थोंके स्वरूपका जौहर तकिये। इसका चमत्कार निरखिये, अपने आपके स्वरूपका भी चमत्कार देखिये। यह कैसा अद्भुत ज्ञानप्रकाशमय है। यदि बाहरके विकल्प न रखे जायें, किसी भी अन्य पदार्थका ममत्व इस चित्तमें न बसे, किसी भी पदार्थमें, जीवमें, परिवारमें, मित्रमें यह मेरा कुछ है, यह मेरा भला है। इसका मुझपर स्नेह है, मेरे भी इसके प्रति बड़ा राग है, आदिक किसी भी प्रकारका लगाव न रखें और विश्रामसे ही अपने आपमें ठहर जाये तो ये संकट रह नहीं सकते। आत्माका स्वरूप है प्रतिभास करना। बाह्य प्रतिभास तो समाप्त कर दिया तो अब यह अन्तरङ्गमें ही अद्भुत प्रतिभास होता है और उस ज्ञान प्रकाश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में यह स्वाभाविक आनन्दका अनुभव करता है। अहो ऐसा आनन्द तो मैंने अभी तक भी नहीं पाया था। कितना विलक्षण स्वाभाविक आनन्द जिसमें आकुलताका रंच भी नाम नहीं है, ऐसा विशुद्ध आत्मीय ज्ञानका प्रकाश पा लिया जाता है। पदार्थके स्वरूपके परिज्ञानमें यत्न बढ़ायें। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थका कर्ता नहीं है। लोक में भी तो कर्तापनकी बात कही जाती हैं, वह भी औपचारिक है। अन्य कोई ऐसा आत्मा ईश्वर जो सारे जगतके जर्रे जर्रेको अणु अणुको इन सब अदृष्ट पदार्थोंको सब को किया ही करता रहे यह बात तो दूर रहो, ईश्वर तो अनन्त ज्ञानानन्दमय होनेसे आदर्शरूप है इस नातेसे प्रभुकी भक्ति करना योग्य है। न कि वह मुझे बनाता है सुखी दुःखी करता है। तो डरसे उसकी भक्ति करें। प्रभुके गुणोंपर अनुरक्त होकर, झूमकर उसकी भक्ति करना सही है।

बुद्धिकी बुद्धिमानसे व्यतिरिक्तता या अव्यतिरिक्तताका विकल्प—पदार्थोंमे पदाथके ही कारण स्वयं परिणमनशीलता है इस मर्मसे अपरिचित लोग कैसे ये पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, ये पदार्थ कैसे आ गए किसने बनाये, बिना बनाये तो कुछ नजर ही नहीं आता। यह मकान बना है तो कारीगरने बनाया, ये ऐसे पहाड़, कैसे पत्थर उठे हैं, कैसी इनकी सकल बनी है, ये किसके द्वारा बनाये गए हैं ऐसी आशंका उत्पन्न होती है। तो इस सम्बन्धमें जो अनुमान बनाया गया कि पृथ्वी पर्वत आदिक किसी बुद्धिमन्निमित्तक हैं, अर्थात् इसका कारण कोई बुद्धिमान है, ऐसा अनुमान बनानेमें जो बुद्धिमान शब्द दिया है तो शंकाकारसे कहा जा रहा कि बुद्धिमान शब्दको भी पहिले सिद्ध करलो। बुद्धिमानका अर्थ क्या है? बुद्धिवाला। जैसे धनवानका अर्थ क्या है? धनवाला। इसमें शब्द है बुद्धि और मत् प्रत्यय लगा है जिससे बुद्धि मत् बनता है और रूप चलनेपर प्रथमाकी विभक्तिके एक वचनमें बुद्धिमान बनता है। पहिले बुद्धिमान शब्दका अर्थ ता बनाओ। यह बतलावो कि बुद्धिमानमें जो बुद्धिमान शब्द से प्रश्न किया जा रहा है। बुद्धिमानकी बुद्धि बुद्धिमानसे जुदी है या एकमेक है।

व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माने जानेके कारणोंमें चार विकल्प—यदि कहो कि बुद्धिमानकी बुद्धि बुद्धिमानसे न्यारी है, ये दोनों परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। बुद्धि चीज जुदी है, बुद्धिमान जुदी वस्तु है। तो जब ये दोनों अलग अलग तत्त्व हो गए तो यह बुद्धि इस बुद्धिमानमें है यह सम्बन्ध कैसे जोड़ा जा सकता है? बुद्धिमानकी यह बुद्धि है यह बात तुम किस कारणसे कहते हो? क्या इस वजहसे कहोगे कि यह बुद्धि बुद्धिमानका गुण है। यह बुद्धि बुद्धिमानकी है इसलिए अथवा उस बुद्धिमानसे अर्थात् ईश्वरसे इस बुद्धिका समवाय सम्बन्ध हुआ है। अतः यह बुद्धि बुद्धिमानकी है। समवाय सम्बन्ध एक घनिष्ठ सम्बन्धको कहते हैं। जैसे पानी में रूपका सम्बन्ध है तो यह समवाय सम्बन्ध है। पानीसे रूपको अलग तो नहीं कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकते, पर रूप गुण नैयायिकोके यहाँ अलग तत्त्व है और पदार्थ अलग तत्त्व है। तो बुद्धिमानमें बुद्धिका समवाय सम्बन्ध है यह नहीं कह सकते हैं फिर बुद्धिमानकी यह बुद्धि है यह कैसे सिद्ध किया जा सकता। क्या ईश्वरका वह कार्य है, अर्थात् जैसे बुद्धिमानने जगतको किया, क्या यों ही बुद्धिमानने बुद्धिका निर्माण किया जिसकी वजहसे यह कहेंगे कि यह बुद्धि बुद्धिमानकी है अथवा यह बुद्धि आधेय है और बुद्धिमान आधार है। बुद्धिमानमें बुद्धि पायी जाती हैं इस कारणसे कह सकते हैं कि यह बुद्धि बुद्धिमानकी है। जैसे घी तीन-चार बर्तनोंमें भरा है, मिट्टीके बर्तनमें भी है और अल्युमोनियमके बर्तनमें भी है। कोई अल्युमोनियमके बर्तनका घी ला दे तब कहे कोई कि अल्युमोनियमका घी क्यों लाया तो क्या वह घी अल्युमोनियमका हो गया। लोकमें आधार आधेय सम्बन्धके कारण आधारका आधेय कहा जाता है। तो क्या इस आधार में यह बुद्धि रहती है इस कारणसे यह कह रहे हो कि यह बुद्धिमानकी है, इस प्रकार बुद्धिमानकी यह बुद्धि है ऐसा सम्बन्ध कैसे बन गया भिन्न होने पर। यों इस प्रसंगमें चार विकल्प किए गए हैं।

बुद्धिमानका गुण होनेसे व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध मानने की असिद्धि—ये समस्त पदार्थ किसी बुद्धिमान अर्थात् ईश्वरके द्वारा बनाए गए हैं ऐसा कहनेमें भिन्न बुद्धिको बुद्धिमानके साथ सम्बन्ध बतलानेके लिए जो यह पक्ष किया गया था कि चूंकि यह बुद्धि बुद्धिमानका गुण है इस कारण उस बुद्धिमानकी बुद्धि कहलाती है। उसमें उसका सम्बन्ध जुड़ता है। ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि जो चीज अत्यन्त भिन्न है उसमें यह उसका ही गुण है यह नहीं बताया जा सकता। हम पूछेंगे कि जब बुद्धि उस ईश्वरसे जुदी चीज है तो बुद्धिका सम्बन्ध ईश्वरसे ही क्यों जोड़ा गया, आकाशसे क्यों नहीं जोड़ा गया ? आकाश बुद्धिमान बन जाता, ज्ञानवान हो जाता। जब बुद्धि जैसे ईश्वरसे जुदी है इसी प्रकार आकाशसे भी जुदी है। बुद्धिकी भिन्नताकी समता होने पर भी बुद्धिको ईश्वरसे जोड़ दिया जाय और आकाशसे न जोडा जाय यह तो एक पक्षकी बात है।

बुद्धिका बुद्धिमानमें समवाय होनेसे व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि—यदि कहो कि बुद्धिमानकी यह बुद्धि है यह सम्बन्ध हमने समवायसे जाना है। चूंकि उस बुद्धिमान ईश्वरमें बुद्धिका समवाय पाया जाता है, समवायका अर्थ है एक तादात्म्य जैसा सम्बन्ध, अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध। यह बात भी अयुक्त है क्योंकि प्रथम तो समवाय सम्बन्ध ही कोई चीज नहीं है, या तो है तादात्म्य या है संयोग। समवाय ऐसी क्या चीज है जो पदार्थमें सदा तो रहे और फिर भी जुदी जुदे मानते। जैसे पुद्गलमें रूप है तो जैन शासन कहता है कि यह पुद्गलमें रूप गुणका तादात्म्य है। पुद्गल रूपमय है न कि पुद्गलका यह रूप है। वह पुद्गल ही रूपमय है इसी प्रकार जिन जिन पदार्थोंमें जो जो स्वभाव पाया जाता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह पदार्थ उस स्वभावसे तन्मय होता है। तो एक तादात्म्य भी होता है बाकी सब सयोग सम्बन्ध होता है। जीवके साथ रागादिक भावोंका संयोग सम्बन्ध होता है। यद्यपि ये रागादिक भाव जीवमें एकरूप हो रहे हैं उस काल में, तिस पर भी ये मिट जाने वाले हैं, आत्माके स्वभाव नहीं है, इस कारण उन्हें संयोग सम्बन्ध कहा है। जरा घनिष्ठ शब्द लगा दो। घनिष्ठ सम्बन्ध है, पर यह समवाय सम्बन्ध और कहांसे आ पड़ा ? समवायका और कोई स्वरूप नहीं है जिससे कि समवायसे बुद्धिमानको बुद्धि के साथ जोड़ दिया जाय, और कदाचित मान लो कि समवाय सम्बन्ध है तो समवाय भी तो उन दोनोंसे जुदा है ना, तुम तो भेद एकान्त पर तुल गए। समवाय मान भी लें तो वह समवाय भी तो दोनोंसे जुदी चीज रही। और यह आपत्ति भी आयी कि जब समवाय बुद्धिसे भी निराला है, बुद्धिमान ईश्वरसे भी निराला है तो इस समवाय का उन दोनोंमें सम्बन्ध जुटाना यह व्यवस्था नहीं बन सकती। क्योंकि यों तो आकाश भी निराला है, फिर बुद्धिका आकाशमें समवाय क्यों नहीं हो जाता ? उस बुद्धिसे क्यों ईश्वरका समवाय होवेगा ? तो समवायसे भी यह बात न सिद्ध कर सकेंगे कि यह बुद्धि बुद्धिमानकी है।

बुद्धि बुद्धिमानका कार्य होनेसे व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि--यदि कहो कि उस बुद्धिमान ईश्वरका कार्य है वह बुद्धि जैसे बुद्धिमान ईश्वरने इस जगतकी रचना की है। तो वह बुद्धि ईश्वरका कार्य है इस कारणसे यह सम्बन्ध बता सकते हैं कि बुद्धि बुद्धिमानकी है, यह बात भी अयुक्त है। क्या कारण है, किस वजहसे आप कह रहे हैं कि यह बुद्धि बुद्धिमानका कार्य है ? यदि यह कारण बताओगे कि बुद्धिमान होने पर वह बुद्धि हुई है इस कारणसे वह बुद्धि उस बुद्धि वालेका कार्य है तो वह बुद्धि आकाश आदिकके होने पर भी तो हुई है। जैसे ईश्वर नित्य है, व्यापक है, सदा रहता है इसी प्रकार ये आकाश आदिक भी तो नित्य हैं, व्यापक है, सदा रहते हैं, फिर यह बुद्धि उस ईश्वरका कार्य क्यों रहा, आकाश का कार्य क्यों नहीं बन बैठा ? तो यह भी बात युक्त नहीं बैठी कि बुद्धिमानका कार्य है, इस कारण बुद्धिका सम्बन्ध हम बुद्धिमानमें मान लेते हैं और बुद्धिमान शब्द सिद्ध हो जाता है।

अन्य व्यतिरेकसे भी व्यतिरिक्त बुद्धिका नित्य बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि--शायद यह कहो कि बुद्धि बुद्धिमानका कार्य है क्योंकि बुद्धिमानके न होनेपर बुद्धि नहीं हो सकती, यह बात भी ठीक नहीं है, क्योंकि तुम्हारा वह बुद्धिमान ईश्वर नित्य है, व्यापी है। ऐसा कोई सम्बन्ध आ ही नहीं सकता तुम्हारे सिद्धान्तके अनुसार क्योंकि वह नित्य व्यापक है। ऐसी कोई संभावना नहीं कि ईश्वरका कभी अभाव भी हो, और जो भी मुक्त हुए हैं उनका कभी भविष्यमें अभाव होता ही नहीं है अन्य शासनमें भी। आपके शासनमें तो भले ही यह माना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया है कि कोई जीव मुक्त हो जायगा और बहुत कालके बाद उसे यहां संसारमें लाया जायगा, जन्म मरण कराया जायगा, पर वह आनन्दमगन ईश्वर तो नित्य है व्यापी है, कोई यह स्थिति नहीं आ सकती कि उसका कभी अभाव होगा। तब फिर उसका अभाव होनेपर बुद्धि नहीं होती है यह व्याप्ति नहीं बना सकते। जैसे जब हम यहां देखते हैं कि अग्निके होने पर धुंवा नहीं होता। देखते हैं ना, तो हम यह दृढ़तासे कह सकते हैं किसी भी जगह कि अग्निके बिना धुंवा नहीं होता इस कारणसे धुंवा अग्नि का कार्य है पर ऐसा तो कभी देखा ही नहीं जा सकता कि बुद्धिमान ईश्वरके बिना बुद्धि न बन सके कभी ऐसी स्थिति कभी हो ही नहीं सकती, तो कैसे यह मान लिया जाय कि ईश्वरका अभाव होने पर बुद्धिका अभाव होता है। इस कारण बुद्धि ईश्वरका कार्य है।

आधार आधेयतासे भी व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि—यदि यह कहो कि बुद्धिमानमें बुद्धि पाई जाती है, बुद्धि आधेय है इस कारणसे यह कहा जाता कि यह बुद्धि बुद्धिमानकी है, यह भी ठीक नहीं क्योंकि आधेयपनेका नाम क्या? क्या समवाय सम्बन्धसे उस बुद्धिमान सृष्टिकर्ता में बुद्धि रहती है इस कारण कहते हो कि यह बुद्धि बुद्धिमानका है। बुद्धिमान तो आधार है और बुद्धि उसका आधेय है। तो समवायका तो उत्तर पहिले दे ही चुके अगर कहो कि तादात्म्यका सम्बन्ध है तो यह बात तुम्हारी गलत है क्योंकि तादात्म्य सम्बन्ध ही तुमने नहीं माना। जैन शासनमें तादात्म्य माना है जैसे आत्मामें ज्ञान-स्वरूपका तादात्म्य है. अग्निमें उष्णताका तादात्म्य है। कहीं ऐसा नहीं होता कि अग्नि अलग रहे और उष्णता अलग रहे। तो चाहे अग्नि बुझ जाय, पर वह अपनी उष्णताका परित्याग नहीं करती क्योंकि अग्निमें उष्णताका तादात्म्य है। तादात्म्य है तो उसका नाम सम्बन्ध न रखो, है ही तादात्म्य। तादात्मक वस्तु है यह बात बताने के लिए तादात्म्य नाम रखा गया है, पर शंकाकारके सिद्धान्तमें तादात्म्य कुछ नहीं हुआ करता है। तादात्म्य है या संयोग? तादात्म्य शंकाकारने माना ही नहीं है। समवायसे भी बुद्धिमान आधार है बुद्धि आधेय है यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

सम्बन्ध मात्रसे व्यतिरिक्त बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध माननेकी असिद्धि—यदि कहो कि सम्बन्ध मात्रसे बुद्धि बुद्धिमानमें रहती है, चूंकि सम्बन्ध है, जहां बुद्धिमान है वहीं बुद्धि है, इतने सम्बन्ध मात्रसे यदि किसीका कुछ मान लिया जाय तो घट आदिक पदार्थोंमें पृथ्वी आदिकके गुणका प्रसंग हो जायगा। घटमें वह गुण होना चाहिए जो पृथ्वीमें है। यह दरी जो बिछी है इस दरीमें पृथ्वीके गुण आ जाने चाहिए क्योंकि इसमें पृथ्वीका सम्बन्ध है। पृथ्वी पर कोई मनुष्य बैठा है तो उस मनुष्यमें जमीनके गुण आ जाने चाहिएँ क्योंकि पृथ्वीका सम्बन्ध है। सम्बन्धमात्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से कोई किसका कहलाने लगे तो यों तो बड़ी अव्यवस्था बन जायगी। तो यह सिद्ध नहीं हो सका कि बुद्धिमानकी यह बुद्धि है. बुद्धि वाले इस शब्दको ही सिद्ध नहीं कर सक रहे फिर यह कहना कि यह सब जगत किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है यह बात तो बाद की है, पहिले बुद्धि वाला इसको ही तो सिद्ध कर दो।

सामस्त्यरूपसे या असामस्त्यरूपसे बुद्धिका बुद्धिमानमें सम्बन्ध माननेको विकल्प – थोड़ी देरको मान भी लिया जाय कि इस बुद्धिका सम्बन्ध उस ईश्वरमें है, उस बुद्धिमानमें है तो यह बतलावो कि उस बुद्धिका सम्बन्ध बुद्धिमानमें तादात्म्यरूपसे है, सर्वरूपसे है या अव्यापकरूपसे है। जैसे पानीमें दूध मिला दिया तो उस समय दूध और पानी सर्वरूपसे सम्बन्धित हैं कि नहीं, सम्बन्धित हैं। और पानीमें चावल डाल दिया तो चावल पानीमें सर्वरूपसे सम्बन्धित नहीं हैं। ऐसे ही पूछा जा रहा है कि उस बुद्धिमानमें बुद्धिका जो सम्बन्ध मानते हो कि इसमें बुद्धिका सम्बन्ध है तो क्या सर्वरूपसे बुद्धिका सम्बन्ध है या कुछ कुछ मायनेमें बुद्धिमानको बुद्धिका सम्बन्ध है।

दूध और पानीमें भी तादात्म्य सम्बन्धका अभाव—अभी जैसे बताया कि दूध और पानीका सर्वरूपसे सम्बन्ध है वहां भी सर्वरूपसे सम्बन्ध नहीं है, दूधमें दूधके कण अलग-अलग हैं, और पानी मिलनेपर भी पानीके कण अलग हैं, इस बात को तो किसी यंत्रसे अलग-अलग करके बताया जा सकता है कि दूध और पानी दोनों न्यारे न्यारे हैं। उनके गुण व फल भी न्यारे-न्यारे हैं दूध पीकर अन्य प्रभाव होता है जल पीकर अन्य और इसकी वजहसे जो भाव बनते हैं उन भावोंका भी फल न्यारा-२ है। एक कोई महिला अपने गाँवसे किसी शहरमें दूध ले जाकर बेचती थी तो रास्तेमें एक नदी पड़ती थी उसमेंसे वह जितना दूध हो उतना ही पानी मिला लिया करती थी और जितनेका भी बिके उसका हर महीने पैसा मिल जाता था। तो महीना भरमें मानो ६०) का दूध हुआ, तो क्या हुआ कि उन रुपयोंको लेकर जब वह अपने गांव जा रही थी तो उस रास्तेमें पड़ने वाली नदीमें वह नहाने लगी। कपड़े वे रुपयोंको उसने बाहर रख दिया था। उस जगह नदीके किनारेपर एक कोई पेड़ था, उसपर एक बंदर बैठा था, तो वह बंदर नीचे उतरकर वे कपड़े व रुपये उठाकर उसी पेड़पर चढ़ गया। अब बुढ़िया बड़ी हैरान हुई। बहुत बहुत मिन्नते की उस बंदरकी, पर उस बन्दरने उसके रुपयोंकी पोटली न दी उस पोटलीको खोल लिया और उन रुपयोंमेंसे एक बार एक रुपया नदीमें डाले दूसरी बार बाहर डाले, फिर एक रुपया नदीमें डाले, एक रुपया बाहर डाले। वह बुढ़िया यह देखकर बहुत पछता रही थी – हाय ! इतने दिन दूधमें पानी मिलाकर बेंचा तो भी देखो दूधके रुपये तो हमें मिल रहे हैं और पानीके रूपये पानीमें जा रहे हैं। तो दूध और पानीमें परस्परमें तादात्म्य नहीं है। दूधमें जो रूप है या जो कुछ है उसका तादात्म्य है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सामस्त्यरूपसे बुद्धिमानमें व्यतिरेक बुद्धिके व्यापनेकी असिद्धि—यदि सामस्त्य रूपसे कोई तत्त्व रहता है पदार्थमें तो वह तादात्म्यरूपसे रहता है। पदार्थमें तो वह तादात्म्यरूपसे रहता है। सदा रहे ऐसा सम्बन्ध सम्बन्ध नहीं है क्योंकि तादात्म्य है। लेकिन तादात्म्य तो शंकाकारने माना नहीं किन्तु सम्बन्ध मात्र मान रहा। तो उस सम्बन्धके सम्बन्धमें पूछा जा रहा कि बुद्धिका उस बुद्धिमानमें जो सम्बन्ध माना है क्या वह सामान्य रूपसे माना है या कुछ कुछ रूपसे माना है। समस्त रूपसे तो माना नहीं जा सकता क्योंकि बुद्धि आत्माका विशेष गुण है। जैसे हम लोगोंकी बुद्धि यह बुद्धि हम सबके आत्माओंका गुण है इस कारणसे यह बुद्धि समस्त रूपसे व्यापक नहीं इसी प्रकार बुद्धि ईश्वरके आत्माका गुण है तो वह भी ईश्वरमें सर्वरूपसे व्यापक नहीं हो सकती इस प्रसंगमें शङ्काकारके सिद्धान्तको थोड़ा सुन लीजिए। बुद्धि आत्माका गुण है। आत्मा स्वयं बुद्धि रहित है। बुद्धि आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा तो एक चैतन्यमात्र है। उसमें जब बुद्धिका समवाय सम्बन्ध जुड़ता है तब आत्मामें जानकारी प्रकट होती है और वह आत्मा सर्वव्यापक है, एक है, बुद्धि आत्मामें सामस्त्यरूपसे रह ही नहीं सकती। बुद्धि आत्माका स्वरूप ही नहीं है। कभी रहा कभी न रहा। जिस समय मोक्ष होता है उस समय ज्ञान बुद्धि सब नष्ट हो जाते हैं खाली वह आत्मा रह जाता है ज्ञानरहित, उसका नाम मोक्ष माना गया है। तो ऐसे आत्माका जिसका ज्ञानस्वरूप ही नहीं, बुद्धिस्वरूप ही नहीं, फिर यह बुद्धि उस आत्मामें सर्वरूपसे रह जाय यह कैसे सम्भव है। तो व्याप करके सामस्त्य रूपसे बुद्धि आत्मामें आयी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता।

महापरिमाणके आत्मगुणत्वकी असिद्धि बुद्धिको सामस्त्यरूपसे प्रभुमें व्यापक सिद्ध करनेके लिये शंकाकार कहता है कि आत्माके महापरिमाणके साथ हम लोगोंकी बुद्धिके उदाहरणका व्यभिचार आ जायगा अर्थात् यह कहना कि हम लोगों की बुद्धि जैसे सामस्त्यरूपसे नहीं रह रही है इसी प्रकार ईश्वर आत्माकी बुद्धि भी ईश्वरमें सर्वरूपसे नहीं रह सकती। यह बात इस तरह न बनेगी कि हम लोगोंका जीव महापरिमाण नहीं रखता, पर आत्मा तो महापरिमाण है वह तो सर्वव्यापक है। समाधानमें कहते हैं कि हम आत्माका महापरिमाण मानते ही नहीं। आत्मा तो देह प्रमाण है। किसी समय एक केवली समुद्घातकी अवस्थामें यह उत्ताप सर्वव्यापक बन गया प्रदेशोंमें, पर वह एक समयके लिए बना और वह भी सकारण बना, आत्मा तो देहप्रमाण ही रहता है। आत्मामें आत्माकी ओरसे कोई निजी परिमाण नहीं है कि यह आत्माकी ओर से कोई निजी परिमाण नहीं है कि यह आत्मा कितना बड़ा होना चाहिये। जैसे प्रकाश, प्रकाशकी ओरसे प्रकाशका परिमाण नहीं, यदि घड़ेके अन्दर दीप जल रहा है तो घड़ेके परिमाण बराबर प्रकाश है और यदि कमरेमें प्रकाश जल रहा है तो कमरेके परिमाण बराबर प्रकाश है। तो इस प्रकाशका क्या परिमाण कहा जाय ? ऐसी ही ज्ञानकी बात है। ज्ञानका क्या परिमाण बताया जाय। ऐसे ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्माका भी क्या परिमाण बताया है ? यह आत्मा जिस शरीरमें पहुंचा उस परिमाण आकारका हो गया। आत्माका महापरिमाण नहीं माना गया इस कारण महापरिमाण से भी दोष नहीं आता है उस बुद्धिकी असंकुचितताका। ईश्वरमें बुद्धि व्याप करके फैली हुई है, सम्बन्ध है। यह सिद्ध किया जा रहा है शंकाकारकी ओरसे और उसमें आपत्तियां दिखाई जा रही हैं। इस तरह बुद्धिका बुद्धिमानमें सामस्त्यरूपसे रहना भी नहीं बनता। तो पहिले 'बुद्धिमान' इतने ही शब्दको सिद्ध करलो पीछे अपना अनुमान बनाना कि यह सारा लोक किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है।

प्रभुमें बुद्धिका सामस्त्यरूपसे न व्यापनेकी शंकाकार द्वारा असंगत अर्धस्वीकृति— पृथ्वी पर्वत आदिक पदार्थ किसी बुद्धिमान प्रभुके द्वारा बनाये हुए हैं, इस सम्बन्धमें बुद्धिमान शब्दका अर्थ पूछा जा रहा है। बुद्धिमान शब्दका अर्थ क्या है ? बुद्धि वाला। तो वह बुद्धि प्रभुसे भिन्न है या अभिन्न है। भिन्न पक्षमें ये सब वर्णन चल रहे हैं, भिन्न बुद्धि है तो बुद्धिका बुद्धिमानके साथ सम्बन्ध जोड़ना अशक्य है। कदाचित् किसी प्रकार सम्बन्ध मान भी लिया जाय तो सामस्त्यरूपसे पूर्णरूपसे बुद्धिमानमें बुद्धिका सम्बन्ध बनना सिद्ध नहीं होता। उसमें आपत्तियां आती हैं। इस प्रकरणको सुनकर शंकाकार यह कह रहा है कि ठीक है। बुद्धिमानमें बुद्धि पूर्णरूप से अर्थात् समस्त दुनियामें व्याप करके बुद्धिमानमें न रहे, इसे हम कुछ स्वीकार भी करते हैं। जैसे कि हम लोगोंकी बुद्धि आदिकमें यह सामर्थ्य नहीं है कि समस्त अर्थों का ग्रहण करले, इस ही प्रकार समस्त अर्थोंको ग्रहण न कर सकनेकी बात प्रभुमें रही आये। इसके जवाबसे पहिले शंकाकारके मनमें कौनसा स्वार्थ पड़ा हुआ है इस पर निगाह दें। हालांकि शंकाकारको ऐसा कहना न चाहिए था कि ईश्वरमें बुद्धि पूर्णरूप से नहीं हुई है, किन्तु कह रहा है तो इसका प्रयोजन यह है कि हम यदि यहां सिद्ध कर देंगे कि जैसी बात हम लोगोंको दिखाई जाती है बुद्धिके बारे में, कुछ दूर तक जानना, कुछ पदार्थोंका ग्रहण करना, ऐसी बात ईश्वरमें भी हम मान लें इस समय तो हमें यह सिद्ध करनेमें बड़ी सुगमता होगी कि चूंकि ये घट पट कुम्हार आदिकके द्वारा किये जाते हैं तो पृथ्वी पर्वत आदिक भी किसीके द्वारा किए ही जाते हैं। ऐसा सिद्ध करनेमें बल मिलेगा इस लाभसे शंकाकार यहां तक उतर आया है कि यदि बुद्धि प्रभुमें सामस्त्यरूपसे नहीं है तो न रहो, हमें मंजूर है, हम लोगोंकी बुद्धि भी समस्त पदार्थोंको ग्रहण नहीं कर पाती।

बुद्धिका प्रभुमें सामस्त्यरूपसे व्यापनेका शंकामें अनिर्णय—सामस्त्यरूप से बुद्धिकी व्याप्ति न माननेकी अभिलाषा पर उत्तरमें कहते हैं कि तुम कुछ स्वार्थको लिए हुए बोल रहे हो, सो तुम्हारी बात सही है, रहो क्योंकि ऐसा माने बिना तुम कार्यपना देखकर ये ईश्वर के बनाये गए हैं यह भी तो सिद्ध न कर पावोगे, लेकिन जिस तरह प्रभु प्रभुमें हम लोगोंकी बुद्धिसे कुछ तो विलक्षणता है, केवल कहनेसे क्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता ? इसमें तो प्रभुकी अज्ञता व सदोषता सिद्ध होगी । सभी ऐसा मानते हैं कि बुद्धिसे कुछ विशेषता, कुछ विलक्षणता प्रभुकी बुद्धिमें है, अदृष्ट होकर भी मानना पड़ेगा, ऐसी विलक्षणता है, तो इसी तरह यहांके घटपट आदिकके कार्य किसी कर्ता पुरुषके निमित्तसे बने हैं । किन्तु इससे विलक्षण हैं वे पृथ्वी पर्वत आदिक उनके करने वाला कोई नहीं है । यहां तो किसी कुम्हार जुलाहा आदिकके द्वारा कुछ चीजें बनाते हुए देखा भी जाता है पर ये पृथ्वी वृक्ष आदिक जो चेतन अचेतन पदार्थ दिखते हैं, ये किसीके द्वारा उत्पन्न किए जाते नहीं दिखते हैं । तो यह तो सिद्ध नहीं कर सके कि प्रभुमें बुद्धि सामस्त्यरूपसे व्याप रही है ।

बुद्धिमान ईशमें बुद्धिका असामस्त्यरूपसे व्यापनेमें अभिमतकी असिद्धि—यदि कहो कि सामस्त्यरूपसे बुद्धि नहीं व्यापार ही कुछ रूपसे, कुछ जगह में बुद्धिमानमें बुद्धि है तो फिर मानलो बुद्धिमान इस नगरमें बैठा हुआ है और उसकी बुद्धि यहीं व्याप रही है, यहीं लग रही है तो अन्य देशोंमें जो कार्य उत्पन्न हो रहे हैं उन कार्योंमें इस प्रभुका व्यापार कैसे बनेगा, क्योंकि वह कार्य प्रभुके सामने ही नहीं है । जहां प्रभु बुद्धि लगा रहा है । जहां बुद्धिका प्रयोग चल रहा है वहांके कार्य बनते रहेंगे और जहां बुद्धिका प्रयोग नहीं चल रहा है वहां कार्य कैसे बन सकेंगे ? यदि असन्निधान होनेपर भी कार्य वहां होने लगे तो एक बात सिद्ध करनेके लिये तुम ने जो आत्माको सर्वगत माना उस प्रकार सर्वगत मानना भी अयुक्त हो जायगा । शंकाकारका यह आशय है कि दूसरे देशमें जो धन वैभव रखा है वह एक पुण्यवानके पास कैसे आ जाता है. इसमें वह यह युक्ति देता है कि चूंकि अदृष्ट व्यापक है भाग्य फैला हुआ है आत्मा फैला हुआ है तो यह भाग्य उस जगहकी विभूतिको खोजकर ले आता है । अरे भाई प्रभुकी बुद्धि सब जगह व्यापक न होकर भी सब जगहकी वह रचना कर लेता है तो आत्मा भी व्यापक न होकर भाग्य भी सर्व जगह न जाकर अपनी ही जगहमें रहकर उस सब सम्पदा वगैरहको खोज लेना आदिक कार्य करले तो क्या आपत्ति है । प्रभुकी बुद्धिमें बुद्धिमानका ज्ञान नो बुद्धिमानसे व्यतिरिक्त है तो बुद्धिका सम्बन्ध उस बुद्धिमानमें नहीं बन सकता यदि यह कहो कि उस बुद्धिमानसे बुद्धि अभिन्न है, एकमेक है, सर्वथा एक है तब तो या तो आत्मा मात्र मानना या बुद्धि मात्र मानना क्योंकि वे दोनों एक हो गए । तो बुद्धिमान शब्दमें जो मतु प्रत्यय लगा है. 'वाला' इस शब्दका कोई अर्थ नहीं बनता । तो पहिले बुद्धिमान शब्द ही तो सिद्ध करलो जब यह सिद्ध करना कि जगमें जो कुछ पदार्थ हैं वे किसी न किसी बुद्धिमानके द्वारा, ईश्वरके द्वारा बनाये गए हैं ।

बुद्धिमान प्रभुकी बुद्धिको क्षणिक माननेपर आपत्ति—अब दूसरी बात सुनो । प्रभुका वह ज्ञान, जिस ज्ञानके प्रयोगके द्वारा वह जगतकी रचना करता है, वह ज्ञान क्या क्षणिक है या नित्य है । क्षण क्षणमें उसकी बुद्धि नष्ट होती रहती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है या वह बुद्धि सदाकाल ज्यों की त्यों बनी रहती है। यदि कहो कि बुद्धिमानकी बुद्धि क्षणिक है तो फिर बुद्धि तो उत्पन्न होकर मिट गई, अब दूसरी बुद्धि बुद्धिमानमें कैसे पैदा होती है उसका कारण तो बताओ। नैयायिक सिद्धान्तमें किसी भी कार्यकी उत्पत्ति होनेके लिए तीन कारण बताये गए हैं – समवायि कारण असमवायि कारण और निमित्त कारण। समवायि कारण तो वह उपादानभूत चीज कहलाती है जिसमें कार्य परिणमन होता है, और असमवायि कारण जो कि कार्यके समयमें भी रहते हैं। किन्तु पहले न थे ऐसे तत्त्वोंका सम्बन्ध, असमवायि कारण कहलाता है और निमित्त कारण वे कहलाते हैं जो कार्यके साथ नहीं लगे हैं। कार्य होने पर वे बिछुड़े हुए रहते हैं। जैसे कपड़ा बुना जाता है तो कपड़ा बुननेमें समवायि कारण तो है वह तंतु, डोरा सूत जिसका कि कपड़ा रूप परिणमन हो जाता है और असमवायि कारण है उन सूतों का परस्पर संयोग होना, जो कार्यके समयमें भी रहता है पर कार्यसे पहिले न था। उन तंतुओंका संयोग बनाना यह असमवायि कारण है और जुलाहा व वीमसलाका आदिक जो हथियार हैं कपड़ा बुननेके वे सब निमित्त कारण कहलाते हैं। इस प्रकार बुद्धिमान प्रभुमें नवीन बुद्धियां उत्पन्न होती हैं तो उसके ये तीन कारण तो बतावो। आप एक कारण तो बता देंगे, वह प्रभु है, वह समवायि कारण, जिसमें कि बुद्धि बनती है तो समवायि कारण तो आपका है किन्तु आत्मा और आपका संयोग बने, असमवायि-कारण मिले और निमित्त शरीरसे मनका संयोग बने, तब बुद्धि बने है। नैयायिकके सिद्धान्तमें बुद्धिके निर्माणका तरीका यह है कि वह जीव तैयार रहे जिसमें ज्ञान बनता है। वह तो हुआ समवायि कारण और उस आत्मामें मनका सम्बन्ध जुट जाय यह है असमवायि कारण और फिर प्रकाश मिले, आंखें ठीक होना आदिक जो निमित्त हैं बाहरी चीजें वे निमित्त कारण हैं, तो ईश्वरमें जो बुद्धि उत्पन्न होगी अब नई, क्योंकि बुद्धि उत्पन्न होनेमें वहां न तो असमवायि कारण है, क्योंकि वहां आत्मा और मन का संयोग नहीं होता और न शरीर आदिक निमित्त कारण हैं। शरीर रहित है वह अनादिमुक्त ईश्वर और वह मनके संयोगसे परे है। वह तो केवल आत्मा ही आत्मा है तो उसमें बुद्धि कैसे उत्पन्न हो जायगी।

कारणत्रयके अभावमें भी प्रभुकी बुद्धिकी उत्पत्ति मानने पर शंकाकारके अनिष्ट प्रसंग — यदि कारणके अभाव होने पर भी यह कहेंगे कि चूंकि प्रभुकी बुद्धि हम लोगोंसे विलक्षण है, विशिष्ट है तो हम लोगोंके जैसे कार्य कारण पूर्वक होते हैं वैसे ही कारणपूर्वक प्रभुमें भी कार्य बने, बुद्धि बने, यह समानताकी बात नहीं ला सकते क्योंकि प्रभुकी बुद्धि हम लोगोंसे विलक्षण है। हम लोगोंकी बुद्धि तीन कारणोंसे बनती है। हम हैं यह तो समवायि कारण है और मुझमें मनका संयोग होता है यह असमवायि कारण है और इन्द्रिय है, प्रकाश है ये सब निमित्त कारण हैं। तो हम लोगोंमें तो इन तीन कारणों पूर्वक बुद्धि उत्पन्न होगी, पर प्रभुके लिए यह जरूरी नहीं है, क्योंकि प्रभुकी बुद्धि हम लोगोंसे विलक्षण है, विशिष्ट है, यदि ऐसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहेंगे तो फिर यहां भी यह कह लो कि ये जो घट, पट, मकान, चौकी, कपड़ा आदिक कार्य हैं ये तो किसी पुरुषके कर्तापूर्वक हैं, ठीक है कहना किन्तु जो पर्वत आदिक हैं वे तो घटपटादिकसे विलक्षण हैं, उनको किसी बुद्धिमानके द्वारा किया गया है ऐसा न कहना चाहिए। जबकि जैसे कारणत्रयके बिना प्रभुकी बुद्धि उत्पन्न हो गयी है तो यहां जैसे कार्य वह नहीं है तो वे पर्वत आदिक भी किसी बुद्धिमानके बिना किए हुए बन जायें तो इसमें क्या विरोध है ?

कारणयत्रके अभावमें बुद्धिकी उत्पत्ति माननेपर कर्मयुक्त आत्माके ज्ञानानन्दविकासकी सिद्धि - कारणयत्रके अभावमें बुद्धिकी उत्पत्ति माननेमें दूसरी बात यह है कि शंकाकारो तुम लोग ऐसा मानते हो कि वास्तविक मुक्त, सच्चा ईश्वर तो वह एक अनादि मुक्त ही है। बाकी लोग तपश्चरण करके मुक्त बन जायें सो भले ही मुक्त बन जायें, पर उनमें यह आनन्द नहीं है जो उस अनादि मुक्त ईश्वरमें आनन्द है। कार्यमुक्त ईश्वरोंके शरीरका सम्बन्ध नहीं है, सो उनमें न तो आनन्द है और न ज्ञान है। ये मुक्तात्मा जो हुए हैं इनमें वह कला नहीं है जो कला अनादिमुक्त ईश्वरमें है, कि शरीरके बिना ही वह आनन्दमग्न रहा करता है और उसमें ज्ञानका विकास रहता है, बुद्धि रहती है। लेकिन जो और मुक्त हुए हैं वे चूंकि कर्मसे मुक्त हुए हैं, अनादिमुक्त नहीं हैं, शरीर उनके हैं नहीं तो शरीरके बिना वे आनन्द कैसे पा सकेंगे, और वे ज्ञान कैसे बना सकेंगे ? कर्म मुक्तिका स्वरूप यही है जहाँ न आनन्द है और न ज्ञान है, वह शंकाकारका आशय है। वह मुक्त तो एक इस अनादि मुक्त ईश्वरकी ज्योतिमें मिलनेके कारण कुछ कीमत रखते हैं, स्वयं उनका कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि वे तो जगतके प्राणियोंमेंसे ही मुक्त हुए हैं। जगतके प्राणियोंका ढंग कैसे मिट जायगा ? तो यह बात भी अब तुम कह नहीं सकते क्योंकि जब यह मान लिया तुमने कि ईश्वरमें बुद्धि क्षणिक होकर भी तीन कारणोंके बिना हो जाती है तो तब जैसे मान लिया कि जिस कारण त्रयके होनेपर हम लोगोंके बुद्धि होती है वैसा कारणत्रय न होनेपर भी ईश्वरमें बुद्धि होती है, यों बुद्धिमानमें बुद्धि मान ली गई। तो चूंकि वह भी मुक्तात्मा हम लोगोंसे तो विलक्षण हो ही गया है तो हम लोगोंके शरीरके कारण ज्ञानानन्द मिलता है तो उनकी यहाँ समानता नहीं लायी जा सकती है तब मुक्तका स्वरूप ज्ञानानन्दात्मक मानो। ज्ञान रहित उन्हें मानना भी युक्त नहीं है।

बुद्धिमानकी बुद्धिको नित्य माननेपर अनैकान्तिक दोष—यहाँ यह प्रतिपादन किया है कि बुद्धिमानकी बुद्धि, प्रभुका ज्ञान जिस ज्ञानके प्रयोग द्वारा संसारकी रचना करता है वह बुद्धि प्रभुकी क्षणिक है या नित्य ? क्षणिक तो मान नहीं सकते। अभी ही अनेक आपत्तियाँ दी हैं। यदि कहो कि वह ईश्वरकी बुद्धि नित्य है तो इसमें याने अक्षणिक बुद्धिके पक्षमें भी इस ही बुद्धिके द्वारा अनेकान्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दोष आता है, व्यभिचारित्व दोष आता है। कैसे ? एक अनुमान बनाया जाय कि शब्द क्षणिक है। क्योंकि हम आप छद्मस्थ जीवोंके द्वारा प्रत्यक्ष होनेपर यह शब्द व्यापक द्रव्य जो आकाश है उसका गुण है। शब्दोंको नैयायिक लोग आकाशका गुण मानते हैं। तो आकाशका विशेष गुण होनेसे और हम आप छद्मस्थोंके द्वारा प्रत्यक्ष होनेसे ये शब्द क्षणिक होंगे, सुख आदिककी तरह। जैसे सुख एक व्यापक आत्माका विशेष गुण है, पर हम आप लोगोंके द्वारा प्रत्यक्ष हो गया इस कारण क्षणिक है सुख। तो इस अनुमानमें देखिये—बात तो सिद्ध हो जाती है सही, लेकिन आप फिर भी शब्दको नित्य मानते हो।

शब्दनित्यत्ववादका विचार—नैयायिक सिद्धान्त शब्दको नित्य मानता है शब्द सदा रहते हैं, ज्यों के त्यों रहते हैं। सभी जगह पूरे भरे हुए हैं। हम आप लोगों की जीभ हिलती है पर शब्दोंका भण्डार सर्वत्र पूरा पड़ा हुआ है। एक उन शब्दोंको उघाड़ते हैं। जैसे कभी किसी त्यागीके लिए आहार जब किसी कमरेमें लगाया जाता है तो कमरेकी बहुत सी चीजें जो कि पासमें ही अनेक प्रकारकी अटपट रखी हुई हैं उनको लोग किसी अच्छे कपड़ेसे ढक देते हैं ताकि उस जगह देखनेमें बुरा न लगे। पर कहीं उन चीजों पर कपड़ा डाल देनेसे वे चीजें गायब तो नहीं हो गईं, सो जो चीजें वहां पर रखी हुई थी उनका उस कपड़ेके हटनेसे आविर्भाव हो गया। इस प्रकार नैयायिक सिद्धान्तमें माना गया है कि शब्द तो दुनियामें सर्वत्र भरे पड़े हैं। बस बोल चाल करके उन शब्दोंको उघाड़ा जाता है। कोई भाई इस सम्बन्धमें यों विश्वास भी कर सकते हैं कि बात तो ठीक कह रहे हैं वे शब्द भरे पड़े हैं अभी तो देखो रेडियोसे शब्द सुन लें, टेपरिकार्डरसे शब्द सुन लें, ग्रामोफोनसे शब्द सुन लें। सभी जगह शब्द भरे हैं दबे हैं सो उनका विकास किया जाता है यह बात नहीं है। ग्रामोफोनके रिकार्ड आदिमें शब्द नहीं भरे हुए हैं, किन्तु कुछ ऐसे मसाले हैं व विधियां हैं कि जिनका संयोग करने पर उनसे शब्द उत्पन्न होने लगे और जितनी बार सुई रखें, जितनी बार उनका प्रयोग करें उतनी बार उससे उस ही प्रकारके शब्द निकले ऐसा आविष्कार किया है। शब्द भरे पड़े हों और उनसे अच्छे अच्छे शब्द निकलते हों ऐसी बात नहीं है। यही बात टेप रिकार्डमें भी है। उस टेप रिकार्डके टेपमें शब्द भरे हों और जब उसे चलाया तो उनसे शब्द निकल बैठे। उघड़ बैठे ऐसी बात नहीं है, किन्तु वह एक ऐसी कलापूर्ण आविष्कृति है कि वह ढंग बन गया है कि उनका संयोग करनेपर यहां उन शब्दोंको उत्पन्न करलें और जितनी बार संयोग बनायें उतनी बार शब्दोंको उत्पन्न कर लें।

मुखसे भी प्रतिनियत साधनों द्वारा प्रतिनियत शब्दोंकी उत्पत्ति—ये शब्द तो इस मुखमें से भी उसी विधिसे उत्पन्न होते हैं जिस विधिसे अचेतनका सम्बन्ध करके आप उत्पन्न कर सकते हैं। आप ओठोंको चिपकाकर बोलेंगे तो प फ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ब भ म बोलनेमें आयेंगे । वे तो हारमोनियम जैसे स्वर हैं । जो शब्द दबाये जायेंगे उसी तरहके शब्द निकलेंगे, जिस प्रकारकी धुन निकाली जायगी उस प्रकारकी धुन निकलेगी । ऊपरकी कठोर लकड़ी वाले कठोर स्वर उत्पन्न करते हैं और नीचेकी सफेद लकड़ी कोमल स्वर उत्पन्न करती हैं। तो जिस स्वरके बाद जो स्वर दबाने पर जिस प्रकारकी धुन निकाली जाती है उसके दबानेसे उसी प्रकारकी धुनि निकलती है। तभी बजाने वालेको संदेह नहीं रहता कि यदि हम इस सरगमके प्रयोगसे बजायेंगे तो अन्य तरहकी धुनि कहीं न निकल पड़े । यदि स रे ग म प ध नी स यों सीधा बजायेंगे तो उसी प्रकारके शब्द निकलेंगे । कभी स रे ग, रे ग म, कभी स रे स, रे ग आदि जिस तरहके शब्द निकालेंगे तो उसी तरहके शब्द निकलेंगे, जब जैसे बजावेंगे तब वैसे शब्द निकलेंगे । इस बातमें बजाने वालेको रंच भी संदेह नहीं रहता । क्योंकि जिस कारणपूर्वक जो कार्य होता है वह उस प्रकार होता है । तो शब्द जो मुखसे निकलते हैं सो भरे हुए हों मुहमें शब्द और उनको उभाड़ रहे हैं यह बात नहीं है । ताजे उत्पन्न होते हैं । रेडियोमें, टेपरिकार्डमें, सब जगह ताजे ही शब्द उत्पन्न होते हैं, वह कारण इस प्रकारका बनाया गया है । जीभको तालूसे लगाये बिना कोई च छ ज झ ञ आदि नहीं बोल सकता । मूर्धामें जीभकी ठोकर मारे बिना कोई ट ठ ड ढ ण आदि नहीं बोल सकता, दंतोंमें जीभकी नोक टिकाये बिना कोई त थ द ध न आदि नहीं बोल सकता । यही बात तो हारमोनियममें है । जो शब्द निकालना चाहो वही उससे निकलेगा । तो शब्द भरे हुए हों और वे उघाड़े जाते हैं यह बात नहीं है ।

अक्षणिक बुद्धि माननेपर भी बुद्धिमत्ताकी असिद्धि—प्रकरणमें चलो, देखो, ये शब्द विभु द्रव्यके विशेष गुण हैं और हम लोगोंके प्रत्यक्ष हुए, तब तो अनित्य होना चाहिये था, पर ये नित्य हो गए । तो इस प्रकार प्रभुकी बुद्धि नित्य हो और फिर प्रभुमें समा जाय और उससे वह बुद्धि वाला कहलाय और फिर अनुमान बनाये कि यह बुद्धिमानके द्वारा रचा गया है यह बात सिद्ध नहीं हो सकती । पहले बुद्धिका सम्बन्ध हो तो सिद्ध करलो । तो इस प्रकार जगत किसी बुद्धिमान ईश्वरके द्वारा बनाया नहीं गया, किन्तु अपने स्वरूपसे ही उपादाननिमित्तविधिसे उत्पन्न है यह बात सिद्ध होती है ।

बुद्धिमानमें मानी जाने वाली बुद्धिके स्वरूपकी सिद्धिकी अशक्यता—यह सारा जगत अनन्त पदार्थोंका समूह है इसमें प्रत्येक पदार्थ अपनी योग्यतानुसार योग्य निमित्तका सन्निधान पाकर परिणमन किया करते हैं इस तत्वसे अनभिज्ञ पुरुषोंको इनकी उत्पत्तिके कारणोंकी जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह सारा विश्व आखिर बनाया किसने है और जब इसके कर्तापनकी बात कोई युक्तिमें नहीं उतरती है यों प्रभु पर बात छोड़ दी जाती है । यह लोक तो किसी एक ईश्वरने बनाया है, किसी बुद्धिमान पुरुषके द्वारा यह जगत बनाया गया है तो पहिले उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बुद्धिमानका स्वरूप ही सिद्ध करियेगा। बुद्धिमान कहते हैं बुद्धि वालेको। क्या वह बुद्धि बुद्धिमानसे जुदी है अथवा अभिन्न है। उसका बुद्धिमानमें सम्बन्ध कैसे हुआ आदिक परिणम ों ा विचार किया गया था, और यह सिद्ध नहीं किया जा सका कि बुद्धिका बुद्धिमानसे सम्बन्ध होना वाजिब है। उसके प्रसंगमें यह भी पूछा गया था कि उस बुद्धिमान ईश्वरकी बुद्धि क्षणिक है अथवा नित्य है। क्षणिक माननेमें तो उत्पत्तिका विरोध है, नित्य माननेमें अनेकांतिक दोष दिया गया था।

विश्वकर्ताकी बुद्धिको नित्य माननेमें अनुमानबाधा—अब यह बतला रहे हैं कि बुद्धिमानकी बुद्धिको नित्य माननेमें इस अनुमानसे विरोध आता है। महेश्वरकी बुद्धि क्षणिक होती है बुद्धि होनेसे। जैसे हम लोगोंकी बुद्धि, चूंकि बुद्धि है इस कारण वह क्षणिक है। ज्ञान होता है, बुद्धि जगती है, नष्ट होती है, फिर दूसरी बुद्धि आती है, वह भी नष्ट होती है इस प्रकार जैसे हम लोगोंमें बुद्धि नष्ट होती है, उत्पन्न होती है इसी प्रकार महेश्वरकी बुद्धि भी तो बुद्धि अतएव वह भी क्षणिक है। बुद्धिको नित्य नहीं सिद्ध किया जा सकता। अब शंकाकार कहता है कि यद्यपि बुद्धिपनेकी बात समान है। बुद्धि हम लोगोंमें भी है बुद्धि महेश्वरमें भी है लेकिन बुद्धिपनेकी समानता होने पर भी महेश्वरकी और हम लोगों की बुद्धिमें तो भेद है। हम लोगोंकी बुद्धि क्षणिक है किन्तु महेश्वरकी बुद्धि हमसे विलक्षण है, वह नित्य है, इस प्रकार बुद्धिमें अन्तर डालने पर समाधान किया जाता है कि इस तरहकी बुद्धिपनेकी समानता होने पर भी यह भेद डालते हो कि हमारी बुद्धि हमारी ही चीज है। इस कारण वह क्षणिक है किन्तु महेश्वरकी बुद्धि हम लोगोंसे विलक्षण है इस कारण वह नित्य है तो इस ही प्रकार यहां भी भेद परख लीजिये, घट पट मकान आदिक कार्य और पृथ्वी पर्वत आदिक कार्य यद्यपि ये दोनों कार्य कहलाते हैं। कार्यपनेकी दोनोंमें समानता है तिस पर भी घट पट आदिक कार्य तो कर्तापूर्वक हुआ करते हैं और पृथ्वी पर्वत आदिक कार्य बिना कर्ताके हुआ करते हैं। यह भेद यहां भी क्यों नहीं मान लिया जाता। जैसे कि बुद्धिपनेकी समानता होने पर हमारी और प्रभुकी बुद्धिमें अन्तर डाला जा रहा है इसी तरह तो ये घट पट आदिक कार्य भी कार्य हैं और पृथ्वी पर्वत आदिक भी अवस्थायें हैं कार्य हैं, तिस पर भी उनमें यह भेद है कि ये घट पट आदिक कार्य तो कुम्हार आदिक कर्तापूर्वक हुए, किन्तु पृथ्वी पर्वत आदिकमें किसी पुरुषका हाथ नहीं है, वह किसी कर्ताके द्वारा नहीं होता। इस तरह फिर कार्यत्व हेतुमें अनेकांतिक दोष होगा अर्थात् घट पट आदिक कार्य हैं और वे कर्तापूर्वक नहीं रहे, इस प्रकार बुद्धि को नित्य मानकर भी कर्तृत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस तरह जब बुद्धिवालापना ही असिद्ध है तो यह सारा जगत बुद्धिमन्निमित्तक है, इसकी तो सिद्धि ही क्या होगी।

पृथ्वी आदिकमें कृतबुद्धयुत्पादक कार्यत्वका अभाव—विश्वकी बुद्धि-

http://sahjanandvarnishastra.org/

मन्निमित्तिकताको किसी तरह थोड़ी देरको मान भी लें, यद्यपि मानने योग्य तो नहीं है, जब तक उस पर विचार नहीं करते तभी तक यह बात सुन्दर सी जचती है कि यह सारा जगत किसी एक बुद्धिमान महेश्वरके द्वारा बनाया गया है, लेकिन मान भी लें तो भी जिस प्रकारका कार्यपना इन नये कुवा मकान आदिकमें पाया जाता है. किसी पुरुषके द्वारा बनाये गए हैं ये इस प्रकारकी कार्यरूपतामें व्याप्त हैं पदार्थ इस ही कारण से ये पुराने भी हो जायें कूप मकान आदिक, १०० वर्षके भी हो जायें और उनके करने वालेका बनाने वालेका नाम भी न पता हो तो भी हर एक कोई टूटे फूटे मकान को कुवेंको देखकर अपनी बुद्धि बना ही लेते है कि इनको किसीने बनाया था। चाहे उनका नाम विदित नहीं है लेकिन वे इस प्रकारके कार्य हैं कुवा मकान आदिक कि इनके कर्ताके नामका भी पता न हो तो भी देखकर किसीको यह संशय नहीं होता कि ये अपने आप बने हैं या किसीने इन्हें बनाया था। सबके चित्रमें यह बात शीघ्र समझ में आती है कि ये किसीने बनाये, तभी तो कहते हैं- देखो ये कितने बड़े मकान, कितने पुराने मकान, टूटे फूटे पड़े हैं. जिसने बनवाया उनका नाम भी नहीं रहा तो भी जैसे ये कुवा मकान आदिक कार्य हैं, एक कर्तृबुद्धिके उत्पन्न करने वाले हैं इस प्रकारके कार्य, वैसे ये पृथ्वी पर्वत आदिक नहीं हैं। पर्वतको देखकर किसीके मनमें यह बात नहीं आती कि देखो इस पर्वतका बनाने वाला भी न रहा, कैसा पड़े हुए हैं पर्वत। उन पदार्थोंके बनाने वाला है कोई, ऐसी बुद्धि नहीं उत्पन्न होती इनको निरख करके और यदि मानलो कि इस ही प्रकारके ये कार्य माने इन पर्वत आदिकको तो जैसे जीर्ण कुवां मकानको देखकर यद्यपि इनके बनाने वालेका भी कुछ नाम पता नहीं है न बनाते देखा है फिर भी ये किए गए हैं किसीके द्वारा, यह दृढ़ निश्चय रहता है। तो इस प्रकार उन पृथ्वी पर्वत आदिकमें भी 'किए गए हैं किसी पुरुषके द्वारा' यों निर्णय आना चाहिए। केवल कार्यत्व है, कार्य है यह, इस कारण किसीने बनाया है इतने ऐसे शब्द मात्रसे वो अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमें जुदा किस्मके पदार्थोंमें अपना इष्ट अभिमत सिद्ध नहीं कर सकते। अन्यथा हर चीजमें आशंका उत्पन्न होने लगेगी। जैसे कोई बामी होती है मिट्टीकी, अपने आप एक लम्बीसी बनी हुई होती है, उस बामीमें भी यह हेतु दे देंगे कि इसे भी कुम्हारने बनाया है, क्योंकि मिट्टीका विकार है। जैसे घड़ा मिट्टी का विकार है, अवस्था है, परिणमन है तो कुम्हार आदिकने बनाया इसी प्रकार यह जो बामी उठी है यह भी मिट्टीका विकार है अतएव कुम्हारने बनाया यों जो चाहे सिद्ध कर ले।

विशिष्ट कार्यत्वके विकल्पमें कार्यसम जातिदोषकी आशंका—अब यहां शंकाकार कहता है कि हेतु या साध्यमें विशेषण लगाकर विकल्प उठानेसे तो कुछ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह तो कार्यसम नामका जातिदोष है। अच्छा लो, तुम कुछ सिद्ध करके दिखाओ। शब्द अनित्य हैं इसकी ही सिद्धि कर दो, अनुमान बताया जाता है कि शब्द अनित्य हैं क्योंकि ये किये गए हैं। जो जो किए गए पदार्थ होते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वे अनित्य होते हैं। तो हम पूछेंगे कि यह जो शब्दका अनित्यपना साध्य बता रहे हो और उसमें हेतु दे रहे हो कि ये किसीके द्वारा किए गए हैं—जैसे घट। तो क्या यह कृतकत्व (किया गया पना) घटगत है या शब्दगत है या उभयगत है अर्थात् शब्दोंको अनित्य सिद्ध करनेके लिए ये कृतक हैं, यह जो हेतु दिया गया है तो यह कृतकपना क्या घटमें रहने वाला कृतकपन हेतु है या शब्दमें रहने वाले कृतकपन हेतु है या दोनों में रहने वाले कृतकपन हेतु है। कृतकपना कहते हैं किया गया है, इस कारणसे यदि कहो कि कृतकत्व घटगत है तो बिल्कुल विरुद्ध बात है। घटमें रहने वाले कृतकपनके हेतुको देकर अन्यत्र याने शब्दमें अनित्यपना सिद्ध करते हो तो यह तो बड़ी बेहूदी बात है, फिर तो जहां चाहे अग्नि सिद्ध कर दी जाएगी। रसोईघरमें उठने वाले धुवांको हेतु बनाकर लो मंदिरमें भी आग है, दुकानमें भी आग है, जहां चाहे सिद्ध कर बैठो। दूसरी जगह रहने वाले धर्मको दूसरी जगहके धर्ममें सिद्ध नहीं किया जा सकता। यदि कहो कि शब्दगत कृतकपनको हेतु कहते हैं तो इसके लिए फिर तुम दृष्टान्त कुछ नहीं दे सकते, तुम दोगे दृष्टान्त जैसे कि घड़ा, तो घड़ेमें शब्दगत कृतकपना कहां है तो कोई दृष्टान्त न मिलेगा जिसमें कि साधन मिल जाय। यदि कहोगे कि यह किया गया पना दोनोंमें रहता है शब्दमें भी और घड़ेमें भी, तो जो दोनोंमें दोष दिया गया वह दोष इसमें आया। सो कार्यत्वके विकल्प करना युक्त नहीं है।

कार्यत्व हेतुके विकल्पोंमें कार्यसम जातिदोषका अभाव—अब कार्यत्व हेतुके विकल्पोंको कार्यसम बतानेका समाधान दिया जाता है कि हम जो शब्दमें कृतकपना हेतु दे रहे हैं कि किया गया है तो हम कृतकत्व सामान्य हेतु दे रहे हैं। शब्दमें रहने वाला कृतकपना है या घटमें रहने वाला कृतकपना है ऐसा नहीं कह रहे, किन्तु सामान्य हेतु दे रहे हैं। सामान्य हेतुका पक्षमें अभाव नहीं है। परन्तु इस तरहका कार्य सामान्य हेतु देकर विशेष कारण बताना, किसीके द्वारा बनाया गया है, विशेष बुद्धिमानके द्वारा यह तो नहीं कहा जा सकता। घट आदिक कार्य हैं और वे पुरुषके द्वारा बनाये गए हैं परन्तु पृथ्वी पर्वत आदिक कार्य अर्थात् परिणमन हैं इस कारण कार्य कहलाते हैं, वे तो किसीके द्वारा नहीं बनाये गए, यदि बनाये गए हैं तो फिर इनका बनाने वाला है कोई ऐसी बुद्धि सबको होनी चाहिए। किसी भी मतका कोई पुरुष हो टूटे-फूटे मकान कूप आदिकको देखकर सबमें यह बुद्धि आती है कि ये किसीके द्वारा बनाये गए थे। ये बहुत पुराने हो गए और अब ये मिट रहे हैं, पृथ्वी पर्वत आदिकके बारे में सबको यह कहां बुद्धि उत्पन्न होती है कि ये किसीके द्वारा बनाए गए हैं और हो अगर तो विवाद क्यों?

एकत्र दृष्ट विशेष कार्यसे सर्वत्र कार्यत्व हेतुसे कर्तृनिमित्तकता माननेकी असिद्धि—शंकाकार कहता है कि हम जब इन घट आदिक विशिष्ट कार्योंमें ये देख रहे हैं कि ये किसीके द्वारा बनाए गए हैं। यह जानकर याने जो विशिष्ट कार्य हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन घट आदिकको निरखकर ये कुम्हारके द्वारा देखो बनाये गए हैं तो यह विशिष्ट कार्य किसीके द्वारा बनाया गया है ऐसा जानकर हम पर्वत आदिकमें भी यह निर्णय बना लेते हैं कि ये भी कार्य हैं, पिण्ड हैं, आकारवान हैं, इस कारण ये भी किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाए गए हैं। समाधान --इस तरह यदि एक जगहकी विशेषता देखकर अन्य जगहमें भी जो कि अदृष्ट है वहां भी उस विशेषताको लपेटोगे तो फिर बतावो पृथ्वीमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं ना, तो फिर पृथ्वी आदिकमें, रूप, रस गंध, स्पर्श मयता निरखकर चूंकि पृथ्वी भूत है और वायु भी भूत है, भूत शब्दका अर्थ यहां राक्षस नहीं है, भूत मायने पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार चीजें। सो वायुमें भी रूप, रस, गंध, स्पर्श मयता मान लेना चाहिए। शंकाकार नहीं मानता है कि हवामें भी रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चारों हैं, यह केवल वायुमें स्पर्श मानता है, लेकिन जैसे घट आदिकमें किसीके द्वारा ये बनाए गए ऐसा जानकर पृथ्वीमें भी किसीके द्वारा ये बनाए गए ऐसा सिद्ध कर रहे हो तो पृथ्वीमें रूप, रस, गंध, स्पर्शमयताको जानकर भूत है अतएव वायुमें भी चारोंका सम्बन्ध माना जाना चाहिए। यदि कहोगे कि इसमें तो प्रत्यक्ष बाधा है, बतलावो कहां है हवामें रूप। बतलावो कहां है हवामें रूप। बतलावो यह हवा खट्टी है कि मीठी, यह हवा काली है कि नीली, रस तो नहीं जानने में आता, रूप तो नहीं देखनेमें आता है, तो यहां प्रत्यक्ष बाधा है, तो समाधानमें कहते हैं कि यहां भी तो बिल्कुल प्रत्यक्ष बाधा है। कुम्हार आदिक द्वारा घट पट आदिक बनते देखे जाते हैं, परन्तु इन पृथ्वी पर्वत आदिकका बनाने वाला कोई नहीं देखा जाता। तो स्पष्ट मान लेना चाहिए कि दुनियामें जितने भी पदार्थ सत् हैं वे अपने आप सत् हैं, जितने सत् हैं उनमेंसे कोई कम होता नहीं। जो असत् हैं वह कभी भी उत्पन्न किया जा सकता नहीं।

पृथ्व्यादिककी कार्यता व सावयवतासे घटादिककी कार्यता व सावयवताका पार्थक्य –ये समस्त पदार्थ सत् है इस ही नातेसे समस्त पदार्थोंमें यह विशेषता है कि ये सारे पदार्थ निरन्तर अपने नवीन परिणमनसे उत्पन्न होते हैं और पुराने परिणमनका विलय करते रहते हैं। जब कार्यपना और सावयवपना यद्यपि घट पट कूप प्रासाद आदिकमें भी देखा जा रहा है और पर्वत पृथ्वी आदिकमें भी देखा जा रहा है तो ये घटपट आदिक भी आकारवान हैं और अपनी पूर्व अवस्थाको त्यागकर नवीन अवस्थामें आए हुए हैं इसी प्रकार ये पृथ्वी पर्वत आदिक भी पिण्ड रूप हैं, आकाररूप हैं और अपनी पूर्व अवस्थाको त्यागकर नवीन अवस्थामें आते रहते हैं, इस नातेसे यद्यपि घट पट आदिकका कार्य है और सावयव है और पृथ्वी पर्वत आदिक का कार्य है और सावयव है, लेकिन पृथ्वी पर्वत आदिकमें पाया जाने वाले कार्यपनेसे भिन्न निराला विलक्षण कार्यपना घट पट आदिकमें है, इस ही प्रकार पृथ्वी पर्वत आदिकमें पाए जाने वाले सावयवपनेसे विलक्षण भिन्न सावयवता इन घट पट आदिक में है। तभी तो इन घट पट कूप मकान आदिकमें, न भी इनके बनाने वाला दीखे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिस पर भी सब लोगोंको इसमें कृतबुद्धिकी बात आती है अर्थात् सबके चित्तमें यह निर्णय रहता है कि ये पदार्थ किसी पुरुषके द्वारा बनाए गए हैं, लेकिन न पर्वत आदिक में कृत बुद्धि उत्पन्न होती है और न यह कृतक पदार्थों की भांति कार्य है और सावयव हैं तब दृष्टान्तमें देखिए–क्या हेतुका पक्षमें अभाव होनेसे यह अनुमान असिद्ध है, यह जगत किसीके द्वारा बनाया गया है यह भी युक्ति संगत नहीं बैठती।

व्युत्पन्न या अव्युत्पन्नोंके प्रति कार्यत्वके विकल्पोंका शंकाकार द्वारा प्रश्न —अब शंकाकार कहता है कि जो यह बात कही गई है कि पृथ्वी पर्वत आदिक में कृत बुद्धि नहीं जगती अर्थात् ये किसीके द्वारा बनाए गए हैं ऐसे विकल्प इसमें लगे नहीं होते हैं तो यह तो बतलावो कि ऐसा कथन भी व्युत्पन्नजनोंके लिए है या अव्युत्पन्नजनोंके लिए ? व्युत्पन्न कहते हैं समझदारको, जो नियमोंको जानते हैं तर्क वितर्क समझते हैं. और अव्युत्पन्नजन कहते हैं मूर्ख अविवेकीजनोंको। यदि कहो कि हम तो अव्युत्पन्न लोगोंको कह रहे हैं तो यों तो धूम आदिक हेतुवोंमें भी अव्युत्पन्नका दोष होनेसे सारे अनुमान नष्ट हो जायेंगे। हम पूछने लगेंगे कि जैसे यह अनुमान बनाया कि इस पर्वतमें अग्नि होनी चाहिए। धुवा होनेसे तो वहां पूछा जायगा कि क्या रसोईघरमें रहने वाले धुवाका हेतु दे रहे हो या पर्वतमें रहने वाले धुवाका हेतु दे रहे हो ? अरे पर्वतमें रहने वाले धुवाको हेतु दोगे तो दृष्टान्त न मिलेगा और रसोईघरके धुवाका हेतु देकर यदि पर्वतकी अग्नि सिद्ध करोगे तो फिर सारी दुनियामें जहां चाहे अग्नि सिद्ध कर लें। कोई भी अनुमान खण्डित किया जा सकता इस तरहके विकल्प उठाकर और यदि यह मंतव्य है कि हम तो बुद्धिमान पुरुषोंको कह रहे हैं जिनने कि अविनाभाव सम्बन्ध जाना है तो सही बात है। जो बुद्धिमान जन हैं, जिन्हें तर्क वितर्क आता है वे कार्यत्व हेतु दे करके जब उन्होंने घट पट आदिकमें यह किसी कारणपूर्वक बना है, यह अविनाभाव समझ लिया है, चूंकि घट पट आदिक कार्य हैं तो किसीके द्वारा अवश्य बनाये गए हैं। तो ऐसा अविनाभाव जानकर उन व्युत्पन्न लोगोंने, तर्कशील पुरुषोंने यह जाना कि ये पर्वत पृथ्वी आदिक भी किसी बुद्धिमान पुरुषके द्वारा रचे गए हैं। दृष्टान्तमें दिए गए कार्यपनेको ही पक्षमें बैठाए तो कोई अनुमान नहीं बनाया जा सकता। तो हमारा यह मंतव्य सही है कि यह जगत किसीके द्वारा बनाया गया है क्योंकि कार्य होने से। जो जो कार्य होते हैं वे किसीके द्वारा बनाए गए होते हैं, और चूंकि कार्य ये सब पृथ्वी आदिक हैं अतएव ये भी किसीके द्वारा बनाए गए हैं।

व्युत्पन्न प्रतिपत्ताकी व्युत्पत्तिके लक्षणके विकल्प करते हुए शंकाका समाधान—अब उस शंकाका समाधान किया जा रहा है। अभी अभी कार्यत्वका विश्लेषण करके जगतको कोई रचता है इस बातका निराकरण किया गया था उस पर जो शंकाकारने यह आपत्ति दी थी कि तुम यह विश्लेषण व्युत्पन्न लोगोंके प्रति

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर रहे हो या अव्युत्पन्न लोगोंके प्रति ? व्युत्पन्न ज्ञानी पुरुषों के लिए तो कार्यत्व आदिक हेतु असिद्ध नहीं है यों शंकाकारका कहना ठीक नहीं है, शंकाकारका प्रयोजन तो यह था कि यह समस्त जगत किसी बुद्धिमान पुरुषके द्वारा बनाया गया है कार्य होनेसे, तो अब उन्हें कार्यका और रचनाका अविनाभाव बताना चाहिए ना कि जो जो कार्य होते हैं वे किसीके द्वारा अवश्य बनाए गए होते हैं। पर कार्य घट पट आदिक हैं, वे तो किसी द्वारा बनायी गई बुद्धिमें आते हैं, पर पृथ्वी पर्वत आदिक भी परिणमते हैं अतएव, वे कार्य हैं, किन्तु यह बुद्धिमें नहीं आता है कि इनको भी किसीने बनाया है तो इस अविनाभावको जानने वाले पुरुषोंका तो नाम है व्युत्पन्न और जो अविनाभाव नहीं जानते उन्हें कहते हैं अव्युत्पन्न। तो पूछ रहे हैं कि क्या व्युत्पत्तिनाम इसका ही है ना, कि साध्य और साधनमें अविनाभावका परिज्ञान कर लेना अथवा इस अविनाभावके परिज्ञानसे भिन्न किसीका नाम व्युत्पत्ति है।

पृथ्वी आदिमें कर्ता कार्यकी अविनाभावरूप व्युत्पत्तिकी असिद्धि—यदि कहो कि इसीका नाम व्युत्पत्ति है कि साध्य और साधनके अविनाभावका ज्ञान हो जाना जैसे कि जहाँ जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है जहां अग्नि नहीं होती वहां धुवां नहीं होता है, यों साध्यके बिना साधनके न होनेका अविनाभाव कहते हैं इसीके ज्ञानका नाम व्युत्पत्ति हो तो पृथ्वी आदिकके कार्यपनेकी और किसीके द्वारा बनाए गए इस साध्यमें कोई अविनाभाव नहीं है और यदि अविनाभाव मान लिया जाय कि ये पर्वत आदिक किसीके द्वारा रचे गए हैं, कार्य होनेसे, इस प्रकार कार्यपने का और कृतपनेका अविनाभाव मान लिया जाय तो यह अविनाभाव केवल घट पट आदिकमें ही ठीक बैठ सकेगा। जो शरीर सहित है। हम आपके इन्द्रिय आदिकके द्वारा ग्रहणमें आता है, अनित्य बुद्धि ज्ञान बना करके रहते हैं जो सत् है ऐसे पुरुषके द्वारा रचे गए घट आदिकमें हीं यह बात विदित होती है कि यह कार्य तो किसीके द्वारा बनाया गया है, इस हेतुकी व्यापकता केवल घट आदिक पदार्थोंमें तो आ गयी पर पृथ्वी आदिकमें इसकी व्यापकता नहीं आ सकती। जो हेतुके साथ व्यापक है उसे छोड़कर यदि अन्य चीजको भी धर्मीमें सिद्ध करने लगें तो यह तो अव्यवस्था बन जायगी। हेतुके साथ जो चीज लगी है उसे छोड़कर अन्यको सिद्ध करदें, यदि ऐसा होने लगे तो यही हो गयी टेढ़ी खीर। खीर सफेद होती है यह बात किसी अन्धेको बताना है और बताए इस तरह कि देखिए खीर सफेद होती है। कैसी सफेद ? जैसे बगला। कैसा बगला तो हाथ बगला की तरह टेढ़ा करके बता दिया कि ऐसा बगला, तो वह अंधा उस हाथको टटोल कर कहता है कि हमें नहीं खाना है ऐसी खीर। यह तो पेटमें भी गड़ेगी। तो यहां आकार हेतुके साथ रूप व्यापक नहीं है, उस बगलेके आकारके साथ आकार व्यापक है, रूप व्यापक नहीं है तो आकारको देखकर रूपको सिद्ध करना जैसे एक अविवेक है इसी प्रकार कार्यत्व हेतुको बताकर पर्वत आदिकमें ये किसीके द्वारा किए गए हैं यह सिद्ध करना उस ही तरहका अविवेक है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पृथ्वी आदि कार्यमें कारण कारणमात्रको माननेमें विवादका अभाव – यदि यह कहो कि हम कार्यत्व हेतु दिखाकर केवल कारणमात्र सिद्ध कर रहे हैं कि ये पृथ्वी आदिक किसी न किसी कारणसे उत्पन्न हुए हैं क्योंकि ये कार्य हैं अवयव सहित हैं इनमें आकार पाया जाता, तो यह बात मानी जा सकती है, कारण तो अवश्य है, कारण बिना विषय भिन्न कार्योंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। लेकिन कारण क्या है इसे भी तो समझिए। पृथ्वी पर्वत आदिकमें जो उपादानपना पड़ा है वह तो है उपादान कारण और बाहरी संयोग, हवाका मिलना, जीवका रहना आदिक और अनेक वर्गणावोंका जुड़ना ये सब अन्य कारण हैं, इस कारणसे पृथ्वी आदिककी रचना है इसमें कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु जैसे घड़ेको कोई कुम्हार बनाता है इस ही प्रकार इस पृथ्वी पर्वत आदिकको कोई एक अलगसे महेश्वर अथवा किसी भी नामका कोई पुरुष बनाता हैं यह बात नहीं फब सकती।

दुःखमूल मोहके मिटनेका उपाय तत्त्वपरिज्ञान – जगतके जीवोंको भावमात्र दुःख है, वह सब मोहका दुःख है। और मोह मिट सकता है तो मोहको हटानेसे ही मिट सकेगा। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थसे परस्परमें कोई सम्बन्ध नहीं है, इतनी बात चित्तमें बैठे, ज्ञानमें आए तब ही तो मोह हट सकेगा। जैसे लोग मोहमें मानते हैं कि यह घर मेरा है, पर जब मोह छूट जाता है तब समझमें आता है, ओह! यह तो मेरा घर नहीं है, मोह हटने पर ही यह समझमें आयगा कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ नहीं है। यह समझमें आयगा वस्तुस्वरूपके परिज्ञानसे। प्रत्येक अणु-अणु प्रत्येक जीव ने अपने असाधरण स्वरूपको लिए हुए हैं। कोई पदार्थ किसी किसी अन्य पदार्थके स्वरूपको ग्रहण करके नहीं रहता। वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है– जो सत् होता है उसकी विशेषता ही इसी तरहकी होती है, यह बात ध्यानमें आए तो मोह हटे। मेरा कहां पुत्र, मेरी कहां माँ, मेरा कौन भाई ? ये जगतके जीव हैं, संसारमें रुलते रलते मनुष्य भवमें आए हैं और क्षणिक संयोग हुआ है। हुआ है संयोग फिर भी कर्म सबके न्यारे हैं और सभी जीव अपने-अपने कर्मोदयसे पलते हैं, दुःख होता है, सुख होता है, इनका जीवन मरण सब कुछ इनके कर्मानुसार चलता है। मेरा इनमें किसीसे क्या सम्बन्ध है, यह बात ज्ञानमें आने पर मोह मिटेगा, उस मोहके मिटनेका उपाय वस्तुके स्वरूपका परिज्ञान है।

भिन्न वस्तुकी भिन्नमें मग्नताकी अशक्यकता - देखिए–कल्याण करने के लिए करना क्या है ? एक ज्ञान प्रकाशमें मग्न होना है। इस पुरुषार्थको छोड़कर अन्य कुछ पुरुषार्थ नहीं किया जाना है। केवल एक ज्ञानप्रकाशमें मग्न होना है। अब उसकी विधि सोचिए कि यह मैं ज्ञानस्वरूप ज्ञानमात्र उपयोग किस ज्ञानप्रकाशमें मग्न हो सकेगा ? मग्न जिसमें होना है वह तो हो दूसरेकी चीज और जो मग्न होना चाहता है वह हो कोई भिन्न चीज, तो ऐसी भिन्न चीज भिन्न चीजमें मग्न नहीं हो सकती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पानीमें राख डाल दें तो दिखेगा भले ही कि राख उस पानीमें मग्न हो गई मगर पानी के कण-कणमें पानी ही है और राखके कण कण में राख ही है। वह राख पानीमें मग्न नहीं हो सकती, क्योंकि ये दोनों भिन्न भिन्न हैं। प्रश्न–किसी कमरेमें एक लालटेन जल रही है, उसका प्रकाश सर्वत्र फैला है, उसी जगह एक दूसरी लालटेन जलाकर धर दी जाय तब तो प्रकाशमें प्रकाश मिल गया। उत्तर दिखनेमें ऐसा लगता है कि दोनोंका प्रकाश एकमेक हो गया पर यह बात नहीं होती। जब एक लालटेन वहांसे उठाकर बाहर रख दी जाती है तो उसका सारा प्रकाश भी उसके साथ चला जाता है। तो पर चीजमें पर चीज प्रवेश करके मग्न हो जाय, एक रस हो जाय यह बात सम्भव नहीं होती। यदि मैं यह ज्ञान अपनेसे भिन्न किसी दूसरे ज्ञानप्रकाशमें मग्न होनेका यत्न करूं तो मग्नता नहीं बन सकती। है ईश्वर ज्ञानप्रकाश मय। जो लोग ईश्वरको अनन्त ज्ञानमय, अनन्त आनन्दमय कृतकृत्य मानते हैं उनका ईश्वर ज्ञानप्रकाशमय है लेकिन जो भक्त अपने ज्ञानप्रकाशका आलम्बन तजकर अथवा उस ज्ञानप्रकाश प्रभुकी उपासनाके फलमें जो निज ज्ञानप्रकाशका आलम्बन होता है उसे तजकर मात्र पर, भिन्न निराले कर्मयुक्त प्रभुके ज्ञान प्रकाशमें ही रमण करनेका यत्न करे, इससे आगे निर्विकल्प होकर निज ज्ञानप्रकाशका आलम्बन न करे तो मग्नता के दर्शन उस भक्तको भी नहीं हो सकते हैं। फिर तो जो लोग ऐसा मानते हैं कि वह हमें बनाता है, दुनियाको रचता है आदि, पर ज्ञानप्रकाशके रूपमें ईश्वरको नहीं निरखा गया जो ईश्वरको कर्ता मानते हैं और कदाचित् मान लो उस कर्तृत्वके साथ ज्ञान प्रकाशमय है ऐसा भी मान लिया जाय तो इन भावोंके कारण मैं तो किंकर हूं, मुझमें तो कुछ कला ही नहीं है। मैं तो उसकी दया पर निर्भर हूं ऐसी भीतरमें वासना हो जानेके कारण ज्ञान प्रकाशमें मग्नता कैसे बन सकती है।

कर्तृत्ववादमें ज्ञानप्रकाशमग्नताका अनवसर इस जीवका क्लेश दूर तब तक नहीं हो सकता जब तक कि यह निज ज्ञान प्रकाशमें मग्न न हो सके। इस प्रकरणका कल्याणसे अधिक सम्बन्ध है इसलिए वस्तुके स्वरूपका विवरण किया जा रहा है। ये सब पदार्थ अपने स्वरूपसे हैं और अपने परिणमनकी योग्यता रखते हैं और प्रतिसमय अपनी योग्यतानुसार बाहर किसी पर द्रव्य निमित्तका सन्निधान पाकर परिणमते रहते हैं ये पदार्थ किसीके द्वारा बनाये गए हों सो बात नहीं है। इन घट पट आदिक पदार्थोंको भी कुम्हार बनाता है तो क्या बनाता है? क्या मिट्टी बना देता है? क्या असत्को सत् कर देता है? वह भी एक निमित्त मात्र रहा, जिसकी उस प्रकारकी क्रियाका सन्निधान पाकर मिट्टी स्वयं अपने आपमें निखरी और घटाकारको तजकर घट रूपमें बन गया। कदाचित् कुम्हारकी जगह मशीन होती, उसमें मिट्टी पड़ी होती तो वहां भी वैसा ही घड़ा बन जाता। और, ऐसा किया भी जा रहा है। गन्नेकी शक्कर बनायी जा रही है। सारे काम उस मशीनरीके प्रयोगमें होते हैं। गन्ना वहां स्वयं अपने आपके पूर्व रूपको तजकर नया रूप अंगीकार करके शक्करका रूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर लेता है। तो यह तो निमित्त नैमित्तिकपनेकी बात है कर्तृत्वपनेकी क्या बात है ? तो यदि पृथ्वी पर्वत आदिकमें कारणमात्रपनेका परिज्ञान कर रहे तो हमें विवाद नहीं है, किन्तु किसी एक पुरुष विशेषके द्वारा यह सारा जगत बन गया। यह परिज्ञान प्राणियोंको मोहका उत्पादक होनेसे ज्ञानप्रकाशमें मग्न नहीं हो सकता अयथार्थ ज्ञान है अतएव ज्ञानप्रकाशमें यह प्राणी आ नहीं सकता।

कारणमात्रके परिज्ञानसे भी महेश्वरके कर्तृत्वकी सिद्धिकी आशंका — अब शंकाकार कहता है तुमने यह मान लिया ना कि कारणमात्र तो है, अब थोड़ा और आगे बढ़े। वह एक बुद्धिमानकारणमात्रक है अर्थात् कोई सामान्य बुद्धिमानके द्वारा रचा गया है और फिर चूंकि कारणमात्रपना अथवा कोई सामान्य ऐसा नहीं होता कि किसी विशेष व्यक्तिका आश्रय न रखता हो तो कारणमात्रपना भी तो किसी विशिष्ट व्यक्तिके आधारमें रहेगा, तो बस वही बात आ गई कि कोई व्यक्ति इस विश्व का कर्ता है क्योंकि विशेषरहित कोई सामान्य होता ही नहीं है और इन पर्वत आदिक का करने वाला कोई कुम्हार, जुलाहा आदिक होता होगा, यह बात सम्भव नहीं है क्योंकि इन पदार्थोंके रचनेमें हम जैसे छद्मस्थ जीवोंमें सामर्थ्य नहीं है, इससे सिद्ध है कि ये पृथ्वी आदिक किसी कारणसे बने हैं, इनका बनाने वाला कोई बुद्धिमान कारण है और कुम्हार आदिक जैसे हम लोगोंकी सामर्थ्य नहीं है कि उसे बना सकें, तो है उनका कोई बनाने वाला महाप्रभु।

शंकाकारकी पद्धतिसे ही प्रभुके अकर्तृत्वकी सिद्धि - अब शंकाका समाधान देते हैं कि इस तरहसे तो बात यह सिद्ध होती है कि पृथ्वी आदिकका रचनेवाला कोई नहीं है। वह कैसे कि इन पर्वत आदिकके रचनेकी सामर्थ्य तो हम जैसे लोगोमें है नहीं, और किसी अन्यमें कार्यत्वपनासे व्यापक प्रकृत साध्य आ जाय सो होता नहीं, अर्थात् ऐसे कार्योंका रचने वाला शरीररहित तो हो नहीं सकता। और, शरीरसहित हम आप लोगोंकी सामर्थ्य है नहीं कि पर्वत आदिकको रच लें। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि ये सब पदार्थ हैं और अपने ही द्रव्यत्व गुणके कारण प्रतिसमय परिणमते रहते हैं। अब इसमें किसीकी सृष्टि माननेकी कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता। ऐसा तो न हो बैठेगा कि कभी ऐसा मान ले कि गौ सामान्यका आधारभूत यहां कोई खंडी मुंडी, चितकबरी, पीली, नीली आदिक गाय तो है नहीं, तो वह गोत्वसामान्य उससे विलक्षण किसी भैंस आदिकमें लग बैठे यह तो सम्भव नहीं है इसी प्रकार यह भी सम्भव नहीं है कि वह सामान्यकारण चूंकि वस्तुके बिना होता नहीं और शरीरसहित में सम्भव नहीं हो सका तो किसी भी अदृष्ट प्रभुमें लग बैठे। अरे प्रभुका स्वरूप तो एक आदर्श है, अलौकिक जनों के द्वारा ध्येय है, बड़े बड़े ऋषि संत प्रभुकी जो उपासना करते हैं वे इस दीनतासे नहीं किया करते कि मैं प्रभुकी उपासना न करूंगा तो प्रभु मुझे नरकमें ढकेल देगा, इस डरसे उपासना नहीं करते, किन्तु ज्ञानप्रकाशमय है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह प्रभु, अनन्त आनन्दमय है वह प्रभु सो उसके ज्ञान और आनन्दगुण की महत्ताको जानकर उस पर मुग्ध होकर उसकी उपासना करते हैं योगी।

प्रभुकी कृतार्थता व आदशरूपता न भैया ! प्रभु तो कृतार्थ है, जो कुछ करने योग्य कार्य था सो कर लिया प्रभुने। जगतमें अब कुछभी कार्य करनेको उन्हें नहीं रहा। आनन्दमय वह हो हो सकता है जिसको कि जगतमें कुछ भी करनेके लिए काम न पड़ा हो। जब कि हम आप लोग जिस समय इस प्रकाशमें आते हैं कि जगत में मेरे करने के लिए कुछ भी नहीं पड़ा हुआ है तो कितना आनन्दमें रहा करते हैं। और, जब ही यह विकल्प हो बैठता है कि मेरे करने को तो यह काम पड़ा हुआ है, तो तुरन्त व्यग्रता हो जाती है। तो व्यग्रताका कारण है कामका करना, और कामके करनेकी धुनि, जैसे मुझे आगेके ये कार्य करनेको पड़े हैं ये कार्य करनेको पड़े हैं, ऐसा विकल्प रहेगा और चूंकि ये सारे पदार्थ अनन्तकाल तक रहेंगे तो अनन्तकाल तक इनमें कुछ न कुछ किया जानेको रहेगा ही। कोई समय ऐसा नहीं आ सकता कि इन पदार्थोंमें कुछ कार्य किए जानेको नहीं रहे, कुछ कार्य होनेको नहीं रहे। अनन्तकाल तक इनमें परिणमन रहेगा। लोगोंमें पदार्थ सब मेरे किए जानेके लिए हैं ऐसा जो विकल्प रखेगा, ऐसा ही जिसका स्वभाव बनेगा उसे आनन्द नहीं मिल सकता। प्रभु अनन्त आनन्दमय इसी कारण है कि उनके इतना विशुद्ध ज्ञान प्रकाशमें कार्य करनेका कुछ विकल्प ही नहीं रहा।

निमित्तनैमित्तिभावसे कार्यव्यवस्था - न भैया ! यह बात तो अव्युत्पन्न लोगोंकी बुद्धिकी है कि विधिविधान अन्वयव्यतिरेक निमित्त नैमित्तिक यह बात समझ में न आये तो एक यह निर्णय पकड़ रखा है कि यह तो प्रभुने बनाया है क्योंकि वह अनन्तशक्तिमान है। यदि कुछ प्रभुने बनाया तो सबको प्रभु ही बनाये, रोटी दाल भी वह प्रभु पकाये। क्यों व्यर्थमें रोटी दाल आदि बनानेके लिए महिलावोंको लगाते, प्रभु को ही बना देनी चाहिए क्योंकि उसे आपने सर्व चीजोंके बनाने वाला माना। अरे करे तो सब करे। तो तथ्य तो यह है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी योग्यतासे अपने उपादानसे निमित्त पाकर बराबर परिणमन करते चले जा रहे हैं। हम अब भी जिन चीजोंको बना सक रहे हैं लोकोक्तिमें, वहां भी हम उन पदार्थोंको नहीं बना रहे हैं क्योंकि पदार्थ बन रहे हैं और उस प्रसगमें हमारी ये क्रियायें हमारे ये कर्मयोग निमित्त हो रहे हैं। तो जैसे घड़ा बना तो उस प्रकारके व्यापारमें परिणत कुम्हारका निमित्त सन्निधान पाकर और पानी आदिकका यथेष्ट संयोग पाकर मिट्टीमें घड़ारूप परिणमन हुआ है वहां भी कर्तापनकी क्या बात ? कदाचित् कुम्हार चेतन वहां न बैठा होता और कोई उस आकारमें उस ढगकी मशीनरी होती तो वहां भी उस ढंगके खिलौने, घड़े आदि बन जाते। और, बन ही रहे हैं। कई जगह घड़ा, बर्तन व खिलौना आदि लोहेके व मिट्टीके इस तरह बन भी रहे हैं। तो ये सब पदार्थ अपने उपादान योग्यता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के अनुसार निमित्त सन्निधान पाकर अपने ही परिणमनसे परिणमते हैं। इसमें किसी भी परतत्वके कर्तृत्वकी बात नहीं है।

शंकाकार द्वारा अनुमान द्वारा कारण सामान्यकी सिद्धि करनेका प्रस्ताव—सृष्टिकर्तावादी यह युक्ति दे करके किसी महान बुद्धिमानको जगतका कर्ता मान रहे थे कि चूंकि घट पट आदिक जैसे कार्य हैं तो वे किसीके द्वारा बनाए गए हैं तो ये पृथ्वी पर्वत आदिक भी किसीके कार्य हैं इस कारण ये भी किसी न किसीके द्वारा बनाए गए हैं तो इसमें समानताकी बात ठीक नहीं कही जा सकती। कारण यह है कि यहां तो बनाने वाले लोग शरीरसहित हैं तो इसमें तो यह अनुमान किया जा सकता कि जो काम किसी शरीरधारीके द्वारा किया जा सकता है बस उसका ही करने वाला कोई है। शरीररहित होकर फिर कोई इस सारे जगतको बनाने वाला हो जाय यह बात नहीं सम्भव हो सकती। अब इस स्थल पर शंकाकार यह कह रहा है कि हम सरीखे लोगोंके द्वारा किया गया यह जगत् है या हम लोगोंसे विलक्षण शरीररहित किसी महान शक्तिके द्वारा किया गया है यह जगत, ऐसा विकल्प न करके केवल कर्तामात्रका अनुमान हमने बनाया कि चूंकि यह कार्य है, सावयव है, अपनी सकल सूरत रखता है इस कारणसे यह किसीके द्वारा किया गया है। यों केवल कर्ता सामान्यका अनुमान कराया गया, आप इन विकल्पोंको छोड़ दीजिए कि ये पृथ्वी आदि हम जैसे लोगोंके द्वारा किए गए हैं या हमसे विलक्षण किसी अन्य जैसोंके द्वारा किए गए हैं।

कार्यसामान्य हेतुसे कारणसामान्यके ही निर्णयकी संभवता—कारण-सामान्य व कर्तासामान्यके प्रस्ताव पर उत्तर देते हैं कि यदि कर्ताके सम्बन्धमें हम जैसे या हमसे विलक्षण विकल्पोंका त्याग कराकर फिर कर्ताका अनुमान कराते हो तो फिर ठीक है, यहां भी क्यों नहीं ऐसा मान लिया जाता है कि इस जगतका चेतनकर्ता है या अचेतनकर्ता है यह विकल्प न रखकर हां कोई कारण मात्र जरूर है ऐसा माननेमें आपत्ति नहीं है, क्योंकि जो कुछ भी यह पिण्ड है, सावयव है, आकारवान पौद्गलिक स्कंध है, यह परमाणुवोंके द्वारा रचा गया है और इसमें जो रूप, रस, गंध आदिकका परिवर्तन होता है वह समय पर उस प्रकारकी उपाधिका निमित्त पाकर होता रहता है। तो कार्यमात्र हेतु देकर कारणमात्रको तो बता सकते हो पर यह नहीं कह सकते कि यह किसी प्रभुके द्वारा, चेतनके द्वारा बनाया गया है। हां यह कार्य है तो हमारा कार्य कारणपूर्वक है। उसका कारण है यह ही स्वयं उपादान और बाह्य में अन्य योग्य निमित्त। जैसे एक धुवां देखकर केवल अग्नि सामान्यका ही तो अनुमान बनता है कि कोई यह अनुमान कर बैठता है कि यह तो सागौनकी लकड़ीकी आग है क्योंकि धुवां होनेसे पर्वतमें धुवां देखकर कोई विशेष अग्निका अनुमान नहीं किया जा सकता। धुवां दिख रहा है तो कोई अग्नि है ऐसा अनुमान हुआ। सामान्य हेतुसे सामान्य साध्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की सिद्धि होती है। जैसे कि रसोईघरमें आग जल रही है और धुवां भी ऐसा हो रहा है कि जिससे कंठ रुध जाय, आंखमें भी विक्षेप हो जाय, काला नीला सा जिसका रंग है ऐसे ही धुवांको निरखकर सामान्य लाल पीली आग है, इस पर्वतमें, इतना ही मात्र तो अनुमान बनता है, और हमारी व्याप्तिका ज्ञान करने वाला जो तर्क प्रमाण है वह तर्क प्रमाण सर्व धूम अग्निका उपसंहार करके यों ही सामान्यतया ग्रहण करता है, कहीं उससे विलक्षण चीजका ज्ञान नहीं करता। कार्य विशेष देखकर ता कर्ता विशेष का अनुमान किया जा सकता है, जैसे घड़ा कपड़ा, कुवा, मकान ये विशेष कार्य हैं। इनको निरखकर तो कर्ता विशेषका अनुमान किया जाता है। पर कार्य सामान्यको निरखकर कर्ता विशेषका अनुमान नहीं होता। कार्य विशेष वह कहलाता है कि जिसे निरखकर सहसा सभी लोगोंकी बुद्धि में यह बात समा जाय कि किसीके द्वारा की गई है। टूटा फूटा कुवा महल निरखकर प्रत्येक व्यक्ति यह सोच लेता है कि किसीने यह बनवाया था, देखो—आज धराशायी हो रहा है। तो जिस कर्ताको हमने देखा नहीं, करते हुएको देखा नहीं और फिर भी जिसे निरखकर कर्ताकी बुद्धि हो जाती है वह तो है कार्य विशेष और सामान्य जितना लोकका परिणमन है वह सब कहलाता है कार्य सामान्य। कार्य विशेषसे तो कारण विशेषका अनुमान होता है पर कार्य सामान्य से कारण सामान्यका ही अनुमान बन सकता है।

पिशाच और शरीरावयवका उदाहरण देकर शरीररहित लोककर्तृत्वके प्रस्ताव—भैया ! इस प्रसङ्गमें एक सीधी बात यह है कि यहां जब हम कुम्हार जुलाहा आदिकको शरीरसहित ही कर्ता निरख रहे हैं तो इस सब जगतका भी कोई शरीरसहित ही कर्ता होना चाहिए, इसपर शंकाकार कह रहा है कि यह कोई नियम नहीं है कि कार्यका करने वाला शरीरसहित ही हो। जैसे वृक्षोंकी टूटी शाखाओंपर पुराने पेड़ोंपर पिशाच आदिक रहते हैं, उनके तो शरीर है नहीं और फिर भी कितने काम कर डालते हैं। अथवा अपने ही शरीरके किसी अवयवको हिलाते हैं, अंगुली टेढ़ी कर दी तो दूसरा शरीर तो इसके साथ चिपटा नहीं है और फिर भी कार्य देखा जा रहा है। शरीर बिना भी तो कार्य देखे गये हैं। शंकाकारने शरीरसहित होकर भी कार्य किया जा सकता है यह सिद्ध करनेके लिये दो उदाहरण दिये एक तो दिया है पिशाचका कि जैसे पिशाच शरीरसहित नहीं है फिर भी अनेक कार्योंको करता है है, दूसरी बात—शरीरावयव स्वयं अपनेमें गति करता है, क्रिया करता है। देखो ना हाथ हिला रहे। अंगुली कांपती हैं, आंखें मटकती हैं, शिर हिलता है। दूसरा शरीर तो कोई लगा नहीं फिर इस शरीरकी क्रिया कैसे हो गई ? तो शरीर नहीं है फिर भी शरीरके अवयवके द्वारा भी कार्य किया जा सकता है।

पिशाचादिकके शरीररहित होकर कार्यकारी होनेका निराकरण—शरीररहितके लोककर्तृत्वकी शंकाका समाधान देते हैं कि यह कहना केवल बिना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विचारका है। पिशाच आदिक भी शरीरसम्बन्ध रहित होकर कार्य नहीं कर सकते। जैसे कर्म मुक्त आत्मा शरीररहित है तो वह कार्य तो नहीं कर सकता। इसी प्रकार शरीरसम्बन्धसे रहित पिशाच आदिक कार्य भी करनेमें असमर्थ होंगे। वे कार्य करते हैं तो अवश्य शरीरसहित होंगे। शरीरसहित होनेपर ही कुम्हार आदिकमें कार्य करने की बात देखी गयी है। शरीररहित कोई पुरुष किसी कार्यका करने वाला नहीं देखा गया, और पिशाच आदिकके साथ शरीरका सम्बन्ध है तो वह आंखों दिख जाना चाहिये। जैसे कुम्हार आदिक आंखों दिखते हैं शरीरसहित है और तब वे घट आदिक के काय करने वाले होते हैं। यदि यह कहो कि कुम्हारका शरीर तो दिखता है इस कारण हम शरीर मान लेंगे, पर पिशाच आदिकका तो शरीर दिख ही नहीं रहा। कुम्हारका उदाहरण देकर पिशाचको भी शरीरसहित सिद्ध किए जानेकी बात ठीक नहीं बैठती, अथवा पिशाचका शरीर दिख ही जाना चाहिए ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता। हर एककी बात अलग अलग होती है। कुम्हारका शरीर दृश्य है। और भूतपिशाचका शरीर अदृश्य है। तो उत्तरमें कहते हैं कि जैसे शरीरपना सामने होने पर भी कुम्हारका शरीर भी शरीर है इस पिशाचका शरीर भी शरीर है, इस प्रकार शरीरपनेकी समानता होनेपर भी जैसे कि पिशाचके शरीरको हमारे शरीरसे विलक्षण मान रहे हो तो इसी प्रकार यहां भी यह मानलो कि कार्यपनेकी समानता होनेपर भी घट आदिक थे। किसीके द्वारा कृत होते हैं, किन्तु पर्वतादिक किसीके द्वारा कृत नहीं होते। तो इस तरह तो आपके ही अभिमतमें दोष आयगा।

शरीरावयवकी स्वशरीर सम्बन्धसे कार्यकारिता— दूसरा उदाहरण जो दिया गया था कि शरीररहित होकर भी कार्य कर सकता है कोई। जैसे कि खुदका शरीर। इस शरीरमें कोई दूसरा शरीर तो नहीं लगा हुआ है दूसरे शरीर के बिना ही यह शरीर अपने हाथ पैर हिला लेता है अंगुली मटका लेता है, आंखें हिला लेता है तो शरीरके बिना भी दिखा इस शरीर अपने अंग हिला डाले तो शरीररहित होकर भी कोई कार्य कर सकता है। शकाकारने यह जो कहा है वह यों सही नहीं है कि शरीर ही कुछ न हो, और, फिर कार्य होता हो तो बतावो। ये अंग जो हिल रहे हैं तो यह स्वयं शरीर तो है। न रहो इसमें मिला हुआ कोई दूसरा शरीर जो कि उसको प्रेरणा करे हाथ हिलानेके लिये। इसका मतलब केवल इतना ही है कि शरीरका सम्बन्ध मात्र हो तो ये कार्य होते हैं। तो यह शरीर तो खुद हुआ ना। तो इस सम्बन्ध मात्रसे इसके अवयवोंकी प्रेरणा आ गई, इसमें दूसरे शरीरका सम्बन्ध आवश्यक नहीं। शरीर सम्बन्ध बिना चेतन कार्योंको नहीं कर सकता है जैसे कि मुक्त आत्मा, इतना ही मात्र हमारा प्रयोजन है तो यदि किसी महेश्वर या अन्य को ही तुम इस जगतका कर्ता मानना चाहते हो तो शरीरके सम्बन्धसे ही कर्ता माना जा सकता है। शरीररहित होकर कोई पद थंक करने वाला नहीं होता।

सशरीरसहित होकर प्रभुके लोककर्तृत्वकी असिद्धि—कदाचित् मान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लो कि जगत्कर्ता महेश्वरके शरीर भी लगा हुआ है, दिखे चाहे न दिखे, शरीर उसके भी है। यदि ऐसा मान लेते हो तो फिर यह बतलावो कि प्रभुका वह शरीर किया गया है यह बिना किया गया है। यदि कहो कि प्रभुका शरीर भी किया गया है तो उसे शरीरको किसने किया ? किसी दूसरे शरीरधारीने किया है तो अनवस्था दोष आयगा। उस शरीरधारीने किया है, उसका शरीर भी किसी दूसरे शरीरधारीके द्वारा किया गया है और वह भी किसी अन्य शरीरधारीके द्वारा किया गया है तो यों एक शरीरके बनानेके लिए अनेक शरीरोंकी कल्पना करनी पड़ेगी। तो पहिले शरीर ही बननेमें बड़ी देर लगेगी। उसकी जब अन्य अन्य शरीरोंके ही रचनेमें शक्ति लग जायगी तो इस जगतको बनानेके लिये उसका व्यापार ही क्या होगा ? यदि कहो कि वह शरीर बिना बनाया हुआ है, अपने आप है प्रभुका शरीर तो बतावो वह शरीर कार्य है कि नित्य है ? यदि कार्य है तो देखो कि कार्य भी है वह शरीर और बिना किया हुआ भी है। तो ऐसे ही इन पृथ्वी पर्वत आदिकको क्यों नहीं मान लेते कि ये कार्य भी हैं और बिना किए भी हैं यदि कहो कि वह नित्य है शरीर, महेश्वरका शरीर सदा अवस्थित है, अपरिणामी है। तो देखो शरीर तो शरीरधर्मके कारण अनित्य ही हुआ करता है यहां तक कि जो सकलपरपदार्थ है, अरहंत भगवान है उनका भी शरीर नष्ट हो जाने वाला है। तो शरीर हम आप लोगोंके हैं और शरीर प्रभुका भी है। तो शरीरपनेकी समानता होनेपर भी हम लोगोंके अनित्य शरीरमे विलक्षण कोई नित्य शरीर यदि मान लिया गया है तो यों ही यहां मान लो कि कार्यपनेकी समानता होने पर भी घट पट आदिक तो किए गए हैं और पृथ्वी पर्वत आदिक बिना किए गए हैं। तो इन सब विवाद युक्तियोंसे यह सिद्ध होता है कि कार्यत्व हेतुसे किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाया गया है पदार्थ इस साध्यकी व्याप्ति नहीं बनती। तो अविनाभाव सम्बन्ध रूप व्युत्पत्ति तो इसमें रही नहीं।

अविनाभावव्यतिरिक्त व्युत्पत्ति माननेकी असंगतता - शंकाका ने पहिले ये दो विकल्प उठाए थे कि तुम जो कार्यत्वका व्यभिचार सिद्ध करके कह रहे हो कि बुद्धिमानके द्वारा नहीं बनाया गया तो क्या यह व्युत्पन्न पुरुषोंके लिए कह रहे हो या अव्युत्पन्नजनोंके लिए कह रहे हो ? उस सम्बन्धमें व्युत्पत्तिकी परिभाषा पूछी गई। यदि कहो कि अविनाभाव सम्बन्ध ज्ञप्ति ही कोई व्युत्पत्ति है तो न वह तो निराकृत कर दी अब यदि तद्व्यतिरिक्तको व्युत्पत्ति कहते हो तो वह व्यतिरिक्त क्या ? यह तो लौकिक आग्रह है। हमारे शास्त्रोंमें लिखा हुआ है इसलिए यह बात सही है यह तो अपने आगमकी हठ है, इतने मात्रसे तो कार्यत्व हेतुसे बुद्धिमानपनेके साध्यको सिद्ध नहीं कर सकते। यदि बिना अविनाभाव सम्बन्धके ही, बिना युक्तियोंके गठन किए ही किसी भी हेतुसे कुछ भी सिद्ध कर दें तो ऐसा भी कहनेमें क्या दोष है कि वेद अपौरुषेय होता है क्योंकि इसका अध्ययन चल रहा है तो यह भी उस अनुमानको सिद्ध करने वाला बन जायगा। तो यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता कि जैसे घड़े

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में कार्य है तो किसी कुम्हारके द्वारा बनाया गया है तो पृथ्वी आदिकको भी किसीने बनाया है यह बात सिद्ध नहीं होती।

निमित्त नैमित्तक व्यवस्थामें कार्योंका विशद दर्शन--भैया ! स्पष्ट दिख रहा है सब कुछ कि ये अङ्कुरादिक स्वयं ऐसे हो ते हैं कि बिना ही खेती किये खुद उत्पन्न हो जाते हैं। घासको कौन पैदा करता है ? और, कुज सवां पसाईके चावल आदि ऐसे अनाज भी होते हैं जो बिना बोये ही पैदा हो जाते हैं, अथवा ये जो बड़े बड़े जंगल हैं ये भी तो बिना बोये हो पैदा हो जाते हैं। इनको भी कौन बोने आता है ? यदि कहा कि दाने बिखर जाते हैं और पानी कीचड़े आदिकका सम्बन्ध पाकर ये उत्पन्न हो जाते हैं तो यह कहना तुम्हारा ठीक है। इसके माननेमें किंतु कोई शरीरवाला या शरीररहित कोई एक चेतन आता है वह उनका जन्म [देता है, फिर उनको बड़ा करता है यह बात तो ठीक नहीं है। वहां तो एक निमित्त नैमित्तिक भावोंकी बात है। पर कुम्हार जैसे कोई अलग व्यक्ति है और इन अलग चीजोंको कर डालता है इसमें युक्तियोंसे बाधा आती है। यों तो सारा ही विश्व इस प्रकारका है कि एकका निमित्त पाकर दूसरेमें कार्य होता रहता है। तो एकत्व हेतुका किसी बुद्धिमानके द्वारा यह बनाया गया है यह अविनाभाव सम्बन्ध नहीं बनता।

अकर्तृत्वकी मान्यतामें हितकारी ज्ञानप्रकाश देखिये जगतका करने वाला कोई प्रभु नहीं है, इस मान्यतामें कितनी ज्ञान किरणें मिलती है। प्रथम तो यह बोध जगता है कि प्रत्येक पदार्थ अनादि सिद्ध है, चूंकि वह सत् है अतएव वह अनादिसे ही अपना स्वरूप रखे हुए और वे सब पदार्थ परस्पर एक दूसरेका निमित्त पाकर अपने आपमें विकारभाव करते हैं, अपनी परिणतियोंको बदलते हैं इस कारण से ये सर्व पदार्थ अपने स्वरूपमें अपने चतुष्टयमें अपना अस्तित्व रखते हैं। इसी कारण कोई पदार्थ किसी पदार्थका कुछ नहीं लगता। यहां तक कि हम आप जिस पर्यायमें पड़े हुए हैं। यह पर्याय कितने पदार्थोंका समूह है। जो कुछ आपको नजर आता है यह समस्त शरीर कितने द्रव्योंका समूह है, इसमें एक तो जीव है,और अनन्त पुद्गल परमाणु शरीर वर्गणावाले हैं, उनसे भी अनन्तगुने पुद्गल परमाणु कार्माण वर्गनाओं की जातिके लगे होते हैं, तैजस वर्गणा नामके भी पुद्गलोंका समूह इस शरीरमें बंधा हुआ है। मनोवर्गना भी अनन्त परमाणु हैं मनकी रचन
इन सबका जो एक यह पिण्ड है वह है मनुष्यभव। वस्तुतः देखो तो इन अनन्तानन्त पदार्थोंमें प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपास्तित्त्वको लिये हुए हैं और परस्परमें एकके परिणमनके लिये दूसरा निमित्त बन रहा है मगर जो परिणमन रहा है वह अपने उपादानसे ही परिणम रहा है। कभी जीवके भावोंकी प्रेरणामें यह शरीर दौड़ता है, उस दौड़ते हुएकी दशामें आत्मा भी हिल रहा है और शरीर भी हिल रहा है फिर भी शरीरके हिलनेमें उपादान तो शरीर है और आत्म प्रदेशोंके हिलनेमें उपादान आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही है। एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका परिणमन कर देनेका अधिकारी नहीं है।

प्रेरित अथवा अप्रेरित समस्त घटनाओं वस्तुके स्वरूपकी विविक्तरूपता—जहां हम कुछ प्रेरणाके रूपमें भी कार्यरचना निरख रहे है जैसे कुम्हार किसी मिट्टीसे कलश, कटोरा आदि बनाता है ऐसी प्रेरणा वाले कार्यके बीच भी हम यह पा रहे हैं कि कुम्हार तो केवल अपने भाव और इच्छाका ही करने वाला हो रहा है। इच्छा और योगका निमित्त पाकर यह शरीर अपनी चेष्टामें लगा हुआ है और इस शरीर चेष्टाका सम्बन्ध पाकर मिट्टी अपने आपके परिणमनसे अपने ही उपादानमें सकोड़ा घड़ा आदि नाना कार्यरूप परिणमन रहा है। वस्तुस्वरूप पर दृष्टि दें तो प्रेरित कार्यके बीच भी आप यह पायेंगे कि जितने भी वे पदार्थ हैं वे सब पदार्थ अपने आपमें अपना परिणमन कर रहे हैं। कोई भी अणु किसी भी दूसरे अणुका कोई भी परिणमन नहीं कर रहा है। जब बात ऐसी स्वतन्त्रताकी समझमें आती है तो मोह नहीं ठहर सकता। मैं किसका करने वाला कौन मेरा करने वाला ? मैं ही अपने भावोंमें गिरता हूँ, उठता हूं सुखी होता हूँ, दुःखी होता हूं। मेरा रक्षा करने वाला कोई दूसरा नहीं है।

विश्वसृष्टिकर्तृत्वके अनुमानमें दिए गए कार्यत्वहेतुका व्यभिचारित्व—समस्त पदार्थ चूंकि हैं अतएव निरन्तर परिणमते रहते हैं। वे पदार्थ यदि अशुद्धोपादानी हैं तो योग्य निमित्त सन्निधान पाकर अपने प्रभावसे प्रभावित हो जाते हैं। किसी पदार्थका करनेवाला कोई अन्य नहीं है। और भी देखिए—इस समस्त पदार्थ समूहका किसी एक बुद्धिमानको कर्ता तो वैसे भी युक्तियोंसे माना ही नहीं जा सकता, क्योंकि कार्यत्व हेतुका बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्व साध्यके साध्यके साथ अविनाभाव असिद्ध है। सभी लोग जानते हैं ये जगलके जंगल ये बिना खेती किए हुए होने वाले घास, धान्य आदि, इन्हें कौन पैदा करता है ? देखो ये कार्य तो हैं किन्तु किसी एक बुद्धिमानके बनाए हुए नहीं हैं। सो सर्वजगतको बुद्धिमन्निमित्तक सिद्ध करनेमें जो कार्यत्व हेतु दिया गया है वह हेतु व्यभिचारी हो गया। यों युक्ति से भी ईश्वरकर्तृत्ववाद सिद्ध नहीं होता। ईश्वरका तो अनन्त ज्ञानानन्द और कृतार्थतासे भरपूर स्वरूप है।

शंकाकारद्वारा कार्यत्वहेतुके व्यभिचारित्वका निवारण—यहां शंकाकार कहता है कि यह सर्व विश्व बुद्धिमत्कारणपूर्वक है कार्य होनेसे इस अनुमानमें कार्यत्व हेतु व्यभिचारी नहीं है, कारण कि बिना जोते उत्पन्न हुए अंकुरादिक भी ईश्वरके द्वारा रचित हैं वहां कर्ताका अभाव नहीं है, किन्तु कर्ताका अग्रहण है। जो चीज उपलब्धिमें आ सकती है फिर वह न मिले तो उसके अभावका निश्चय किया जा सकता है, किन्तु ईश्वर चूंकि अशरीर है सो उसकी उपलब्धि हो ही नहीं सकती है तो अंकुरादिकी सृष्टिके प्रसंगमें कर्ताका अग्रहण तो है लेकिन अभाव नहीं है शंकाकार सृष्टिकर्तृत्वके समर्थनमें शंकाका पिष्टपेषण कर रहा है। देखो भैया ! वस्तुके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूपकी महिमाका जब तक विनिश्चय नहीं होता है तब तक यह सब लोक कैसे आ गया इसकी जिज्ञासा रहती है और वस्तुगत समाधान न मिलने पर प्रभु पर कर्तृत्व छोड़कर संतोष करनेकी टेव हो जाती है।

प्रमाणके अविषयभूत कर्ताकी कल्पनामें अव्यवस्था—अब उक्त शंकाका समाधान निरखिए–जगत्कर्ता प्रमाणसिद्ध नहीं है, प्रमाणका अविषय है, प्रमाणका अविषय होने पर भी यदि अंकुरादिके कर्ताके अभावका अनिश्चय होना माना जाय तो यों भी कहा जा सकता है कि आकाशादिकमें रूपादिके अभावका भी अनिश्चय है, क्योंकि गगनादिकमें रूपादिक उपलब्धिलक्षण प्राप्त होकर फिर न मिलते तो अभाव कहा जाता। यदि कहो कि आकाशादिकमें रूपादिकके बाधक प्रमाण हैं इसे रूपादिक के अभावका निश्चय है, तो यही बात प्रकृतमें है अंकुरादिकके कर्तृत्वके बाधक प्रमाण हैं सो कर्ताके अभावका निश्चय है। अनुपलब्धिलक्षण प्राप्त होनेसे लोककर्ताके अभाव का अनिश्चय है यह बात युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि शरीरके सम्बन्धसे ही कर्तापन बन सकता है, शरीरके सम्बन्ध बिना यदि कर्तापन माना जाने लगे तो मुक्त आत्मा को भी लोककर्ता मानना पड़ेगा। सो लोककर्ताको शरीर सम्बद्ध माना जायगा तो वह उपलब्धिलक्षण प्राप्त हो जायगा याने कुम्भकार आदिकी तरह मिलने लगेगा लोककर्ता, सो मिलता नहीं। बात तो वास्तविक यही है पृथ्वी आदिक इन पदार्थोंकी रचनामें इन्हींका अन्वय व्यतिरेक पाया जाता है। इस कारण इन पदार्थोंसे अतिरिक्त अन्यके कारणत्वकी कल्पना व्यर्थ है। यदि अनावश्यक कारण कल्पना करने लग जावोगे तो अपने योग्य कारणोंके सन्निधानमें घटकी उत्पत्ति होती है वहां भी जुलाहा के कर्तृत्वकी कल्पना करने लगो।

पुण्य पापकी कारणताके विषयमें आशंका और समाधान शंकाकार कहता है कि इन पदार्थोंमें ही अन्वयव्यतिरेक माननेसे कारणता मानी जानेपर तो पुण्य पापकी कारणता भी न ठहरेगी। कोई कहे कि न रहे पुण्य पापमें कारणता, तो वृक्ष तृण आदि पदार्थ सुख दुःखके साधन न रहेंगे, क्योंकि अब तो पुण्य पापसे भी निरपेक्ष होकर इनकी उत्पत्ति मानी जाने लगी, लेकिन यह कैसे हो सकता है? स संसारमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो साक्षात अथवा परम्परासे किसीके सुख या दुःखका साधन न हो। अब इसका समाधान देखिये-- पृथ्वी, अंकुर आदिकका परिणमन तो साधारण परिणमन है उनमें जो विचित्रता है वह अदृष्ट (पुण्य पाप, नामक विचित्र कारणके बिना नहीं होती। पुण्य पापकी कारणता नहीं मिटायी जा सकती। क्योंकि पुण्य पापके बिना जीवलोककी इतनी विचित्रता बन नहीं सकती। और भी देखिए – जैसे पुद्गल पुद्गलोंके सम्बन्धसे जो कार्य होता है वह तो होता है, साधारण परिणमन है, किन्तु जहां जीवका सम्बन्ध है और पृथ्वी अंकुर, कीट आदि विचित्र भवोंका सृजन है वह तो पुण्य पापके अनुसार होता है। सुख दुःखकी साधनता तथा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विचित्र देहियोंकी आविर्भूति इन दोनों कारणोंसे पुण्य पापकी कारणता तो सिद्ध हो जाती है, किन्तु इस जीव लोककी, विश्वकी बुद्धिमत्कारणता सिद्ध नहीं होती।

लोककर्त्ताके अग्रहणके कारणका संदिग्धव्यतिरेकत्व— ईश्वरकर्तृत्ववादी यहां यह सिद्ध कर रहे थे कि जगतमें जो कुछ है वह सब किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है। क्योंकि कार्य होनेसे। इस सम्बन्धमें बहुत सा निर्णय तो हो गया है, अब प्रासंगिक एक बात यहां चल रही है कि कोई ईश्वर है और वह रच रहा है, किन तरह रच रहा है, किसीको भी नहीं दीखता, अतः लोककर्त्ताका अभाव है। तो इस पर कर्तावादीने कहा था कि दिखे कैसे ? जो चीज दिखने लायक है और वह फिर न दिखे तो उसका तो अभाव मानना चाहिए। किन्तु जो चीज दिखने लायक नहीं है और न दिखे तो उसका अभाव नहीं माना जा सकता। सृष्टिकर्ता ईश्वरका अग्रहण असत्त्वके कारण नहीं, किन्तु अनुपलब्धि लक्षण प्राप्त होनेसे अग्रहण है। ईश्वर अनुपलब्धि लक्षण प्राप्त है अर्थात् वह उपलब्धिमें आ ही नहीं सकता है। तो इस सम्बन्धमें वही संशय हो गया कि जितने ये अंकुर उत्पन्न होते हैं बिना बोये हुए, इन अंकुर उत्पन्न होते हैं बिना बोये हुए, इन अंकुरोंका उत्पादक कोई बुद्धिमान नहीं देखा जा रहा। सो बुद्धिमान जो नहीं पाया जाता है वह उस बुद्धिमानके अभावसे है या वह अनुपलब्धिलक्षण प्राप्त है। याने उसकी उपलब्धि होना लक्षण ही नहीं है। इस तरह तो उसमें सन्देह हो जाता है। सो संदिग्धव्यतिरेक होनेसे अग्रहणकी युक्ति अवमत हो जाती है।

लोककर्त्ताके अग्रहणको प्रसत्यका पुनः समर्थन— इस प्रसंग पर शंकाकार कहता है कि यों अगर किसीके अग्रहणमें सदेह करने लगोगे कि असत्ताके कारण अग्रहण है या अनुपलब्धि लक्षण प्राप्त होनेसे तो कोई भी अनुमान नहीं बनाया जा सकता। जहां अग्नि नहीं दिखती पर धूम देखा जा रहा है वहां अनुमान ज्ञान किया जाता है। जहां हेतु स्पष्ट रहता है और साध्य सिद्ध नहीं होता है तब अनुमान ज्ञान किया जाता है। जहां हेतु स्पष्ट रहता है और साध्य सिद्ध नहीं होता है तब अनुमान ज्ञानका प्रवर्तन होता है। जैसे इस पर्वतमें अग्नि होना चाहिए–धुंवा होनेसे, तो धुंवा स्पष्ट नहीं है तो साध्यका वहां अदर्शन है। अग्नि आंखोंको नहीं दिख रही और धुवां दिख रहा है। तो उस सम्बन्धमें भी हम अनुमान न बनने देंगे, झट वहां यह रोक लगा देंगे कि यह बताओ कि वहां जो अग्नि नहीं दिख रही है, वह अग्निके अभावसे नहीं दिख रही है या वह अनुपलब्धिलक्षण प्राप्त है। इस तरह हम सन्देह तो प्रत्येक अनुमानमें लगा सकते हैं। शायद यह कहें समाधान करने वाले लोग कि जिस सामग्रीके द्वारा धूम उत्पन्न हुआ देखा जाता है, उस धूम्रवान सामग्रीका उल्लघन नहीं कर रहा है। सो यह बात तो हम अन्यत्र भी कह सकते हैं कि कार्य जितने भी होते हैं वे कर्ता करण आदिक पूर्वक हुआ करते हैं और ये अंकुर आदिक कार्य हैं इसलिये इनका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्ता जरूर होना चाहिए, वह भी अपनी सामग्री का उल्लंघन नहीं कर सकता है।

कार्यत्वमात्रसे कारणमात्रत्वकी सिद्धिका अनुल्लंघन—उक्त शंकाका अब समाधान दिया जाता है कि शंकाकारका दृष्टान्तसे तुलना करके दृष्टान्तगत धर्मविरुद्ध किसीको लोककर्त्ता कहना अयुक्त है। जिस प्रकार घट आदिक कार्य जिस प्रकारकी सामग्रीसे उत्पन्न हुए होते हैं, कार्यत्वके नाते उस प्रकारकी सामग्रीका उल्लंघन नहीं हुआ करता। अर्थात् जैसे यहां घड़ा बनता है कपड़ा बनता है तो इनके करने वाला शरीरी है उपलब्धि लक्षण प्राप्त है दिखने योग्य है। तो इन कार्योंसे भी कर्ताका अनुमान बनाया गया ना कि हमारा कोई ईश्वर है, प्रभु है, कर्ता है बुद्धिमान है। दिखता नहीं है फिर भी खूब काम करता है ऐसा कर्ता सिद्ध न होगा। कार्यको निरख कर यहां जैसी सामग्रीसे कार्य बन रहा है कार्यत्व हेतुसे ऐसे ही कर्ताको तो सिद्ध कर सकेंगे। मगर कोई प्रभु है, दिखता नहीं है, वह एक है, सर्वग्राही है ऐसा कर्ता सिद्ध नहीं हो सकता।

सृष्टिकर्ताकी अनुपलब्धिका कारण अशरीरत्वका कथन—शंकाकार यह कह रहा है कि ईश्वरकी जो अनुपलब्धि है वह शरीर न होनेके कारण है किन्तु असत् है इस वजहसे नहीं। कर्तृत्ववादियोंके यहां दो प्रकारके प्रभु हैं—एक तो अनादिमुक्त, अनादिनिधन, पवित्र, शरीररहित कर्मरहित जो कि संसारको बनाता है, और दूसरा मुक्तात्मा—जो तपश्चरण आदिक करके कर्मोंसे मुक्त हो जाता है। उन मुक्त आत्माओंको अधिकार नहीं है कि वे कुछ भी रचना कर सकें या रंच मात्र भी हिल डुल सकें, वे तो अपने ज्ञानानन्दमें छकित रहेंगे, पर उनकी भी इस सदाशिव ईश्वरने सीमा रख ली है। बहुत कालके बाद उनके भी कर्म लगा दिये जायेंगे और वे संसारमें जन्म लेंगे। तो ईश्वरकी भी असत्त्वके कारण अनुपलब्धि नहीं है किन्तु शरीर न होनेसे अनुपलब्धि है। शरीर सहित कुम्हारके कार्यपन प्रत्यक्षमें देखा जाता है सो युक्त ही है, परन्तु यहां पर एक चैतन्यमात्र रूपसे ही तो ईश्वरका अधिष्ठान है। वह चैतन्यसहित है, शरीरसहित नहीं। इस कारण इस महेश्वरकी प्रत्यक्षसे उपलब्धि नहीं है। और ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि जब शरीर नहीं है तो कर्ता भी नहीं हो सकता, क्योंकि कर्तापनका शरीरके साथ अविनाभाव नहीं है। शंकाकार कह रहा है कि कर्तापनको तो शरीरके साथ अविनाभाव नहीं है। शरीरान्तरसे रहित भी समस्त चेतन अपने शरीरकी प्रवृत्ति निवृत्ति करते ही हैं। इसके पोषणमें एक उपदृष्टान्त दिया है कि जब जीव मर जाता है और यह शरीर छोड़कर चला जाता है तो अब तो वह जीव शरीररहित हो गया फिर वह कैसे ये शरीर बना लेता है। तो शरीररहित भी चेतन कार्य कर सकता है यह सिद्ध किया जा रहा है। सदाशिव शरीररहित है तो वह भी कार्य करने लगा। जैसे यहांके जीव मरनेके बाद शरीररहित होकर भी नवीन शरीरको प्राप्त करते हैं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्तृत्वका ज्ञानेच्छाप्रयत्नाधारत्वसे अविनाभावका कथन – संसारी जीवोंके कार्य करनेका कारण यदि प्रयत्न और इच्छा है तो प्रयत्न और इच्छा तो हम ईश्वरमें भी मानते हैं। ईश्वरकी जब जब भी इच्छा होती है कि मैं विश्वको बनाऊं तब तब विश्व बनता है। और, सही भी बात है कि ज्ञान हो, करनेकी इच्छा हो और फिर प्रयत्न हो तो कर्तापन बन जाता है। तीन बातें चाहिये, शरीर हो या न हो, शरीरके साथ कर्तापनका अविनाभाव नहीं है। ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न ये तीनों ही होना चाहिए, क्योंकि इन तीनोंमेंसे यदि कुछ भी कम हो तो कर्तापन नहीं बनता है। इसलिये कर्तापनका अविनाभाव इन तीन कारणोंसे है शरीर अशरीरसे कोई पुरुष कार्य करना नहीं जानता तो शरीरसहित है, प्रयत्न भी करता है, इच्छा भी रखता है। फिर भी कार्य नहीं कर सकता। कोई पुरुष जानता है कार्य करना किन्तु इच्छा ही न हो रही हो कार्य करनेकी तो वह कार्य कर्ता नहीं बन रहा है। कोई पुरुष जानता है इच्छा भी करता है पर उसका प्रयत्न नहीं करता है तो कार्य नहीं होता। इससे ये तीन बातें मिल जायें, ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न, तो कार्य होगा, शरीर हो या न हो। शरीरके साथ कर्तापनका अविनाभाव नहीं है ऐसा यहां यह शंकाकार कह रहा है।

शरीरके अभावमें ज्ञानेच्छा प्रयत्नत्रयकी असंभवना – उक्त शकाका अब समाधान देते हैं कि यह कहना युक्त नहीं है कि कर्तापन ज्ञान, इच्छा और प्रयत्नके आधारपर नहीं है। यों यह कहना ठीक नहीं कि शरीरका यदि अभाव है तो ज्ञान, प्रयत्न और इच्छा हो ही नहीं सकते। जैसे कि मुक्त आत्मा। मुक्त आत्माओंके शरीर तो वे न ज्ञानसहित हैं, न इच्छा सहित हैं न प्रयत्न सहित हैं। स्टष्टिकर्तावादी लोग मुक्तात्माको ज्ञानरहित मानते हैं। ज्ञानको दूषण समझते हैं ये कर्तावादी लोग। जब तक जीव संसारमें रुलता है और ज्ञान न रहे तो उसे मौन हुआ है ऐसा कहते हैं। तो मुक्तात्माओंके चूंकि शरीर नहीं है इसलिये ये तीनों बातें भी नहीं है। और, भी सुनो—इस नैयायिक दर्शनके अनुसार पदार्थोंकी उत्पत्तिमें तीन कारण हुआ करते हैं समवायकारण, असमवायिकारण और निमित्त कारण। आत्मा तो समवायिकारण है और आत्मा तथा मनका सम्बन्ध होना यह असमवायि कारण है और शरीरादिक निमित्त कारण है। इन तीन कारणोंके बिना कार्यकी उत्पत्ति तो इन शंकाकारोंने भी नहीं मानी, क्योंकि इन तीन कारणोंके बिना कार्यकी उत्पत्ति हो जाय तो मुक्तीमें भी ज्ञानादिक गुण उत्पन्न होने लगेंगे क्योंकि आत्मा और मनका संयोग भी कारण नहीं माना शरीरादिक भी कारण नहीं माना तो फिर क्या वजह है जो मुक्तात्मावोंमें जैसे कि पहिले ज्ञानकार्य चल रहा था उस तरह अब क्यों न चले और फिर यह सिद्धान्त कि बुद्धि सुख दुख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार इन ९ गुणोंका अत्यन्त अभाव हो उसे मुक्ति कहते हैं। और देखिये शरीर है कार्यका निमित्त कारण, सो निमित्त कारण बिना भी यदि कार्योंकी उत्पत्ति मानने लगोगे तो हम यह कहेंगे कि एक बुद्धिमान कारणके बिना भी जगतका कार्य हो रहा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्तृत्वका सशरीरत्वसे सन्बन्ध प्रतिपादनका उपसंसार—उस अनादि मुक्त ईश्वरके शरीर है नहीं और कार्य कर रहा है इसपर एक तो यह आपत्ति आती है कि शरीर रहित तो मुक्त आत्मा भी है, वह क्यों नही कार्य करने लगता ? यदि यह कहो कि मुक्त आत्मावोंके ये तीन प्रकारके कारण नहीं हैं शरीरादिक और आत्मा मनका संयाग ये दो कारण नहीं हैं आत्मा तो है समवायि कारण । तो इसके उत्तरमें यह है कि ये दोनों कारण उस अनादि मुक्तके भी नहीं है जो कार्य करता है वह तो समवायि कारण है या जिसका कार्य बना करता है वह समवायि कारण है ? ईश्वर जगतको रचता है इससे भी वह जगतसे निराला नहीं है । या एक आपत्तिसे बचनेके लिये यह भी कह दीजिए कि यह ईश्वर ही इन नाना रूप बनता है । इस तरहसे तो वह आत्मा समवायि कारण है और सदा ही एक रूपसे क्यों नहीं बनता रहता है ? उसके लिए असमवायि कारण मानना जरूरी हो जाता है । वह असमवायि कारण जिस समय है या उस असमवायि कारणमें कुछ फर्क है तो इस तरहसे कार्यमें फर्क होना है । और शरीरादिक निमित्त कारण माना है सो सदाशिवके शरीरके बिना कर्तापन बन ही नहीं सकता हैं । निमित्त कारणके बिना याने शरीर न होनेपर भी यदि जगतको ईश्वर रचता है तो बुद्धिमान निमित्त कारणके बिना अंकुरादिक कार्य की भी उत्पत्ति हो जाय तथा यदि जगतको ईश्वर रचता है तो शरीर न होनेपर मुक्त आत्मा भी जगतको रचने लग बैठे ?

शंकासमाधानपूर्वक कार्यत्वहेतुसे कारणमात्रत्व साध्यका समर्थन—यदि सृष्टिकर्तावादी यह कहें कि ईश्वरका ज्ञान तो नित्य है उसमें यह दोष नहीं लगता। सो यह प्रमाण विरुद्ध बात है ? ईश्वरके ज्ञान आदिक नित्य नहीं हैं, क्योंकि ज्ञान होनेसे । जैसेसे हम लोगोंके ज्ञान । हम लोगोंके ज्ञान ज्ञान है पर नित्य नहीं है इस तरह ईश्वरका ज्ञान भी ज्ञान होनेसे नित्य नहीं है । यदि यह कहोगे कि हमारे ज्ञानमें और ईश्वरके ज्ञानमें क्या तुलना ? हम लोगोंके ज्ञान और तरहके हैं और ईश्वरका ज्ञान और तरहका है । इसलिए ईश्वरका ज्ञान नित्य है और हम लोगोंका ज्ञान अनित्य है । इस तरहसे यदि ज्ञानादिकमें भी जो बात देखी जा रही है उसका उल्लंघन करके ईश्वरके ज्ञानको विलक्षण बता दोगे तो हम तुम्हारे कार्यहेतुको विलक्षण बना देंगे । यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं कि जो जो कार्य होते हैं वे किसीके द्वारा अवश्य बनाये गये होते हैं । अरे जिस प्रकार कि घट पट आदिक कार्य हैं उस प्रकारके ये अंकुर पर्वत आदिक नहीं है । जैसे कि तुम कह रहे हो कि हम लोगोंके ज्ञानकी तरह ईश्वर का ज्ञान नही है विलक्षण है, नित्य है तो यहां हम यह कह देंगे कि घट पट आदिक कार्योंकी तरह ये अंकुर पर्वत आदिक कार्य नहीं हैं सो इनका बनाने वाला अन्य कोई नहीं है ।

चेतनाधिष्ठिततासे ही अचेतनोंमें प्रवृत्ति होनेके प्रस्तावपर विचार—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शंकाकार कह रहा है कि जैसे अचेतन हथियार बसूला आदिक शस्त्र चेतनके द्वारा अधिष्ठित न हो तो उनकी प्रवृत्ति सम्भव नहीं है क्योंकि चेतनके सम्बन्ध बिना अचेतनमें प्रवृत्ति बन जायगी तो फिर देशादिकका कुछ नियम न बनेगा। यह कार्य इस तरहसे हो, इतने रूपसे हो इस तरहकी फिर कोई सीमा न बनेगी। इससे यह मानना ही चाहिये कि जैसे इन अचेतन मिट्टी आदिक, बसूला आदिक शस्त्रमें चेतनके सम्बन्ध बिना कोई चेष्टा नहीं होती इसी प्रकारसे जगतके समस्त दृश्यमान पदार्थ पर्वत अकुर आदिक ये भी किसी चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर ही बनते हैं और वह चेतन है समस्त जगतका उपादान आदिकका ज्ञाता कोई एक बुद्धिमान ईश्वर। अब इसका समाधान दिया जा रहा कि यह भी कहना तुम्हारा युक्त नहीं क्योंकि वह जगतको करने वाला ईश्वर समस्त जगत उपादानका ज्ञान है यह बात तो अब तक भी सिद्ध नहीं हुई। शंकाकार कहता है बात सिद्ध कैसे नहीं? अगर एक ईश्वर समस्त विश्व उपादानका ज्ञाता न होता तो यह कर्ता भी न बन सकता था। तो उत्तरमें कहते हैं कि इसमें तो इतरेतराश्रय दोष आ गया। जब कर्तापन सिद्ध हो तो यह कह सकोगे कि समस्त उपादानका वह ज्ञाता है और जब यह सिद्ध कर लो कि वह समस्त विश्व उपादानका ज्ञाता है तब यह सिद्ध होगा कि वह कर्ता है। इस तरह कपोल कल्पित तत्त्व न मानकर जो एक वैज्ञानिक ढंगसे है वह ही मानना चाहिए। समस्त पदार्थ हैं, स्वयं अपनी अपनी योग्यता रखते हैं। विभाव परिणमनमें जैसा निमित्त सन्निधान होता है वैसी उनमें उत्पत्ति होती है। यह कार्यके प्रसंगकी बात चल रही है। वस्तुत: निरखो तो उस प्रसगमें भी किसी भी अन्यकी परिणतिसे उपादानमें कार्य नहीं हुआ है, निमित मात्र हैं यह। लेकिन यह बात माननेपर भी कि यहांके पदार्थ अन्य पदार्थों का निमित्त सन्निधान पाकर अपनी परिणति क्रिया करते हैं, यह बात मानी नहीं जा सकती कि कोई एक ईश्वर शरीररहित सर्वव्यापी इन पदार्थोंका कार्य किया करता है।

परकृतत्वके आशयमें आत्महितका अनवकाश—भाव यहां यह लेना है कि जब तक यह बुद्धि रखी जायगी कि कोई ईश्वर हम आप सबकी रचना करता है, सुख दुख देता है तो ऐसी बुद्धि जब तक रहेगी तब तक हममें वह उत्साह नहीं जग सकता कि हम अपने उस अनन्त सामर्थ्य वाले स्वभावको निरख सकें और निज विशुद्ध सद्भूत पदार्थ अपने स्वभावके निरखनेमें एक चित्र होकर निर्विकल्पता पा सके। जिस के बिना हम आपका कल्याण कभी भी सम्भव नहीं है ऐसी स्थिति हकारी तब आ ही नहीं सकती जब यह अज्ञान बसा हो कि मैं तो कुछ करने वाला नहीं। करने वाला तो कोई एक अलग प्रभु है, उसके ही हाथ हमारा सुख दुख है, तो इस बुद्धिके रहते हुये हम उस अज्ञान अंधकारमेंसे नहीं निकल सकते जिससे कि हम सीधा मार्ग पा सके और संसार तट तक पहुँच सके। इन विकल्पोंमें विभाव और कर्म जन्म मरण ये ही सारी परम्परायें चल रही हैं। प्रत्येक पदार्थ प्रभु है स्वयं है, परिपूर्ण सत्त्व लिए हुये हैं इस ही कारण अपना अपना उत्पाद व्यय ध्रौव्य रखते हैं ऐसे श्रद्धान बिना विकल्प

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दूर न होंगे । हम अपने स्वभावमें मग्न न हो सकेंगे, और यह पुरुषार्थ हमारे उस अज्ञान अंधकारमें चल ही नहीं सकता जहां हम अपने आपको दूसरेका किया हुआ मान रहे हों । अब हम क्या कर सकते हैं ? फिर तो हाथ जोड़कर कोई एक स्थापना करके प्रार्थना ही करते रहेंगे, हे प्रभु हमें सुख दो, हमारा दुख हरो आदि हम अपनेमें कोई पुरुषार्थ न कर सकेंगे । इससे अकर्तृत्वकी सिद्धि लेना कल्याणार्थी जीव को अत्यन्त आवश्यक हो गया है, और ईश्वर कर्तृत्वकी बात तो जाने दो, इन विभाव रागद्वेषादिकको भी यह मैं आत्मा नित्य करता हूं ये सब मेरी ही करतूत हैं यह भी श्रद्धा रही तो अज्ञान है इनका मैं करने वाला नहीं मैं तो एक ज्ञानमात्र हूं, अकर्ता हूं इस श्रद्धाका होना कल्याणार्थीके लिए अनिवार्य है । और, साररूपमें इतनी ही बात ग्रहण करले कि मैं ज्ञानमात्र हूं, जानता हूं इतना ही मात्र करने वाला हूं जान रहा हूं इतना ही मात्र जानने वाला हूं । इससे घटा लीजिये कि चेतन भी अन्य चेतनकी प्रेरणा पाये बिना विशिष्ट परिणमन नहीं कर सकते । जैसे नौकरसे कहा कि तुम यह मशीन चलावो, अमुक काम करो । अब अचेतनमें ही क्यों यह बात लगाते, चेतनमें भी लगावो और चूंकि महेश्वर भी चेतन है इसलिये वह भी किसी अन्यकी प्रेरणा पाये बिना काम नहीं करता । शायद यह कहो कहो कि जो स्वामी होता है वह अन्यके द्वारा अधिष्ठित न होकर भी प्रवृत्ति कर सकता है इसी कारण महेश्वरको प्रेरणा देने वाला दूसरा चेतन माननेकी जरूरत नहीं है । तो [उत्तर देते हैं कि यही बात तो बिना जोते उत्पन्न हुये अंकुर आदिक उपादानमें घटालो । ये भी बिना चेतनकी प्रेरणाके होते हैं । यदि यह कहो कि घट आदिक जो उपादान पदार्थ हैं वे बिना चेतनकी प्रेरणाके प्रवृत्ति नहीं कर सकते. इसी तरह अंकुर आदिक उपादानमें भी यही बात घटित है कि किसी चेतनकी प्रेरणा बिना यह आत्म लाभ नहीं कर सकता । यदि ऐसा कहोगे तो हम भी यह कह सकते हैं कि जैसे विशेष कर्म करने वाला कोई साधारण पुरुष स्वामीकी प्रेरणा बिना प्रवृत्ति नहीं करता तो महेश्वरमें भी किसी अन्यकी प्रेरणा हुये बिना प्रवृत्ति न होना चाहिए क्योंकि जैसे तुमने प्रकट भिन्न प्रकारके कार्य वाले घटका उदाहरण दे करके अंकुर आदिकका भी कर्ता मान लिया तो हम भी साधारणजनोंको उदाहरण देकर महेश्वरको किसी चेतनके द्वारा प्रेरित कह बैठेंगे । अन्य चेतनकी प्रेरणा यदि महेश्वरको मिले तो उसको अन्यमें चाहिये इस तरह अनवस्था दोष हो जायगा । अतः यह अनुमान तुम्हारा युक्त नहीं है कि अचेतन पदार्थ चेतनकी प्रेरणा पाये बिना प्रवृत्ति नहीं कर सकते इस कारण समस्त विश्वका कर्ता कोई एक बुद्धिमान होना चाहिये यह बात सिद्ध नहीं होती ।

कार्यप्रतिनियममें योग्यताकी प्रतिनियमकता—अब चेतनकी भांति चेतनको भी प्रेरणा मिलने लगी तो अचेतनका नाम लेना ही व्यर्थ हो गया । अचेतन की ही बात कहना से घटित नहीं होता है यदि यह कहो कि चेतनमें और अचेतनमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फर्क है। प्रत्येक चेतनको अदृष्टकी प्रेरणा मिलती है तब कार्य करता है। जीवके साथ कर्म लगा है उसकी प्रेरणा मिलती है। इस कारण उनमें नियम बन जाता है। तो इस तरह तो अचेतनमें योग्यताका नियम बना लो प्रत्येक अचेतन पदार्थ योग्यता वाला है तो उसमें कार्यका नियम बनेगा और योग्यता नहीं है तो कार्यका नियम नहीं बनता। और योग्यता तो सबको माननी पड़ेगी। यदि परिणमन कर रहे पदार्थमें योग्यता न मानो तो सब जगह सब समय कार्य उत्पन्न हो जाना चाहिये क्योंकि जगतकर्ता ईश्वर तो सर्वत्र सर्वथा तुम्हारा मौजूद है फिर वह सभी पदार्थोंको, सभी कार्योंको एक साथ क्यों नहीं कर देगा। सो चेतनमें अदृष्टको प्रतिनियामक तुम मानो तो यह भी मानना ही पड़ेगा कि परिणमन करने वाले अचेतन पदार्थमें योग्यताका नियम बना हुआ है और जब उन पदार्थोंमें योग्यताका नियम बन चुका तब निमित्त कारणका कोई प्रभुत्व महत्त्व नहीं रहता जैसे कि यहां पर ये सारे पदार्थ अपनी-अपनी योग्यता लिये हुये हैं और उनमें देश काल आदिक निमित्त पड़ रहे हैं, तो इससे कहीं देशकाल आदिक निमित्तोंको स्वतंत्र प्रभु नहीं कहा जा सकता इसी प्रकार योग्यता रखकर परिणमन करने वाले पदार्थमें परिणमनमें आपके कहे अनुसार कोई बुद्धिमान भी निमित्त मान लिया जाय तो भी वह कर्ता नहीं माना जा सकता। एक निमित्त मात्र माना जा सकता है। निमित्तको कर्ता नहीं कहा जा सकता। कर्ता तो प्रत्येक पदार्थ स्वयं ही अपने-अपने परिणमनके कहे जा सकते हैं। क्योंकि कर्ताका स्वरूप ही यह बताया कि स्वतन्त्र: कर्ता। पदार्थोंके परिणमनमें स्वतंत्रता परिणमने वाले पदार्थकी है, निमित्तकी स्वतंत्रता नहीं है।

कर्तृत्वका कारण शक्ति ज्ञातृत्वसे सम्बन्धका अनियम—शंकाकार अब यह बात कह रहा है कि चूंकि महेश्वर कर्ता है इस कारणसे पदार्थोंके कारकोंकी शक्तिका भी ज्ञान है सो यह कहना भी ठीक नहीं है कि जो जो कर्ता हो वह उन पदार्थोंकी शक्तियोंका ज्ञाता होता ही है ऐसा कोई नियम नहीं है क्योंकि प्रयोक्ता अनेक तरहके पाये जाते हैं। कोई तो पदार्थोंका परिज्ञान न होनेपर भी प्रयोक्ता होते हैं जैसे सोते हुये मनुष्य मूर्छित मनुष्य शरीर आदिक अवयवोंके कर्ता हैं मगर उनको परिज्ञान नहीं है। अचेतन पदार्थमें किसी योग्यता निमित्तका सन्निधान होने पर पदार्थ परिणमन जाते हैं किन्तु वे अचेतन ज्ञाता नहीं है। सूर्यकी किरणें आते ही पदार्थ गरम हो जाते हैं पर सूर्यकी किरणोंको पदार्थोंकी शक्तिका क्या ज्ञान? कोई प्रयोक्ता ऐसे होते हैं जिनको कारकोंकी शक्तिका ज्ञान नहीं है किन्तु कर्ता हैं। कोई ऐसे होते हैं कि कुछ कारकोंका परिज्ञान है तब वह कर्ता है। तो नियम नहीं बनता कि जो कर्ता होता है वह कारकोंकी शक्तिका परिज्ञान रखता है, दूसरी बात ये कुम्हार जुलाहा आदिक करते तो सब काम हैं किन्तु उन कार्योंके समस्त कारणोंका ज्ञान नहीं रहता। बतलावो पुण्य पाप जो कि क्रियाके कारणभूत हैं उनका ज्ञान कौन रख रहा है? धर्म अधर्मका ज्ञाता भी मीमांसकोंके यहां केवल वेदको माना है। ईश्वर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी धर्म अधर्मको छोड़कर बाकी सर्व विश्वका ज्ञाता है ऐसा माननेमें उन्होंने इस सिद्धान्तकी रक्षा की कि वेद ही सर्वोपरि प्रमाण है। ईश्वरसे भी ऊपर वेद है क्योंकि धर्म अधर्मका ज्ञाता वेद है। तो कुम्हार जुलाहाको तो बात क्या कहें - ईश्वर भी धर्म अधर्मका ज्ञाता नहीं। और ये कुम्भकार आदिक यदि पाप पुण्यके ज्ञाता हो जायें तो फिर इनके किसी नियत कार्यमें इच्छाका घात न होना चाहिये। यदि हम आप भविष्यके धर्म अधर्मके ज्ञाता हो गये तो समझलो कि यह कार्य न होगा इच्छाका घात क्यों होगा ? इच्छाका तो तब अवसर है जब पता नहीं कि यह कार्य किस तरह होगा। सर्वज्ञकी तरह यदि हमें इन सब बातोंका सही पता हो कि यह काम इस तरह होनेको है तो उसके खिलाफ हम इच्छा क्यों करेंगे ? इच्छा हमारे तब जगती है जब कि हम असर्वज्ञ हैं और पदार्थोंके परिणमनका हमें ज्ञान नहीं है। किन्तु जो कर्ता है वह समस्त कारण शक्तियोंका ज्ञाता होता ही है यों नियम बनानेपर तो समस्त जीव अतीन्द्रिय पदार्थोंके ज्ञाता हो बैठे। कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जिसकी अदृष्टका उपयोग नहीं है। हम चलते हैं, बोलते हैं, खाते हैं, सुख दुख भोगते हैं, सबमें अदृष्ट काम है तो हमारे कार्योंका कारण अदृष्ट है और हमें उन कारणोंका ज्ञान नहीं है तो कारणका पदार्थका ज्ञान हुये बिना भी हम कर्ता बन गये कि नहीं तब यह नियम नहीं बनता कि ईश्वर सबका कर्ता है इसलिये ज्ञाता होना चाहिये। ज्ञाता हुये बिना भी कर्ता हो सकता है।

सशरीरताके बिना प्रयोक्तृत्वका अभाव - खैर किसी तरह मान भी लिया जाय कि जो कर्ता है, प्रयोक्ता है उसका पदार्थोंके परिज्ञानके साथ अविनाभाव है किन्तु जो शरीररहित ईश्वर है उसमें तो प्रयोक्तापन बन ही नहीं सकता। अमूर्त है शरीर नहीं है तो प्रयोक्ता कैसे बन सकेगा ? यहाँ हम आप जितने मनुष्य हैं ये प्रयोक्ता बन रहे हैं। तो शरीरसहित हैं तब ना। शरीर रहित कोई एक ईश्वर कैसे उसके कार्योंका प्रयोग कर सकता है ? कार्य व हेतु देकर शंकाकारने ईश्वरको कर्ता कहा और उसमें दृष्टान्त दिया कुम्हारका। जैसे घट कार्यका करने वाला कुम्हार है इसी प्रकार समस्त विश्वका करने वाला ईश्वर है। लेकिन दृष्टान्तमें जो कहा गया कुम्हार, वह तो असर्वज्ञ है, कृत्रिम ज्ञान वाला है। तो कर्तापना ऐसे पुरुषोंके साथ ही रह सकता है जो अनीश्वर हो, असर्वज्ञ हो, कृत्रिम ज्ञान वाला हो। तो जब दृष्टान्त को कार्यता एक अनीश्वर, असर्वज्ञ कृत्रिम ज्ञान वालेके साथ व्याप्त है तो सारे काम ऐसेके ही साथ व्याप्त होंगे जो अनीश्वर हो असर्वज्ञ हो, कृत्रिम ज्ञान वाला हो। तब तुम्हारा जो अनुमान है उसमें हेतु विशिष्ट विरुद्ध हो गया। कार्यत्व हेतु देकर यहां सर्वज्ञ ईश्वरको कर्ता सिद्ध करना चाह रहे थे, मगर उसके द्वारा असर्वज्ञत्व ही सिद्ध होता है।

कार्यत्वहेतुसे सामान्यतया बुद्धिमन्निमित्तकताकी सिद्धिका पुनः प्रयास

http://sahjanandvarnishastra.org/

अब शंकाकार कह रहा है कि, हम तो कार्यत्व हेतु देकर एक सामान्यरूपसे किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया है यह सिद्ध कर रहे हैं। हम यह नहीं सिद्ध कर रहे हैं कि अनीश्वर असर्वज्ञ ज्ञान वालोंके द्वारा बनाया गया है। यदि हेतु सामान्य देकर विशेष विरुद्ध साध्यको सिद्ध करनेका हमें दोष दोगे तो फिर कोई भी अनुमान नहीं बन सकता है। जब अग्नि सिद्ध करनेके लिये कोई धुवेंको हेतु देगा तो वहां हम यह कह बैठेंगे कि रसोईघरमें जिस तृणकी अग्नि जल रही है उसी तृणका धुवां है अन्य का नहीं। वहाँ भी विशेष विरुद्धताका दोष आयगा। शंकाकार कह रहा है कि कार्यत्व हेतुसे कुम्हारको असर्वज्ञ देखकर यदि असर्वज्ञके द्वारा सब किया जाता है ऐसा सिद्ध करोगे तो अनुमान कोई नहीं बन सकता अनुमानमें जो भी हेतु दिया जायगा तो हेतुका दृष्टान्तमें आये हुये साध्यके साथ व्याप्ति जोड़ दोगे तो पीछे उस साध्यको सिद्ध न कर सकोगे।

कार्यत्व हेतुसे सामान्यतया कारण निमित्तकर्ताकी ही सिद्धि – उक्त शंकाके समाधानमें आचार्य कहते हैं कि यह भी कथन मात्र कथन है, असली रूप नहीं कार्यमात्र हेतुको कारण मात्रका अनुमान करनेपर तो विशेष विरुद्धता नहीं आती क्योंकि कार्यमात्रके साथ कारणमात्रकी व्याप्ति है। पर कार्यत्वहेतुका बुद्धिमान कारण के साथ जो तुमने सम्बन्ध जोड़ा है उसमें व्याप्ति नहीं रही। जो जो कार्य होते हैं वे किसी न किसी कारण पूर्वक होते हैं ऐसा कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यहाँ भी जितने कार्य हो रहे हैं तृण जल रहे हैं घड़ी चल रही है आदिक, वे सब निमित्त कारण पूर्वक होते हैं। तो कार्यमात्र हेतुसे कारणमात्रका अनुमान बनाया उसमें कोई विवाद नहीं है पर, तुम तो प्रभुको कारण बनाना चाहते हो यह बात अयुक्त है क्योंकि कार्यमात्र हेतुका बुद्धिमान कारणके साथ अन्वय व्यतिरेक है। यहां कौनसा कार्य ऐसा है जो किसी भी पर कारणके बिना सम्भव होता हो ? तो कार्य हेतु देकर कारणमात्रको तो सिद्ध कर लोगे पर बुद्धिमान कारणका अनुमान नहीं बन सकता क्योंकि कर्तृत्वके प्रभुकी कारणताके साथ अव्याप्ति है। अगर फिर भी तुम व्याप्ति मानने लगोगे कि उस कार्यत्वहेतुके साथ किसी बुद्धिमान कारणका सम्बन्ध है तो वह बुद्धिमान कारण अनीश्वर असर्वज्ञ सशरीरत्व संहत करके धर्मी बन सकेगा क्योंकि अनीश्वर असर्वज्ञ कुम्हार आदिकके द्वारा ही घट बन सकता है। इसी प्रकार जो जो भी कार्य हैं उनकी यदि चेतन कारणताके साथ व्याप्ति मानोगे भी तो अनीश्वर और असर्वज्ञ चेतनके साथ बन सकेगी, ईश्वर सर्वज्ञके साथ न बन सकेगी।

कारणके अनिर्णयसे कर्तृत्ववादकी उत्पत्ति—भैया ! किसी भी पुरुषको स्वप्नमें भी यह प्रतीति नहीं होती कि पर्वत आदिक कार्यका करने वाला कोई एक ईश्वर है। कोई एक रूढि होगयी और एक आदत बन गयी कि जब हम किसी कार्य कारणका विश्लेषण करनेकी योग्यता नहीं रखते, उसके साधनभूत कार्योंके परिज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की योग्यता नहीं रखते। तो ईश्वर करने वाला है, ऐसा बोलनेकी आदत बन गई है और चूंकि बनती आई बाप दादों से सो इनका भी संस्कार बन गया। यह बात तो उनकी समझमें आई नहीं कि सभी पदार्थ हैं, वे निरन्तर परिणमते हैं, परिणमें बिना उनकी सत्ता नहीं बन सकती है, अन्य निमित्त मात्र हैं, ऐसी बुद्धि तो जगी नहीं, कार्यरना जरूर दिख रहा है कि ये सब कुछ अद्भुत अद्भुत कार्य हो रहे हैं तो उन कार्योंका कारण जब सिद्ध नहीं हो पाता तो कोई ईश्वर कर्ता है इस प्रकारकी मान्यताकी रूढ़ि चल पड़ी है।

आगमसे कर्तृत्ववादका शङ्का-समाधान—अब शङ्काकार यह कह रहा है कि बड़े बड़े आगम वाक्योंको भी देखो—एक ईश्वरको कर्ता मान रहे हैं आगम वाक्य। जैसे आगममें कहा है कि वह ईश्वर विश्वत: चक्षु वाला है विश्वत: मुखवाला है विश्वत: बाहु वाला है तो इस तरह कर्तृत्वकी ही तो सिद्धि होती है। इसके समाधानमें कहा जा रहा है कि यों आगमकी दुहाई देना ठीक नहीं है, क्योंकि जब आगममें प्रमाणता सिद्ध हो तो आगममें लिखी हुई बात सत्य है यह माना जा सकेगा यदि प्रमाण न हो आगम और फिर भी उसे मानलो तो इसमें अव्यवस्था है। हमारी तुम क्यों न मान लो। चाहे जो कुछ बक जायें उसे क्यों न मान लो। अप्रमाणिक वचन मानने योग्य नहीं होते। पहिले यह बतावो कि तुम्हारे आगममें प्रमाणता है कि नहीं? तो पहिले तो आगमको प्रमाण सिद्ध करो। जब आगममें प्रमाणताकी सिद्धि होगी तो महेश्वरकी सिद्धि होगी और आगमकी प्रमाणता जब सिद्ध हो तब महेश्वर की सिद्धि हो। महेश्वरने इस ज्ञानको बनाया है इस कारण आगम प्रमाण है तो आगमकी प्रमाणतासे तुम महेश्वरकी सिद्धि कर रहे हो और महेश्वरकी सिद्धि हो तब उस आगममें प्रमाणता आ सकती हो। यदि यह कहो कि उस आगमको अन्य ईश्वर बनाया और इस प्रकृत ईश्वरकी सिद्धि हम आगमसे कर रहे तो ऐसा कहनेमें अनवस्था दोष है। यदि कहो कि उस ही ईश्वरने आगम बनाया है और उसकी ही सिद्धि हो रही है तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष होगा।

स्याद्वादमें आगम प्रामाण्य और सर्वज्ञत्वप्रसिद्धिका अविरोध—शङ्काकार स्याद्वादियोंके प्रति भी यह कह सकते हैं कि अरहंतको सर्वज्ञ मानते हो तो आगमकी दोहाई देकर ही तो मानते हो। आगममें लिखा है केवल ज्ञानका यह विषय है सर्वज्ञ है और सर्वज्ञके द्वारा प्रणीत आगम है इसलिए तुम आगमको यों प्रमाण मानते हो, बात तो पूरीकी पूरी इतरेतराश्रय व अनवस्था दोषकी बन ही जाती है। यहां भी यह शङ्का की जा सकती है। जब आगममें प्रमाणता सिद्ध हो तब अरहंत सर्वज्ञकी सिद्धि हो और जब अरहंत सर्वज्ञकी सिद्धि हो तो महेश्वरकी सिद्धि हो। लेकिन यह दोष यों नहीं कि यह आगम नित्य नहीं है। स्याद्वादियोंका आगम किसी के द्वारा रचा न गया हो सो तो नहीं है। शङ्काकार वेदको अपौरुषेय मानते हैं पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह आगम पूर्व तीर्थंङ्करोंसे प्रणीत हुआ है उससे पहिले भी आगम था जिसके आधार से तीर्थंङ्करोंने कल्याण किया है, अङ्ग पूर्वोंका ज्ञान किया है। उसके प्रणेता और तीर्थंङ्कर थे, तो अनादि परम्परासे तीर्थंङ्कर हैं और अनादि परम्परासे आगम चले आये हैं, ये अपौरुषेय नहीं हैं इसलिये दोष नहीं है। और जब आगम मिला उसका आश्रय करके अनेक भव्योंने सर्वज्ञत्व प्राप्त किया। पर खुद ही एक ईश्वर है और उस हीके द्वारा सब कुछ बनाया गया हो और सब कुछमें वह आगम भी शामिल है। उसने यदि समग्र पदार्थों की रचना की है तो आगमकी भी रचना की है और उस ही आगमसे ईश्वरकी सिद्धि कर रहे तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है।

ईश्वर और अर्थपरिणमनके प्रसङ्गकी विविक्तता—स्पष्ट बात तो इतनी है कि ईश्वरका जो प्रसङ्ग है वह इतना है कि प्रभु अनन्त ज्ञान वाला है और अनन्त आनन्दमय है, अपने स्वरूपका शुद्ध भोक्ता है और विश्वका जो प्रसङ्ग है इन समस्त पदार्थोंका जो प्रकरण है वह इतनेमें आया है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील हैं, वे अपने अपने उपादान रखते हैं, उनमें उनकी कुछ समयकी अपनी योग्यता होती है। उस योग्यताको विकसित करनेमें ये पदार्थ अन्यको निमित्तमात्र पाकर अपनी योग्यताके द्वारा अपना परिणमन विकसित कर लेते हैं। यहां जो प्रकाश आ रहा है जिसे सूर्यका प्रकाश कहते हैं वस्तुतः सूर्यका प्रकाश नहीं है किन्तु जो पदार्थ प्रकाशित है उन पदार्थोंका वह प्रकाश है। और तभी यह नियम बनाया जा सकेगा कि देखो सूर्य तो सबके लिये एक समान है पर कोई दर्पण बहुत अधिक चमकदार हो जाता, कोई काष्ठ थोड़ा ही चमकदार होता, कोई अधिक। यदि सूर्यका ही एकसा प्रकाश है तो सभी पदार्थ एकसे प्रकाशित होने चाहियें। पदार्थोंकी परिणमनमें तो उपादान निमित्तका निर्णय है और ईश्वरके प्रसङ्गमें विशुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूपका निर्णय है: जुदी-जुदी इन दो बातोंका जोड़ करना और विश्वका कर्ता किसी एकको कल्पनामें लाना यह उक्ति में उतरने वाली बात नहीं है।

कर्तृत्ववादके वचनका उपहार—अब ईश्वर-कर्तृत्वको सिद्ध करनेमें आधुनिक महर्षियोंके प्रमाण देकर शङ्काकार कह रहा है कि महर्षियोंने भी यह कहा है कि इस लोकमें केवल दो ही तरहके जीव हैं—एक विनाशीक और एक अविनाशी। तो सारा संसार जितना जीवलोक है स्थावरसे लेकर मनुष्य पर्यन्त ये सब विनाशीक जीव हैं और केवल एक ही परम पुरुष जो तीन लोकमें व्याप्त करके फैला हुआ है और इस जगतको रचता है वह है एक अविनाशी आत्मा। इतनी बात सुनते हुए कोई शङ्काकारके विरोधी ऐसा कह रहे हैं कि ये तो स्वरूप प्रतिपादक वचन हैं। शङ्काकार विरोधीका भाव यह है कि शङ्काकारने माना है अपौरुषेय वाक्योंको प्रमाण और वे वाक्य हैं केवल प्रेरक वाक्य! स्वरूप अर्थप्रतिपादकताके नातेसे उन पुरातन वाक्यों को प्रमाण नहीं माना गया किन्तु वे स्वयं प्रमाण हैं। अतएव जो लिखा है वह मानो,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूप है और करना योग्य है तो करनेका प्रतिपादन करते हैं इसीलिये उनकी प्रमाणता है ऐसा भाव रखकर शङ्काकार विरोधी कह रहा है कि ये स्वरूपके प्रतिपादक हैं। जीवका क्या स्वरूप है, परमात्माका क्या स्वरूप है? इसे बता रहे हैं ये संतोंके वचन। तो स्वरूपप्रतिपादक वचनमें प्रमाणता नहीं मानी शङ्काकार ने किन्तु जो विधिके अङ्ग —ऐसा करना चाहिये, यज्ञ करना चाहिये, होमना चाहिये। यों कर्तव्यका विधान जिसमें हो वह प्रमाण है। शङ्काकार कहता है कि यह बात नहीं है। प्रमाण वह हुआ करता है जो प्रमाणका जनक हो! जिस प्रकारका पदार्थ है उस प्रकारके अनुभवको जो उत्पन्न करे उसे प्रमाण कहते हैं। तो जिस भी ज्ञानमें प्रमाणता पाई जाय अर्थात् अर्थके अनुकूल अनुभूति पाई जाय वह प्रमाण है। केवल प्रवृत्तिका जो जनक है वही प्रमाण हो, ऐसा नहीं है। वह भी प्रमाण है और जो प्रमाणका जनक हो वह भी प्रमाण है। सो प्रमाणका जनकपना उन वचनोंमें है ही। तथा जहां प्रवृत्ति–निवृत्तिकी बात कही गई है उसमें भी तो यह सुखका साधन है, यह दुःखका साधन है, ऐसा निश्चय होनेपर ही तो प्रमाणपना आता है। फिर दुबारा यह शङ्काकार विरोधी कह रहा है तब तो यही हुआ ना कि जो विधिका अङ्ग है, जो पुरातन उपदेशीय वचन हैं वे ही प्रमाण हुए। स्वरूप अर्थका ही जो प्रतिपादक है सो प्रमाण नहीं! उत्तरमें शङ्काकार कहता है कि इस प्रकार ये भी तो विधिके अङ्ग हो गये। जितने भी स्वरूप अर्थके प्रतिपादक वचन हैं वे यथार्थ अर्थको बता देनेके कारण विधिके लिये ही प्रेरणा करते हैं। तो यहां परमात्माका ध्यान करो, यह नहीं कहा है फिर भी इसका भाव यही रहा है और जो सीधा विधिको बताते, जो सीधा कर्तव्य दिखाते हैं तो वे भी स्वरूप अर्थके प्रतिपादक होकर ही विधि बताते हैं। जैसे कहीं वचन आये कि जो स्वर्गकी इच्छा करता है वह यज्ञ करे, तो यद्यपि विधिरूप कहा है किन्तु स्वरूप अर्थ भी तो पड़ा हुआ है कि ऐसा कार्य करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है आदिक। तो स्वरूप अर्थका प्रतिपादक होनेसे ही विधिका अङ्ग बनता है। जैसे स्तुति की किसी ने तो स्तुतिसे जो कुछ प्रवृत्ति बनती तो उस स्वरूपका अर्थ जब समझा तब प्रवृत्ति बनी और निन्दा सुनकर कोई निवृत्ति होती है या निन्दासे कोई हटता है तो स्वरूप अर्थका प्रतिपादक है वह वचन ऐसा जानकर ही तो हटता है। यदि स्वरूप अर्थके ज्ञानके बिना हमारी प्रवृत्ति निवृत्ति होने लगेगी। कह तो रहे हों किसी कार्यमें लगनेकी बात और चूंकि वचन स्वरूप अर्थके प्रतिपादक हैं नहीं तो उस ही से निवृत्ति कह लो। कह तो रहे हों पापसे हटनेकी बात लेकिन स्वरूप अर्थका प्रतिपादक मान नहीं तो पापोंमें लग बैठे। इससे जो विधि वाक्य हैं प्रवृत्तिको कहने वाले विधि वचन हैं वे अपने अर्थका प्रतिपादन करनेके माध्यमसे ही जीवको कामोंमें प्रेरणा देने वाले होते हैं। इसी तरह जो केवल शब्दार्थको ही बतावें वचन, उनमें भी विधि-अंगता होती है अर्थात् स्वरूपका ही केवल कोई वचन कहो—और उसमें करनेकी बात कुछ न कही जाय तो भी उसमें करनेकी बात अन्तर्निहित

http://sahjanandvarnishastra.org/

होती है। जैसे कोई महर्षियोंके वचन हों कि जल पवित्र होता है और अमेध्य अपवित्र होता है। तो इसको सुनकर कोई पवित्रसे हटने लगे तो इसमें ऐसी एक विडम्बना बन जायगी। इसलिये चाहे कोई स्वरूपको बताने वाला वचन हो अथवा कर्तव्यमें लगाने वाला वचन हो वह सब प्रमाण हैं।

युक्तियोंका निर्विवाद—शंकाकारकी उक्त शंकाका समाधान तो केवल इतने ही शब्दोंसे हो गया था कि आगममें प्रमाणता किस तरह आती है? यह पूछा गया। क्या ईश्वर प्रणीत होनेसे आगम प्रमाण है या आगममें यह बात लिखी हुई है ईश्वरके सम्बन्धमें कि वह कर्ता है आदिक सो आगममें लिखा होनेसे वह प्रमाण है? दोनों बातें एक परस्पर आश्रित हो गई। जब पहिले यह सिद्ध करलें कि ईश्वरके द्वारा प्रणीत है तब तो आगमकी दुहाई देकर ईश्वरके स्वरूप अथवा कर्तृत्वकी बात कही जा सकती है। और, जब यह सिद्ध हो ले कि महेश्वरने यह आगम बनाया है तो उनमें प्रमाणता आये। अतएव सब बातें युक्तियोंके सहारे रह गई। युक्तियोंका स्थान आगमसे भी ऊँचा है एक निर्णय करनेके प्रसंगमें। आगमको तो वही मान सकता है जो श्रद्धालु हो किन्तु जो उस मंतव्यको नहीं मानता, कोई अन्य विरुद्ध धर्मका मानने वाला हो उसे आगमकी दुहाई देकर नहीं मनाया जा सकता है। आप युक्तियोंसे बताओ और युक्तियाँ हैं अनुमानरूप, युक्तियोंसे ईश्वर कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता है सो अनुमानसे भी नहीं सिद्ध हुआ।

अविनाशी कारण परमात्म तत्त्वका वर्णन—एक ही आत्मामें अथवा समस्त आत्मावोंमें जो एक ज्ञान स्वरूप है उस ज्ञानस्वरूपको यदि लक्ष्यमें लेकर कहा जाय कि वह एक है और तीन लोकको व्याप करके बना हुआ है अविनाशी है तो उसका अर्थ यह होता है कि आत्माका जो स्वरूप है वह है अविनाशी और असीम है। इतनी भी सीमा लेना ठीक नहीं कि वह तीनों लोकमें फैल करके व्याप रहा है। अरे वह तो इतना व्यापक है कि सीमाका नाम नहीं लिया जा सकता है। जब कोई साधक ऐसे आत्मस्वरूपके अनुभवमें हो तो साधकको पूछे अथवा पूछने वाला कौन? और पूछा भी कैसे जा सकता है? वह साधक ही यह अनुभव करता है कि वह परमात्मतत्त्व कारण स्वरूप वही मात्र है, दूसरा कुछ है ही नहीं और उसके उपयोगमें वह ही असीमरूपसे है, उसके अनुभवमें तीन लोककी सीमा नहीं कि यह स्वरूप तीन लोकमें फैल करके है। स्वरूप तो स्वरूप है। उसमें लोक और अलोकका कोई विभाग नहीं। उस स्वरूपके विकासमें जिसे केवल ज्ञान कहते हैं। जैसे केवलज्ञान असीम है, वह लोकमें व्यापकर रहता है इतनी ही सीमा नहीं किन्तु लोकालोकव्यापी केवलज्ञान है। इस प्रकारके कथनमें एक ज्ञानस्वरूपके विनासको बतानेके लिए जो कहा गया है वह भी एक सीमा रखने वाला हो गया। असीम अलोकमें व्यापकर रहता है। असीम अलोकको जानता है ऐसा कहनेमें एक सीमा आ गयी पर वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञायकस्वरूप परमात्मतत्त्व लोकालोक व्यापक है अथवा केवल आत्माके प्रदेशोंमें ही व्यापक है जो साधक पुरुष है उसका आत्मा जितने प्रदेशोंमें फैला हुआ है उतनेमें ही व्यापक है इस किसी भी सीमाको स्वीकार नहीं करता ज्ञायक स्वरूप। वह तो केवल एक अस्तित्वके अनुभव भरका सौम्य रखता है। वह आत्मतत्त्व तो है अविनाशी और उस आत्माके जो विकास हैं जो कि त्रस स्थावरके रूपमें प्रकट होता है अथवा शुद्ध अशुद्ध दशामें प्रकट होते हैं वे सब पर्याय होनेके कारण विनाशीक तत्त्व हैं, यह बात तो मानी जा सकती है किन्तु आत्मावोंमें ही ऐसा भेद डालना कि हमारा आत्मा तो विनाशीक है और आत्मा कोई अविनाशी है यह बात युक्त नहीं होती क्योंकि द्रव्यके नातेसे जो भी द्रव्य है, जो भी तत्व है जो भी वस्तु है, जो भी है वह है होनेके कारण अविनाशी है और चूँकि समस्त है वाले पदार्थोंमें अस्तित्ववान वस्तुवोंमें निरन्तर परिणमन शीलता बसी हुई है परिणमनशीलताके बिना पदार्थका अस्तित्व नहीं रहता अतः स्वभाव दशाको प्राप्त पदार्थ सूक्ष्म दृष्टिसे निरन्तर समान समान पर्यायोंसे उत्पन्न होकर रहा करते हैं। तथा, जो विपय पदार्थ हैं, अशुद्ध पदार्थ हैं वे परिवर्तन वाले पर्यायों रूप परिणमन करके विनाशीक रहा करते हैं, हर कोई एक आत्मा ऐसा हो कि समस्त जगतका अधिष्ठान हो, सबको रचता हो, सर्वव्यापी हो शरीर रहित हो यह बात सम्भव नहीं है।

करुणावश सृष्टि करनेका प्रस्ताव—अब इस प्रसंगमें शंकाकार कह रहा है कि ईश्वरकी सिद्धिके सम्बन्धमें अधिक बात करना एक यह श्रद्धासे दूर रखने वाली बात है। इस सम्बन्धमें ज्यादह तर्क उठाना एक भक्तिके विरुद्ध बात है। चूंकि सभी लोग प्रभुकी भक्तिमें रत रहा करते हैं प्रत्येक धर्मानुयायी प्रभुभक्तिमें किसी न किसी रूपमें रहते हैं। उस प्रभुके स्वरूपके सम्बन्धमें ज्यादह खींचातानीकी बात न छेड़कर एक स्थूल रूपसे निरखना चाहिये प्रभुभजन बिना इस जीवलोकको कुछ भी शरण नहीं है। उसकी महिमा गाते रहना चाहिये। प्रभुने हम लोगोंको दयासे एक मनुष्य भव दिया है और अनेक सुविधायें दी है तो प्रभु जितना जो कुछ करता है वह सब करूणावश करता है। शरीरधारियोंकी उत्पत्ति भगवान करुणावश करता है। इस करुणाकी बात सुनकर यह न सोचना चाहिये कि तब तो उस प्रभुको सब प्राणियोंके सुखके साधन ही जुटाने थे सुख साधनोंमें ही रत प्राणियोंका सृजन करना था। यह शंका करना योग्य नहीं क्योंकि प्रभु जीवके अदृष्टको देखकर उसके ही अनुकूल उनके सुख दुःखका कर्ता होता है। कोई पुरुष यदि पाप करे और प्रभु उस पापका फल न दे तो इसका अर्थ है कि प्रभुने उसपर कृपा नहीं की। क्योंकि वह फिर अपना उद्धार न कर सका। इस कारण जो प्राणी जिस प्रकारका कार्य करता है उस प्राणी के साथ उस ही प्रकारका भाग्य रचता है ईश्वर और फिर उसे उस ही भाग्यके अनुसार उसको सुख अथवा दुखका फल देता है क्योंकि प्राणी जो कुछ कर्तव्य करते हैं और उसके अनुसार जो अदृष्ट बनता है, भाग्य बनाया जाता है वह भाग्य फलके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भोगे बिना नष्ट नहीं हो सकता इस कारणसे यह प्रभु करुणासे ही जीवोंका भाग्य रचता है, जीवोंको भाग्यका फल देता है।

करुणावश विडम्बित सृष्टिकी अयुक्तता - शंकाकारका उक्त कथन युक्तिवादियोंके सभास्थलमें जरा भी टिक सकने वाला नहीं है। जो प्रभु जीवोंका भाग्य भी रचता है, जीवोंके भाग्यका फल भी देता है इतना लोकोत्तर समर्थ होकर क्यों वह सुखको उत्पन्न करने वाला शरीर ही रचे, दुःखका उत्पन्न करने वाला न रचे ऐसा नहीं कर सकता। जो दयावान जीव हैं वे किसी जीवका भला न हो बिगाड़ ही हो ऐसा तो नहीं कर सकते। यह भी बात केवल टालनेकी है कि प्राणी जैसा धर्म अथवा अधर्म करते हैं उसके अनुरूप उनके सहयोगमें ईश्वर सुख दुःख आदिकका करने वाला है क्योंकि फल भोगे बिना उसका क्षय नहीं होता। अदृष्ट बनाना और अदृष्टका फल देना यह भी ईश्वरकी करुणामें सामिल हैं। अरे भला बतलावो कि अदृष्टको बनाना और अदृष्टको मिटाना ईश्वरके आधीन है कि नहीं? अगर कहोगे कि ईश्वरके आधीन है तब वह ईश्वर सबका भला अदृष्ट बनाये और भला फल दिलाये यदि कहो कि वह अदृष्ट ईश्वरके आधीन नहीं है तो मतलब यह निकला कि अदृष्ट कार्य तो है, किन्तु ईश्वरके आधीन नहीं तो इसका अर्थ यह हुआ कि अदृष्ट नामक कार्य ईश्वरके द्वारा किया गया। तो तुम्हारे कार्यत्व हेतुका यह अनेकांतिक दोष हो गया यदि कहो कि अदृष्ट बनानेमें तो ईश्वर समर्थ नहीं है, अदृष्ट बनाना तो प्राणियोंके हाथ बात है तो अदृष्ट विनाशमें भी ईश्वरकी बात मत लावो क्योंकि ये जगतके प्राणी जैसा कर्म करते हैं वैसा उनको अदृष्ट भाग्य पुण्य पाप प्राप्त होता है और वैसा ही वे फल भोग लेते हैं। ईश्वरका न तो अदृष्ट बनानेमें व्यापार रहा न फल देनेमें व्यापार रहा। इससे न प्रभु प्राणियोंके अदृष्ट मिटानेका कर्ता है, अर्थात् न पुण्य पाप करानेका कर्ता है और न पुण्य पापका फल सुख दुःख दिलानेका कर्ता है। वह तो अलग ही रहा। केवल अपने ज्ञानानन्दस्वरूपको अनुभवने वाला हो रहा। उसका कर्तृत्वसे अब सम्बन्ध नहीं रहा।

परके करने मिटानेकी क्रियाकी वैयर्थिकी कल्पना—अब भाग्य निर्माण के सम्बन्धमें दूसरी बात सुनो!—ईश्वर पहिले तो अदृष्ट बनाये, पुण्य पापकी रचना करे तो जिसका विनाश करनेकी नौबत आयी है उसके उत्पन्न करनेका प्रयास ही क्यों इस ईश्वरने किया? कोई भी यह न पसंद करेगा कि बिना प्रयोजन गड्ढा खोदे और फिर उसको भरे। अथवा पहिले अपने शरीरमें कीचड़ लगावे फिर उसे धोवे और फिर उसमें कीचड़ लगावे। अन्यथा एक ऐसी हंसीकी बात होगी कि एक अपवित्र गंदी चीजका पिण्ड है उसे धोवे और फेंके। उसका धोना ही व्यर्थ है फिर उसका फेंकना क्या? इसी प्रकार जीवके पुण्य पापको पहिले ईश्वर बनाये और फिर उनका नाश करे इससे तो भला यह है कि करने बनानेके पचड़ेमें ही न रहे। अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूपकी भक्तिमें रहे। कोई कार्य करना यह तो अपने स्वरूपकी अनुभूतिके विरुद्ध बात है। अपने स्वरूपकी भक्तिमें तो किसी भी पर पदार्थके करने करानेका विकल्प भी न होना चाहिये, करनेकी बात तो दूर रही। अन्तस्तत्त्वके साधकने भी यह अनुभव किया कि किसी भी परद्रव्यसे स्नेह रखना यह तो अपने आत्मकल्याणके अवसरको व्यर्थमें खोनेकी बात है। वह साधक पुरुष अपने स्वरूपसे दूर रहनेपर खेद मानता है और वह किसी भी समय विकल्पोंको करना नहीं चाहता, फिर जो साधक उन किया करते हैं उसके यह कैसे माना जा सकता कि जगतके जीवोंका प्रत्येक पदार्थका वह रचने वाला है, ऐसा किसी भी ज्ञान पिण्डको स्वरूप नहीं माना जा सकता है। ईश्वर वस्तुत: किन तत्त्वोंसे रचा हुआ है, ईश्वरका स्वरूप परमार्थसे है क्या? होगा ना कोई ज्ञान ज्योति। ज्ञान मात्र कोई ईश्वर है। यहाँ भी देखो— हम आप एक ज्ञानमात्र स्वरूप रखते हैं। ईश्वर क्या ज्ञानमात्र स्वरूप वाला पदार्थ परमात्मा है, उसमें कौनसी ऐसी गुंजायश है जिससे वह चेतन अचेतन पदार्थोंका रचने वाला माना जाय। ज्ञानमात्र है वह और वह क्रिया भी कर सकेगा तो एक जानन की। और, जो कुछ वह भोग सकेगा एक जाननके भावको ही भोग सकेगा। तो जो जाननेके सिवाय कुछ कर नहीं सकता, जाननके सिवाय कुछ भोग नहीं सकता ऐसा पदार्थ इस मूर्त अमूर्त पदार्थको रच दे ऐसी कहां गुंजाइश है? सच तो यह है कि प्रथम तो ईश्वरका स्वरूप ही ग्रहण करिए। ईश्वरको जगतका कर्ता समझना और अपनी कल्पनावोंके अनुसार जगतके फन्देमें डालना यह तो कोई भली बात नहीं। कोई एक व्यक्ति अपनेको परिवारका पोषण करने वाला माने तो उनके ही विकल्पों में पड़कर अपना जीवन समाप्त कर देता है फिर जो अपने स्वरूपसे दूर इस सकल चराचर जगतका जनक हो वह ईश्वर अपने आपको कितने फंदेमें डाल देने वाला होगा?

प्रभुकी ज्ञातृत्वस्वरूपसे उपासना न करके कर्तृत्वरूपमें उपासनासे सिद्धिका अभाव भैया! ईश्वरका स्वरूप तो उपासनीय है, वह मुझे बनाता है इस डरसे कोई ईश्वरकी उपासना करे तो उसने ईश्वरके सही स्वरूपको नहीं पहचाना, जैसे कोई पुरुष अपने स्वार्थके कारण कि कहीं मुझे हानि न पहुँचादे, यों सोचकर किसी धनिक की सेवा करे तो जैसे उसकी सेवा एक भक्ति नहीं कही जा सकती इसी प्रकार ईश्वर मुझे कहीं अशुभ योनियोंमें न उत्पन्न करदे अथवा अनिष्ट साधन न जुटादे, इस कारण मैं ईश्वर की भक्ति करूँ ऐसा भाव रखकर प्रभुभक्ति करनेमें न तो उस भक्तिसे धर्म कमा पाया, न पुण्यकी प्राप्ति की, न मोक्षका मार्ग निरख पाया, और अपने को व्याकुल ही बनाया। तो जैसे संसारके प्राणी अपने सुखकी अभिलाषा से यत्र तत्र रागी द्वेषी जीवोंका शरण ग्रहण करते हैं और अपना जीवन नष्ट कर देते हैं इसी प्रकार यहां भी लोगोंने एक सराग व्यस्त ईश्वरकी शरण मानकर कल्पना करके अपना जीवन ही खोया, यों समझना चाहिये। हम तो एक विशुद्ध ज्ञानपुञ्ज

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। केवल ज्ञान ज्ञानस्वरूपमात्र में ही उपासना बने ईश्वरकी तो उससे पुण्य भी होता है, मुक्तिका मार्ग भी मिलता है, स्वानुभूतिकी दशा बनती है और कल्याण भी होता है पर कर्तारूप समझनेपर इस जीवके हाथ कुछ भी नहीं आता। इससे वह हमें बनाता है हमारे पाप पुण्य रखता है, उनका फल देता है इस बुद्धिसे कुछ भी सिद्धि नहीं है।

लोककी पदार्थसमवायता – यह समस्त जगत ६ प्रकारके द्रव्योंका समूह है, जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें जीव जातिमें अनन्त जीव हैं, जिनका कोई अन्त हो न आ सकेगा। इन अक्षयानन्त जीवोंमेंसे अनन्ते जीव मुक्त हो गये हैं फिर भी संसारी अक्षयानन्त हैं और पुद्गल, द्रव्य उन जीव द्रव्योंसे भी अनन्त गुणे हैं। एक जीवपदार्थके साथ जैसे यहाँ संसारमें किसी को भी ले लो एक खुदके जीवको ले लो। हमारे साथ अनन्त तो शरीरके परमाणु बँधे हैं। जो शरीर यह दिख रहा है यह एक पदार्थ नहीं है किन्तु अनन्त परमाणुवोंका पिण्ड है। तो मेरे एक जीवके साथ अनन्त तो शरीर वर्गणाके परमाणु लगे हुए हैं और जितने परमाणु शरीरके हैं उससे अनन्तगुणे परमाणु तैजस शरीरके हैं। और जितने परमाणु तैजस शरीरमें हैं उससे अनन्तगुणे परमाणु कार्माण शरीरमें हैं। जो कर्म मेरे साथ बँधे हुए हैं वे कर्म परमाणु कितने हैं? मैं तो एक, तो मेरेसे अनन्त हैं शरीरपरमाणु शरीर से अनन्तगुणे तैजस परमाणु और तैजससे अनन्तगुणे कर्मपरमाणु बँधे हैं तो एक जीव के साथ जब इतने परमाणु बँधे हैं और संसारमें हैं अक्षयानन्त जीव, तब समझो परमाणु जगतमें कितने हैं? धर्म द्रव्य एक है जो समस्त लोकमें व्यापकर रहता है, अधर्म द्रव्य भी एक है, आकाश द्रव्य भी एक है, आकाशमें जो दो भेद किये जाते हैं लोकाकाश और अलोकाकाश ये उपचारसे हैं अपेक्षासे हैं। एक अखण्ड आकाशमें जितने आकाशमें छहों द्रव्य हैं उतनेका तो नाम रखा लोकाकाश। तो आकाशातिरिक्त अन्य द्रव्योंके सम्बन्धसे लोकाकाश पड़ा कहीं आकाशमें अनेक भेद नहीं हैं कि आकाश का इतना हिस्सा स्वरूपतः लोकाकाश कहलायेगा और बाकीका हिस्सा अलोकाकाश होगा पर जितने हिस्सेमें छहों द्रव्य हैं वह है लोकाकाश और उससे परे है अलोकाकाश। कालद्रव्य असंख्याते हैं।

कालद्रव्यका विवरण व परिणमनहेतुत्व—लोकाकाशमें असंख्याते प्रदेश हैं। एक प्रदेश उतने हिस्सेका नाम है जितनेमें एक परमाणु रह सकता है। एक सूईसे कहीं जरासा गड्ढा कर दिया जाय तो वह कितनीसी जगह है? उसमें असंख्यात प्रदेश हैं। उनमेंसे एक प्रदेशकी बात लो। तो लोकाकाशके ऐसे ऐसे असंख्यात प्रदेश हैं। उनमें एक एक प्रदेशपर एक एक कालद्रव्य ठहरा हुआ है। तो कालद्रव्य भी असंख्याते हैं। जिस कालद्रव्यपर जो पदार्थ उपस्थित है, वह कालद्रव्य उन पदार्थोंके परिणमका निमित्त है। उस कालद्रव्यके सम्बन्धमें पदार्थके परिणमनके निमित्तत्वमें केवल यह एक ही शङ्का हो सकती है कि अलोकाकाशमें तो कालद्रव्य है नहीं, फिर अलोकाकाश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का परिणमन कैसे होगा ? कालद्रव्य तो लोकाकाशके ही अन्दर है। अलोकाकाशमें तो है नही, तो अलोकाकाशका परिणमन कैसे होगा ? इस शंकाका समाधान यह है कि चूंकि आकाश एक ही द्रव्य है और एक द्रव्यके परिणमनके लिये कोई कहीं निमित्त चाहिये। सो कालद्रव्य यहाँ है ही। यहां के कालद्रव्यका निमित्त पाकर इसके सम्बन्ध का निमित्त पाकर आकाश परिणमन रहा है तो ऐसा तो हो नहीं सकता कि लोकाकाशमें रहने वाला आकाश तो परिणमे और अलोकाकाशका आकाश न परिणमे आकाश न परिणमे आकाश अखण्ड द्रव्य है सो यह काल द्रव्य समय–समयकी पर्यायों रूपसे निरन्तर परिणमता रहता है और कालद्रव्यका समय परिणमन समस्त पदार्थों के परिणमनका निमित्त कारण है।

द्रव्यमें अन्य द्रव्यकी अकारणता—कोई भी द्रव्य दूसरे द्रव्यके परिणमन का निमित्त कारण नही होता, किन्तु द्रव्यकी पर्यायें अन्य द्रव्यकी पर्यायोंके होनेमें निमित्त कारण होती हैं। द्रव्य द्रव्यके परिणमनका कारण नहीं हुआ करता। द्रव्यका मतलब शुद्ध द्रव्य अर्थात् द्रव्यका जो परमार्थ शुद्ध निश्चयनयसे स्वरूप कहा गया है उस स्वरूपको दृष्टिमें लेकर विचारें तो कोई भी द्रव्य किसी भी दूसरे द्रव्यके परिणमन का कारण नहीं है। निमित्त कारण भी नहीं है किन्तु एक द्रव्यकी पर्याय अन्य द्रव्यों की पर्यायोंके परिणमनका निमित्त कारण होता है। उदाहरणमें जैसे आत्मद्रव्यका स्वरूप है ज्ञायक स्वभाव। सहज ज्ञानादिक चतुष्टयमय पदार्थ, चित्त स्वभाव। क्या चैतन्यस्वभाव किसी भी अन्य द्रव्यके परिणमनमें निमित्त कारण है ? नहीं है। इस चेतनके जो ये विभाव परिणमन हो रहे हैं, रागद्वेषादिक भाव हो रहे हैं ये विभाव कर्मोंके कर्मत्व परिणमनमें निमित्त होते हैं। चैतन्यस्वभाव कर्मत्वरूप परिणमनमें निमित्त नहीं होता।

लोककी प्राकृतिक व्यवस्था—भैया ! समग्र लोककी व्यवस्था तो यों है कि जो उपादान जिस योग्यताको लिये हुए है वह उस अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर विभावरूप परिणम जाता है और ऐसे परिणमनकी शक्ति, परिणमनका स्वभाव समग्र द्रव्योंमें है। इस कारण कोई अव्यवस्था नहीं है। यदि इस समग्र लोक का कर्ता एक ईश्वरको मान लिया जाय तो पदार्थ तो हैं अनन्तानन्त। एक छोटेसे छोटे कङ्कड़में जिससे बारीक और कुछ दृष्ट नहीं हो सकता उसमें भी अनन्त परमाणु हैं। और प्रत्येक परमाणुमें उनका अपना अपना परिणमन है। इन अनन्त पदार्थोंके परिणमनकी व्यवस्था कोई एक करे तो व्यवस्थापकता नहीं बनती। और, क्योंजी, कदाचित् इन अनन्त पदार्थोंमेंसे किसी पदार्थकी तरफ ईश्वरका खयाल न रहे तो क्या परिणमे बिना रह जायगा ? तो लोकव्यवस्था तो यों है, पर वस्तुस्वरूपसे अपरिचितजन इन पदार्थोंके परिणमनका कारण न जानकर सीधा यों कह देते हैं कि यह सब ईश्वरकी लीला है और सब ईश्वरकृत है। प्रभुकी लीला प्रभुमें ही रह सकती है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्य पदार्थोंमें नहीं पहुँच सकती। उनकी लीला अनन्त ज्ञान द्वारा समग्र ज्ञेयोंको जानना है, उनकी लीला अपने सहज अनन्त परिणमनसे परिणमते रहना है, समस्त दुःखोंसे निवृत्त होकर विशुद्ध आनन्दमें तृप्त बने रहना है यही उनका करना व भोगना है। प्रभुको यदि इस स्वरूपमें निरखा जाय तो यही है प्रभुकी वास्तविक भक्ति। और इस स्वरूपको न निरखकर यह सबको सुख दुःख देता है, जन्म देता है, जीवोंका पालन करता है, पुण्य पाप कराता है फिर उनका फल देता है. इस रूपमें प्रभुको मानकर यदि उनकी उपासना की जाय तो इसमें निर्विकल्प समाधिका अवसर तो असम्भव ही है।

समर्थ करुणावानके दुःखसाधनोत्पादकत्वकी अयुक्तता—शंकाकार यह कहता है कि प्रभुमें सर्व सामर्थ्य है और अपनी सामर्थ्यके कारण करुणावश जगतके जीवोंकी रचना करता है और उन जीवोंके अदृष्टके अनुसार भाग्यके अनुसार उनको सुख दुःख रूप फल देता है। तो कर्मोंको भाग्यको यह ईश्वर रचता है और फिर भाग्यको यह ईश्वर नष्ट कर देता है। कर्मफल मिलता है इसका अर्थ है कि भाग्य नष्ट हो रहा है। क्योंकि भाग्यके निकले बिना जीवको फल नहीं प्राप्त हो सकता जो क्षण भाग्यके निकलनेका है वही क्षण उस भाग्यके फल पानेका है। इसीको उदय कहते हैं और उदयका भी नाम निर्जरा है। निर्जरा दो तरह की होती है। एक तो कर्म फल न दे सकें उससे पहिले ही उन कर्मोंको झड़ा देना यह है एक निर्जरा। यह तो कामकी निर्जरा है, मोक्षमार्गमे ले जाने वाली है। और दूसरी निर्जरा हैं कर्मोंके झड़नेका नाम। तो सब जीवोंके कर्म झड़ा करते हैं, टोटा यह है कि जितने कर्म झड़ते हैं उतने नये और बाँध लिये जाते हैं। जहाँ सम्यग्दृष्टि पुरुषोंको बताया है कि उनका फलोपयोग द्रव्य निर्जराके लिये है। तो उस सम्बन्धमें यह शंकाकी जा सकती है कि सम्यग्दृष्टि भी हो लेकिन जब वह विषयोंमें लग रहा है फलको भोग रहा है तो द्रव्य निर्जरा कहाँ? वहां द्रव्य निर्जराका मुख्य अर्थ यह है कि वह सम्यग्दृष्टि पुरुष विषयों में प्रवृत्ति तो कर रहा है, पर वस्तुस्वरूपका सम्यग्ज्ञान होनेसे सम्वेग और ज्ञानकी शक्ति होनेसे वह नवीन कर्मोंको नहीं बाँध रहा है। तब जो कर्म फलमें आये हैं वे झड़ ही तो रहे हैं। मिथ्यादृष्टिके भी विपाकसमय झड़ते हैं। उदयके मायने झड़ना, सम्यग्दृष्टिके भी झड़ रहे हैं, पर सम्यग्दृष्टिमें खासियत यह है कि वह वैसे नवीन कर्म नहीं बाँध पाता इसलिये झड़ने झडनेका काम दिखता है बांधनेका नहीं। इसीके मायने है झड़ना, निर्जरा होना। तो शंकाकारने यहां यह है कि कर्मोंका फल देना यह जीवके लाभके लिए है। तो ईश्वर करुणावश ही जीवोंको सुख दुख देता है। दुख देनेमें भी वह ईश्वर करुणा कर रहा है। अगर फल न देगा तो कर्म हमारे बँधे रहेंगे। हमें कर्मोंसे छुटा दे इसलिये दुःख देता है पर ईश्वर तो सर्वप्रथम बताया गया है। तो वह अपनी सामर्थ्यका उपयोग यों क्यों नहीं करता कि किसी भी जीवसे पाप न बँधाये और न उसका फल दिलाये। सबको सुखमें ही रखे, पर ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देख नहीं जाता। इससे यह सिद्ध है कि ये सब जीव चूंकि परिणमनशील हैं। और ये कर्म परिणमनशील है, सो जो प्राणी जैसा विभाव करता है उसके अनुकूल उस प्रकारसे कर्म बाँधता है और उसके उदयकालसे उस प्रकारका फल मिलता है।

कर्म और कर्मफलानुभवमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध – वह कर्म फल देता है यह भी कहना उपचार कथन है। कर्ममें चेतना नहीं है। कर्म कुछ सोचते नहीं हैं कर्म जानते नहीं हैं कि मैं इसे फल दूं, किन्तु सहज ही ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि बंधे हुये कर्म जब उदयकालमें आते हैं तब वे स्थान छोड़ते हैं, कर्मरूप अवस्थाको छोड़कर अकर्मरूप हो रहे हैं। उस समय ये जीव रागद्वेष भावोंसे परिणम जाते हैं। निमित्त नैमित्तिकको अनेक बातें स्थूल रूपसे खूब समझमें आती हैं लेकिन सूक्ष्मदृष्टिसे उनकी शक्तियों आदिकका स्पष्टीकरण करनेको कहा जाय तो वहाँ भी अवक्तव्यता है। क्या हम देखते नहीं हैं कि अग्निके संयोगको पाकर बर्तनमें रखा हुआ जल गर्म हो जाता है। तो पानी जो गर्म हुआ है वह है नैमित्तक अवस्था और अग्निके सन्निधानका निमित्त पाकर गर्म हुआ। हम यह पूछें कि हमें यह स्पष्ट दिखा दो कि इस अग्निने पानी को गर्म कैसे कर दिया ? तो क्या वहाँ दिखाया जा सकता है ? स्थूलरूपसे सभी लोग देखते हैं, पानी गर्म करते हैं। तो पानीसे भरा हुआ बर्तन अग्निपर रख दिया, पानी गर्म हो गया। निमित्त नैमित्तिक बात किस तरहसे होती है यह किस तरह बताया जा सकता है ? पर युक्तियोंसे जाना जा सकता है। जीव एक चैतन्यस्वरूप है, उसमें विषमताकी कहीं गुंजाईस नहीं है। स्वरूपको देखा जाय तो जिस तत्त्वसे यह बनता है वह तो सबमें एक स्वरूप है। उसकी ओरसे उसमें कहीं गुंजाइश नहीं है कि वह रागादिक नानारूपोंमें पड़ता रहे। तो यह बात स्वरूपमें नहीं स्वभावमें नहीं ऐसी विविधता यदि जीवमें नजर आ रही है तो यह मानना ही पड़ेगा कि कोई दूसरी उपाधिका सम्बन्ध जीवके साथ है तब यह जीव इन नाना रूपोंमें पड़ रहा है। अन्यथा यदि परका सम्बन्ध न हो, कोई उपाधि जीवके साथ न हो तो फिर आप ही बतावो कि वह जीव नानारूप कैसे परिणमन गया ? और, यदि उपाधिके बिना जीव नानारूप परिणमन जाय तब तो समस्त नाना परिणमनों रूप एक साथ बन जाना चाहिये अथवा शुद्ध होकर भी फिर इसे अशुद्ध हो जाना चाहिए। फिर मुक्तिका महत्त्व क्या रहा ? मुक्तिका फिर कोई प्रयास ही क्यों करे ? और, वह पुरुषार्थहीन हो गया, इसलिए जीवकी जो नाना अवस्थायें दिखती हैं कोई श्रीमान है, कोई दरिद्री है, कोई मूर्ख है कोई पंडित है, ये भेद ही इस बातको सिद्ध करते हैं कि इस जीवके साथ कोई उपाधि लगी है जिससे यथायोग्य हानि सदभाव आदिकसे जीवमें नाना योग्यतामें अवस्थायें बन गई हैं। तो ऐसे ये कर्म स्वयं ही कर्मरूपसे परिणम जाते हैं और इसी प्रकार कर्मके उदयकालमें जीव स्वयं ही रागादिकरूप परिणम जाता है इसका करने वाला कोई अलग एक ईश्वर हो और वह इन सब की व्यवस्था बनाये तो ऐसी बात न तो भक्त लोगोंके हितमें हकमें है और न ईश्वर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के हितके हकमें है। भक्त भी संसारमें रुलते रहेंगे ऐसे कर्तृत्वकी श्रद्धा रखकर और ईश्वर भी अपनेको फंदेमें डाल लेता है। तो इसमें उस ईश्वरने करुणा क्या की ? कोई प्रभु जगतके जीवोंको रचे और अपनेको एक पचेड़ेमें डालें इसमें न तो प्रभुने अपनेपर दया की और न जीवोंपर।

प्राणियोंका अदृष्ट सापेक्ष व्यापार— यदि शङ्काकार यह कहे कि ईश्वर की जो जीवोंके प्रति प्रवृत्ति है वह उनको अपवर्ग दिलानेके लिए है। इन जीवोंका मोक्ष हो जाय, कर्मोंसे ये छूट जायें इसलिये यह कर्मोंका फल दिलाया करता है। तो समाधान यह है कि उस प्रभुको यदि इतनी बडी करुणा है कि इन जीवोंको अपवर्ग प्राप्त हो अर्थात् जहाँ धर्म, अर्थ, काम ये तीन वर्ग नहीं रहते ऐसी अवस्था प्राप्त हो, मुक्ति प्राप्त हो ऐसी करुणा है तो फिर वह नवीन कर्मोंका संचय हो क्यों कराता है ? चलो पहिले बँधे हुए कर्म हैं उनका फल दे दे, उनसे मुक्त करादे, पर नवीन कर्म क्यों बँधाता है ? इससे करुणावश जीव लोककी सृष्टि करे ईश्वर, यह बात युक्ति-सङ्गत नहीं है। और फिर जब सृष्टिके सम्बन्धमें वितर्क किया गया और वहाँ शङ्का-कारको यह मानना पड़ा कि ईश्वर स्वयं ही जीवोंको अपनी मर्जीसे सुख दुःख दिया करता है। जब अदृष्टका सहयोग लेकर प्रभु सुख दुखके उत्पन्न करने वाले शरीरोंका निर्माण करता है यह माना है तो इससे अच्छा तो यह है, वह मानना ठीक है कि कर्मफलको भोगने वाले पुरुष ही अदृष्टकी अपेक्षा रखकर शरीरको उत्पन्न करते हैं और शरीरको विनष्ट करते हैं। अदृष्टकी अपेक्षा लेकर अर्थात् कर्मोंका सहयोग लेकर ईश्वर जीवको सुख दुख दे, ऐसा माननेपर सीधा यह मानना ठीक है कि उस कर्मके अनुसार यह जीव उस सुख दुखके फलको भोग लेता है। फिर एक अदृष्ट ईश्वरकी कल्पना करनेसे क्या फायदा ? ऐसा ईश्वर कि जो जीव लोकका कार्य करे और अपने आपको स्वरूपसे हटाकर इच्छा करे, प्रयत्नमें चितामें लगा दे ऐसे ईश्वरकी कल्पना करना अयुक्त है क्योंकि यही सब जीवोंमें देखा जा रहा है कि जीव जो जो भी व्यापार करता है, जीवोंको जो जो कुछ भी फलकी प्राप्ति होती है उसमें उनके अदृष्टका व्यापार है अर्थात् कर्मानुसार ये जीव सुख दुख भोगा करते हैं। देखलो जितने जितने भी उपभोग हैं, जो जो भी जीवका कार्य सुख अथवा दुख है वे सब अदृष्टपूर्वक होते हैं।

संसारी जीवलोककी मायारूपता — भैया ! कर्म, शरीर और जीव इन सबका पिण्ड है यह सब जीव लोक, जिनसे हम आप लोग बोलते हैं, व्यवहार करते हैं, जिनके बीच बैठकर हम अपना पोजीशन मानते हैं, सम्मान अपमान समझते हैं, अनेक चिन्ताओंमें डालते हैं, ये सब मायारूप है, इंद्रजाल हैं, स्वप्नमें देखे हुए पदार्थोंकी तरह असत्य हैं ये सब जीवलोक हैं जिनको यह मनुष्य ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी इनमें पोजीशन बनानेकी धुन बनाकर इस दुर्लभ नर जीवनको खो रहे हैं। जगतमें जगतमें अनन्तानन्त जीव हैं उन अनन्तानन्त जीवोंमेंसे ये १००—५० जीव एक इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मायारूप पर्यायमें आये हुए हैं। ये क्या सदा रहने वाले हैं? अथवा ये लोग मुझपर प्रसन्न हो जायें तो ये मेरा उद्धार कर देंगे। प्रथम तो कोई भी जीव किसी दूसरे पर प्रसन्न ही नहीं होता, यह सब एक कहनेभरकी बात है। प्रत्येक जीव अपना अपना कषाय परिणमन लिए हुए है, सो अपनी कषायके अनुसार अपने आपमें अपने विभावों की परिणति करके प्रयत्न चेष्टा करके अपने आपको तृप्त करनेकी कोशिश किया करते हैं। कोई भी जीव किसी दूसरेको सुखी नहीं कर सकता, न उनकी किसी प्रकार मदद कर सकता जीवका उदय ही हो अनुकूल तो दूसरे लोग निमित्त पड़ जाते हैं पर यदि उदय अनुकूल नहीं तो माता पिता पुत्रादिक भी मदद करनेमें निमित्त नहीं हो पाते हैं।

परजीवमें हितरूपताकी अशक्यता—भैया! यहां कोई किसीका हितू नहीं। माता कहाँ उस पुत्रका हित चाहती है? वह तो अपने मोहके वश होकर जिसमें समझा कि मेरी तरक्की है, पुत्र बड़ा होगा, इसके भी बच्चे होंगे तो मेरा वंश चलेगा लोग मेरा नाम लेंगे कि वे उनके लड़के हैं अथवा यह बड़ा होकर मुझे सुख देगा, मेरी वृद्धावस्थामें यह मुझे सहयोग देगा, इन भावोंसे वह केवल पर्यायकी खुशामद करती रहती है जीव आत्माकी कौन सेवा करता है। यदि माताने पुत्रके आत्माका हित चाहा होता तो ऐसा भाव करती कि हे पुत्रका आत्मा तू स्वयं सिद्ध है, शुद्ध बुद्ध है, निरञ्जन है, तेरा ज्ञानस्वरूप है, तू अपने आपपर दृष्टि दे और ऐसी चर्या कर कि अपने आपका ज्ञान उत्पन्न करके अपने आपमें मग्न हो जा। तू विवाह न करना, घरमें मोह न रखना, मुझे माता न समझना, ये सब मायारूप हैं क्या ऐसा भावना वह मां अपने पुत्रके प्रति रखती है? फिर आत्माका हित करने वाली कहाँ, पिता भी हित करने वाला कहाँ उसमें भी यही सब बातें हैं। कोई जीव किसी दूसरे का हित करता है न सुख देता है किन्तु स्वयं ही अपनी कषायके अनुसार अपनेको खुश बनानेका प्रयत्न करता है।

प्रबुद्ध एकत्वस्वरूपके उन्मुख होनेमें ही कल्याणरूपता—जब सभी जीव अपने अपने चतुष्टयमें बर्तते हैं तब फिर इन मायारूप पर्यायोंमें हम अपनी पोजीशन चाहें, जरा जरा सी बातोंमें अपमान महसूस करें, इन लोगोंने मुझे ऐसा समझ रखा है तो समझने दो, इसमें भी अधिक बुरा समझें तो समझने दो उनकी समझ उनमें है, उनके समझनेसे मेरेमें कुछ अहित नहीं होता। मेरा अहित तो तब है जब मैं अपने स्वरूपसे अनभिज्ञ होकर पर्यायको ही स्व मानकर उसके ही रागमें रहूं। लोगोंने मुझे कुछ समझ रखा तो उससे मेरा क्या बिगाड़? इन मायामय जीवोंसे मोह करके यह जीव विकल्प जालोंमें फंस गया है उनसे निवृत्त होकर यह यदि अपने ज्ञानस्वरूपके जाने तो वही अनुभव होगा जिसमें विकल्प जालोंकी गुंजाइश नहीं, किसी भी प्रकारकी तरंग नहीं। केवल एक विशुद्ध ज्ञानानुभवका शुद्ध आनन्द भोगा जा रहा है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह स्थिति प्राप्त होगी। तो इन मायारूपोंमें अपनेको उलझाना और किन्हीं परपदार्थों से मेरा कुछ सुधार बिगाड़ होता है इस अज्ञानमें न उलझना और अपने एकस्वरूपको निरखना यह अन्तस्तत्त्व समग्र उपाधियोंसे निराला है इस भावनामें तो कल्याण नहीं कि यह मुझे सुख दुःख देता है इसलिये इसकी उपासना करें तो हम सुखी रह सकते हैं इस भावनामें कल्याण नहीं है।

कर्तृत्वके यथार्थ निर्णयका महत्व—कर्तापनका निर्णय सामान्यतया ऐसा लगता है कि जैसे और बातोंका निर्णय किया ऐसे ही इसका निर्णय है, लेकिन यह एक सामान्य निर्णय नहीं है। आत्महितके हकमें कर्तृत्वका सही निर्णय कर लेना बहुत महत्वशाली निर्णय है। जैसे कि मजहबोंके बारेमें लोग कह देते हैं कि जाना तो एक ही भगवानके स्थानपर है चाहे इस रास्तेसे जावें चाहे उस रास्तेसे। बहुतसे रास्ते हैं। जितने मजहब उतने ही रास्ते हैं। किसी भी रास्तेसे प्रभुके निकट पहुंच जायेंगे। लेकिन प्रभुके निकट पहुँचनेके लिए रास्ता एक है और वह रास्ता है अपने आत्माका। चूँकि अपने आपमें ही अपना अनुभवन चला करता है तो प्रभुके निकट पहुँचना अथवा प्रभु होना यह सब अपने अनुभवपर निर्भर है, अतएव प्रारम्भ भी अपने ही अनुभवसे शुरू होता है। तब अपने आपके स्वरूपका निर्णय करना और जैसा वास्तविक परकी अपेक्षा रहित अपने ही सत्वके कारण अपने आपका जो स्वरूप मिले उसमें मग्न होना बस यही प्रभुका मार्ग है। यह बात अब जहाँ मिले, जिस मजहबमें मिले, जिस ढङ्गमें मिले वह उपादेय है। इसी प्रकार कोई कह बैठे मजहबों की भांति कि ये तो बातें हैं, निर्णय हैं, लोकका कर्ता ईश्वरको मान लिया तो क्या, न मान लिया तो क्या? ये तो केवल ऊपरी बातें हैं। लेकिन ऊपरी बातें नहीं हैं। कर्तृत्वका सही निर्णय हुये बिना आत्माके विकल्प दूर नहीं हो सकते। विकल्प तो सारे करनेके विकल्पोंके मारा जीवन दूभर हुआ जा रहा है। जब बच्चे थे तब अमुक करना है इस प्रकारका भाव था, बड़े हुये तब करनेका विषय बदल गया, वृद्ध हुये, कुछ कर भी नहीं सकते, लेकिन करनेके विकल्पोंका ताँता जवानोंसे भी अधिक लग उठा है। तो करनेके विकल्पोंसे तो सारी दुनिया परेशान है और उस हाल करनेके निर्णयको हम एक साधारण बात समझें तो हमने अपने हितके लिये फिर कदम ही क्या उठाया?

कर्तृत्वके सम्बन्धमें वस्तुस्थिति—वस्तुस्थिति तो यह है कि जगतमें अनन्त पदार्थ हैं वे सब पदार्थ अपने ही अस्तित्वके कारण निरन्तर परिणमते रहने अधिकार रखते हैं। परिणमे बिना कोई पदार्थ रह ही नहीं सकते, उसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं। तो हैं और परिणमते रहते हैं। जब यह स्वभाव प्रत्येक पदार्थमें पड़ा हुआ है तो वे परिणमते हैं और जैसा निमित्त सन्निधान पाया, जैसी उनकी योग्यता हुई, वैसा परिणमन हो गया। इस जीव लोकका कर्ता, इस समस्त विश्वका कर्ता किसी एक ईश्वरको भी मान लिया जाय तो भी उपादान निमित्तकी बातको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मना नहीं किया जा सकता । जो परिणाम रहे हैं, जो बन रहे हैं वे तो उपादान हैं. निमित्त आपका ईश्वर हुआ । उपादान निमित्त की बात तो वहाँ भी नहीं टाली जा सकती । अब विवाद केवल इसमें है कि इन पदार्थोंके परिणमनका निमित्त कौन हो सकता हैं ? क्या क्या हो सकता है ? यह बात युक्तियोंसे समझ लीजिये । कोई एक चेतन इस समस्त लोकका कर्ता होता तो व्यवस्था न बन सकती थी । करुणावश भी न कर सका यह, क्योंकि उसमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि किसी जीवको दुख देना किसी जीवको सुख देना यह करुणावानका कहाँ तक न्याय है ?

प्रभुमें सेवाभेदानुसार फल देनेकी अयुक्ति   यहां शङ्काकार कह रहा है कि जैसे कोई मालिक सेवाके भावके अनुसार सेवकोंको फल दिया करता है, कोई सेवक विपरीत चलता, काम न करता अथवा वह कर्तव्यनिष्ठ नहीं है उसे वह मालिक फल नहीं देता अथवा कम देता, अथवा कभी दण्ड भी देता, और कोई सेवक कर्तव्य-निष्ठ है, हृदयसे सेवा करता है तो उसे वह फल देता है । तो जैसे इस लोकके मालिक लोग सेवा भेदके अनुसार सेवकोंको फल दिया करते हैं और देते हैं समर्थ है जो समर्थ होगा वही तो सेवकोंको उनकी सेवानुसार फल दे सकता है असमर्थ तो नहीं दे सकता तो ईश्वर भी समर्थ है, वह कर्मोंकी अपेक्षासे जिसका जैसा अदृष्ट है, जिसने जैसा परिणाम किया उसके अनुसार वह फल दिया करता है, दूसरा और कौन फल देगा ? शंकाकारका कथन भी यह केवल एक मनोरथमात्र है । जैसे कोई पुरुष चलते फिरते कोई भी मनसे विचार करे, कुछ भी पुल बाँधे तो वह उसका मनोरथमात्र है, इसी प्रकार यह भी अपना पुल बांधना है । देखिये जैसे यहांके मालिक लोग सेवकोंको फल देते हैं तो वे सेवाके आधीन फल देते हैं ना, उन मालिकोंमें रागद्वेषादिकका सम्बन्ध है तभी यह बात बन सकी कि अमुक सेवकको दण्ड देना है और अमुक सेवक को फल देना है । तथा यहांके मालिकोंमें निर्दयता भी बसी हुई है जिससे वे सेवा भेदका नजर डालते हैं और सेवकोंपर कृपा करते हैं और जो सेवामें कमी रखे उस पर वे कृपा नहीं रखते । तीसरी बात - इन मालिकोंमें सेवाकी आधीनता आ गयी । मालिक लोग ऐसे आधीन हो गये कि सेवकोंके बिना मालिकोंका काम नहीं चलता । तो जैसे मालिकोंमें ये तीन मलीनतायें आ गयी इसी प्रकारसे ईश्वरमें भी ये तीन मलीनतायें आ गयी । क्या कोई ईश्वर दुनियाके लोगोंमें ऐसी छटनी करता है कि मैं इसे दुःख दूं यह ठीक है यह|गैर ठीक है ? इसमें रागका सम्बन्ध आया कि नहीं ? जो भक्त लोग हैं उनके प्रति तो राग जगा और जो विपरीत जन हैं उनके प्रति द्वेष जगा । जिनके प्रति राग जगा उनको फल देनेका भाव जगता और जिनके प्रति द्वेष जगा उनको दण्ड देनेका भाव बनता तो वहाँ रागद्वेष क्षोभ हुआ ना । क्योंकि जो वीतराग हो, जो प्रभु यथार्थ ज्ञानवान हो, जो पुरुष सेवाके आधीन न हो उस पुरुषसे यह बात नहीं बन सकती कि किसीको वह दण्ड दे और किसीको फल दे । इस कारण यह भी युक्त नहीं है कि सेवाभावके भेदानुसार फल दिया करें ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक चेतनसे नियन्त्रित होकर प्राणियोंके कार्य करनेकी असंगतता—अब यहां शंकाकार एक शंका और रख रहा है कि जैसे कोई एक महल बनता है तो उसमें जितने कारीगर लोग लगते हैं उन सबमें एक कारीगर मुख्य होता है और वह कारीगर सूत लगाता है। जो मुख्य हो, प्रसिद्ध हो अथवा कुशल हो वही पुरुष एक योजना बनाता है नाप तौल करना सूत लगाना, उनको संकेत देना अमुक चीज बनाओ, इन सब आदेशोंका अधिकारी जो हो उसे कहते हैं सूत्रधार। तो जैसे एक महल बननेमें अनेक कारीगर काम करते हैं मगर वे सब कारीगर एक सूत्रधारके द्वारा नियमित रहते हैं। जो नियम बनाये, जो संकेत करे उसके अनुसार कारीगर काम करते हैं। इसी प्रकार इस जगतमें यद्यपि कार्य सभी जीव कर रहे हैं जन्मका मरणका, दुःख दुख भोगनेका, शुभ अशुभ भाव करनेका सभी प्रकारका कार्य यद्यपि कर रहें हैं प्राणी, किन्तु वे एक ईश्वरके द्वारा नियमित होकर कर रहे हैं। जैसा उस प्रभुका नियम बना वैसा यहां यह जीवलोक कार्य करता है। यह कथन भी समीचीन नहीं है क्योंकि ऐसा कोई नियम नहीं है कि सारे कार्य एकके द्वारा ही किये जायें। यह भी नियम नहीं है किसी एकके द्वारा कोई कार्य किया जाय। अनेक तरहसे कार्योंका करना पाया जाता है। देखो कहीं तो एक ही पुरुष एक कार्यका करने वाला देखा गया। जैसे जुलाहेने कपड़ा बनाया, तो काम एक है, करने वाला भी एक है, और कहीं देखा जाता है कि कोई एक पुरुष अनेक कार्योंको कर देने वाला बन जाता है। जैसे एक कुम्हार घड़ा सकोरा मटका खपरियाँ आदि अनेक चीजें बनाता है, और, कहीं देखा जाता कि अनेक लोग करने वाले हैं, सभी लोग अपने जुदे जुदे काम कर रहे हैं, कहीं देखा जाता कि अनेक लोग मिलकर भी एक कार्यको करते हैं। जैसे पालकी (डोला) अथवा मृतक पुरुषकी अर्थी आदि ले जाना। मृतक पुरुष की अर्थी चार आदमी उठाते हैं, अगर एक तरफका एक आदमी उसे न उठावे तो वह अर्थी न लेजायी जा सकेगी। तो कहीं अनेक लोग मिलकर एक कार्य करते है। तो यह नियम न रहा कि एक कोई अनेक कार्योंको करे। फिर दूसरी बात यह है कि जो यह कहते हैं कि एक ईश्वरके द्वारा नियमित होकर ये पुरुष सब अपना कार्य कर रहे हैं—जैसे कि एक सूत्रधारके द्वारा नियमित होकर अनेक कारीगर मकान बनानेका काम कर रहे हैं तो वहाँ भी बात ऐसी नही है, वे जितने कारीगर हैं वे सब जो एक महल कार्यको बना रहे हैं तो एक सूत्रधारके द्वारा नियंत्रित होकर बना रहे यह बात नहीं किन्तु जितने कारीगर हैं सबका भाव एक समान है, उस समय कि सभी लोगोंको मिलकर एक ऐसा महल बनाना है। तो एक सूत्रधारने दिशा बतायी, किन्तु जितने कारीगर हैं वे सब अपने–अपने जुदे–जुदे भाव लिए हुए हैं। वे सब अपने-अपने अभिप्रायके अनुसार किसी दूसरेसे नियमित न बनकर चूँकि सबकी मर्जी एक समान थी इसलिये उन सबने यह बात मान ली। तो एक सूत्रधारके द्वारा वस्तुतः अनियमित है वे और उन सबका अपना जुदा–जुदा अभिप्राय है और वे अपने ज्ञान,

http://www.jainkosh.org

इच्छा और प्रयत्नके द्वारा सब कार्य कर रहे हैं। एकके द्वारा वे नियंत्रित नहीं हैं। वे सबके सब स्वतन्त्रतया स्वयं नियंत्रित हैं क्योंकि उन सबका आशय एक समान है। कि हमको इस प्रकारका महल बनाना है। वे अपने अभिप्रायमें सब कारीगर मिलकर कार्य कर रहे हैं। इससे यह भी बात युक्त नहीं है कि एक प्रभुके द्वारा नियंत्रित होकर ये जगतके जीव सुख दुख जन्म मरण आदिक कार्य किया करते हैं।

यथार्थ ज्ञानप्रकाशमें ही हितपथगमन —भैया ! आत्म हितार्थीको चाहिये ज्ञान प्रकाश। जैसे कोई मुसाफिर प्रकाशके बिना मार्गमें निर्बाध नहीं चल सकता इसी प्रकार आत्महितार्थी पुरुष यथार्थ ज्ञान प्रकाशमें आये बिना शान्तिके मार्गपर नहीं चल सकते। जिसको वह मार्ग ही नजर नहीं आया वह उस मार्गसे चलेगा क्या। समतापरिणाम होना यह है एक शान्तिकी सकरी गली कह रहे हैं कि बड़े केन्द्रित होकर आपको उस पथपर चलना पड़ता है। सब ओरके विकल्प हटाकर बड़ी सावधानीसे अपने आपको नियंत्रित करके चलना पड़ता है। उस गलीसे चलेभी पर असावधान हुए कि एकदम गिरनेका मौका है। तो वह ज्ञान प्रकाश जब मिलता है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, किसी पदार्थ का कोई दूसरा पदार्थ करने वाला नहीं है, ये सभी पदार्थ अपनी योग्यतानुसार अपनेमें परिणमन पाते हैं। हाँ वहां निमित्त दूसरे होते हैं पर उनका सन्निधान रहता है। ऐसा उनका मेल है कि ऐसी योग्यता वाले पदार्थ अमुक प्रकारके पदार्थका निमित्त पाकर अपना कार्य करते हैं। जिस पदार्थमें किसका प्रभाव पड़ता है यह क्या बताया जाय ? प्रभाव कहते किसे हैं ? प्रभाव क्या द्रव्य है, गुण है अथवा पर्याय है। द्रव्य तो यह है नहीं। जो शाश्वत हो वही तो द्रव्य है क्या प्रभाव कोई शाश्वत वस्तु है ? द्रव्य तो है नहीं। गुण भी शाश्वत हुआ करता है। अब कह सकते हैं कि प्रभाव पर्याय है वह कभी होता है प्रभाव फिर मिट जाता है। जो होवे मिटे वह तो पर्याय ही हो सकता है। तो प्रभाव पर्याय है। अब प्रभाव किसी कार्यके सम्बन्धमें विचारा जाय तो किसका प्रभाव मानोगे ? जैसे यहां हम इस चौकीपर बैठ गये ये हमारे बैठनेमें निमित्त है चौकी। तो इस बैठने रूप कार्यका नाम ही तो प्रभाव हुआ ना, यह प्रभाव अर्थात् यह बैठने रूप कार्य यह किसका परिणमन है ? यह बैठने वालेका परिणमन है। बैठने वालेसे योग्य अनुकूल निमित्तको पाकर बैठ गया। यदि कोई कहे कि उस बैठने वालेकी महिमा बताते जाइये। इस बैठने रूप कार्यमें तो कोई सड़ा गला कुछ पतड़ पटड़ा टिका हुआ हो जिसपर जरासा पैर रखते ही टूट जाय उसपर क्यों नहीं बैठते ? तो भाई अनुकूल निमित्त पाकर उपादान अपनेमें कार्य करता है। तो ऐसी मजबूत चौकी होना इतनी लम्बी चौडी होना जिसपर वह आसानीसे बैठ सके, ये सब अनुकूल साधन हों उसका निमित्त पाकर बैठने वालेने स्वयं अपनेमें चेष्टा करके अपना प्रभाव बनाया है। खैर इस विषयमें ज्यादह नहीं जाना है।

एक चेतन द्वारा अदृष्ट सहकारसे भी जीवलोककी सृष्टिकी असंगतता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकरण यहाँ केवल यह है कि इन समस्त पदार्थोंका करने वाला कोई एक प्रभु है अथवा नहीं है। ये सभी पदार्थ उपादान निमित्तकी योग्यतासे सब अपनेमें अपना कार्य करते जा रहे हैं। यदि कोई एक प्रभु मानों कर रहा है तो उसमें विषमता कैसे आ सकती है ? प्रभु तो एक स्वभावी है वह किसीको सुख दे, किसीको दुख दे, किसीको फल दे किसीको दण्ड दे ऐसा कार्य वह कहाँ कर सकता है। और, फिर वह प्रभु यदि हमारे भाग्यके अनुसार फल देता है तब तो फिर हम ईश्वरके बड़े काम आये। उसे तो हमारा बहुत बड़ा उपकार मानना चाहिये, क्योंकि वह ईश्वर पहिले हमारे अदृष्ट अर्थात् भाग्यकी अपेक्षा करता है तब वह हमें फल देनेमें समर्थ होता है। तो अब वह हमें फल देनेमें समर्थ होता है। तो अब यह बतलावो कि इस अदृष्टका उस ईश्वरके साथ कुछ सम्बन्ध है कि नहीं ? यदि कहो कि सम्बन्ध नहीं है भेद है तो फिर कार्य क्या करेगा ? यदि कहो कि सम्बन्ध है तो उस भाग्यसे ईश्वरका सम्बन्ध जुड़ा है इसमें कारण क्या है। किस सम्बन्धसे जुड़ा है ? अन्य सम्बन्ध मानोगे तो अनवस्था आ गया। यदि कहो कि सम्बन्धकी बात क्या करते हो ? अरे वह महेश्वर हमारे भाग्यमें एकमेक मिलकर एक कार्य कर रहा है। सब जीवोंके भाग्यसे मिलकर प्रभु कार्य कर पाता है तो जब एकमेक हो गया हमारे भाग्यसे अभेद हो गया तो इसका अर्थ यह हुआ कि अदृष्ट किया गया याने ईश्वरको ही कर डाला। अभेदमें एक चीज रहती है। अदृष्ट किया इसका अर्थ है ईश्वर किया गया।

एक प्रभु और अदृष्ट दोनोंके द्वारा भी मिल जुलकर विश्व सृष्टिकी असंगतता—इस प्रसंगमें अब शंकाकार यह कह रहा है कि भाई अदृष्टके द्वारा ईश्वरका कुछ नहीं किया जा रहा है किन्तु अदृष्ट और ईश्वर ये दोनों मिल जुल करके कार्य किया करते हैं। एकमेक तो नहीं है ईश्वर और अदृष्ट। जैसे किसी कार्य को दो आदमी मिलकर करते हैं तो यहाँ इस संसारके इन नटखटोंसे प्राणियोंका कार्य भाग्य और ईश्वर ये दोनों मिलकर करते हैं। क्योंकि एक कार्य करनेका लक्षण ही यह है कि एक कार्य किया जाता तो मिल जुल करके सहकारी बन करके किया जाता है। तो वह ईश्वर इस भाग्यसे मिल जुल करके कार्य करता है। यह भी बात युक्त नहीं है क्योंकि ईश्वरमें कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव है ना ! करनेका स्वभाव नहीं है तो फिर बात ही क्या ? स्वभाव तो तुम्हें मानना ही होगा। ईश्वरमें जो कार्य उत्पन्न करनेका स्वभाव है वह मान लिया। इस प्रसंगमें सहकारी कारणोंकी अपेक्षा रखकर लेकिन यह तो बताओ कि प्रभुमें कार्योंको उत्पन्न करनेका जो स्वभाव है वह आद्य स्वभाव इन साधनोंके मिलनेके पहिले भी है कि नहीं। यदि कहो कि पहिले है तो भविष्य कालमें जितने कार्य होनेको हैं वे सब एक साथ पहिले ही हो जाने चाहियें। क्योंकि ऐसा नियम है कि जो पदार्थ जिस समय जिसकी उत्पत्ति करनेमें समर्थ है वह पदार्थ उस समय उसे उत्पन्न करता ही है। जैसे खेतमें पड़ा हुआ बीज अन्तिम अवस्थाको प्राप्त होकर अंकुर उत्पन्न कर देता है क्योंकि उस समय उस बीजमें अंकुर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य है। अब महेश्वरमें जो कि एक स्वभावी है इन पदार्थोंको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य स्वभाव सहकारी कारणोंके मिलनेके पहिले भी मान लिया तो आगेके सारे कार्य तुरन्त हो जाने चाहियें। यदि उन सबको नहीं पैदा कर सकते हैं उस समय तो इसका अर्थ यह है कि प्रभुमें उन कार्योंको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि जो चीज जिस समय जिसको उत्पन्न न कर सके उस समय उस चीजमें उसको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य स्वभाव नहीं है। जैसे टंकियोंमें भरा हुआ अनाज जहां हवा जरा भी प्रवेश न कर सके उस बीजमें अंकुर उत्पन्न कर सकनेका सामर्थ्य नहीं है। तो जब महेश्वरने उत्तरकालमें होने वाले समस्त कार्योंको अभी नहीं कर पाया तो इसका अर्थ यह है कि उसमें उनको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य स्वभाव भी नहीं है।

सामर्थ्यस्वभाव और परापेक्षा दोनोंका परस्पर विरोध—यदि कहो कि नहीं—समस्त कार्योंको उत्पन्न करनेमें सामर्थ्यका स्वभाव तो है प्रभुमें, पर सहकारी कारण न होनेसे उन्हें उत्पन्न नहीं कर सकता। जब सहकारी कारण जुट जाते है तो सामर्थ्यवान प्रभुमें उन समस्त कार्योंको कर डालता है। यह भी केवल बात है। इसका केवल अर्थ यह हुआ कि प्रभुमें सामर्थ्यका स्वभाव नहीं है। यदि सामर्थ्य स्वभाव होता तो किसी भी पर वस्तुकी वह अपेक्षा न रखता। सामर्थ्य स्वभाव हो और दूसरा अपेक्षा रखे यह तो विरुद्ध बात है। जैसे अत्यन्त वृद्ध पुरुष जो स्वयं खड़ा हो सके उसे दूसरा आदमी हाथ पकड़कर खड़ा करता है तो यही कहेंगे ना कि इस वृद्धमें खड़ा होनेकी सामर्थ्य अब नहीं है तभी तो दूसरेका सहयोग पाकर खड़ा हो रहा है। जवान लोग ये खूब दौड़ने वाले लोग इनमें खड़ा होनेका सामर्थ्य स्वभाव है तो क्या ये कभी अपेक्षा भी करते हैं कि मुझे कोई हाथ पकड़कर उठायेगा तो उठ सकते हैं तो सामर्थ्यका स्वभाव हो और दूसरे की अपेक्षा रखे ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं किन्तु जहां सामर्थ्य स्वभाव होता है वह पुरुष अनाधेय होता है अर्थात् उसमें किसी दूसरेके आरोपणकी आवश्यकता नहीं होती। और, वह अप्रमेय अतिशय वाला होता है अर्थात् उसमें स्वयं ऐसा अतिशय है कि उस अतिशयको अन्य कोई दूसरे पदार्थका सद्भाव अथवा अभाव हटा नहीं सकते। तो यह बात सिद्ध नहीं हो सकती है कि हमें सुख दुख देने वाला कोई ईश्वर है हम लोगोंकी सत्ता नगण्य जैसी है, हम लोग कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है हमारा करने वाला प्रभु है। हम सब पदार्थ हैं, परिणमने का स्वभाव रखते हैं सो जब जैसा निमित्त योग प्राप्त होता है वैसा हम परिणम जाया करते हैं। इस समस्त विश्वका या हम सब लोगोंका रचने वाला कोई प्रभु नहीं है। प्रभु तो अनन्त ज्ञानानन्दमय है तो वह ज्ञानके द्वारा सबको एक साथ जानता रहता है और अपने आनन्दमें तृप्त रहा करता है। ऐसी अवस्था प्राप्त करने लिये ही साधुजन प्रभुकी आराधना करते हैं और प्रभुका व्यक्तस्वरूप अपने स्वभाव के तुल्य है अतएव स्वभावकी उपासना किया करते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्तृत्ववादके प्रसङ्गका उद्भव – ईश्वर कर्तृत्ववादकी बात छिड़ जानेका इस प्रकरणमें मूल प्रकरणमें मूल प्रसंग यह है कि प्रमाणका स्वरूप बताने वाले इस ग्रन्थमें प्रत्यक्ष प्रमाणका स्वरूप कहा जा रहा था। समस्त सामग्री विशेषके कारण जब समस्त आवरण दूर हो जाते हैं तब प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट होता है। और, वह निरावरण ज्ञान समस्त विश्वको जानने वाला होता है। इस प्रसंगपर यह बात मूलमें छेड़ी गयी कि आवरणका विनाश करनेसे सर्वज्ञता प्रकट होती है यह बात ठीक नहीं है क्योंकि एक सदा शिव अनादिमुक्त ईश्वर ऐसा है जिसके आवरण कर्म अनादिसे कभी लगे ही न थे और वह अनादिसे सर्वज्ञ हैं। यहाँ निरावरणतासे सर्वज्ञता होती है इसके विरोधमें अनादि निरावरण जिसके साथ कभी कर्म लगे ही न थे ऐसे एक ईश्वरकी सिद्धि करनेकी ठानी है, और तब उस ईश्वरकी विशेषता बतानेके लिये यह कर्तृत्ववाद उठा। प्रसंगमें कर्तृत्ववाद उठानेका कोई प्रकरण न था। प्रकरण था यह कि प्रत्यक्ष ज्ञान होता है सबका जाननहार, और वह आवरणके दूर होनेसे होता है। ज्ञानावरण आदिक अष्ट कर्मोंसे ये संसारी जीव आवृत्त हैं। उनमेंसे ज्ञानावरण कर्म जीवोंके ज्ञानको ढांकता है। उसका अभाव होनेसे ज्ञान पूर्ण प्रकट होता है, इस बातका विरोध किया गया है कि सर्वज्ञता आवरणके दूर होनेसे प्रकट नहीं होती किन्तु सर्वज्ञता तो केवल एक ही ईश्वरमें है और अनादि मुक्त है, यह बात शंकाकार ने रखी थी वैसे तो शंकाकारके मन्तव्यमें जो आवरणसे मुक्त होंगे, हुए हैं, ऐसे मुक्त आत्मा हैं, परन्तु वे सर्वज्ञ नहीं है। उनके तो ज्ञानगुणका अभाव हुआ है तब मुक्त हुए हैं। तो ऐसे एक ईशकी सिद्धिमें कर्तृत्ववाद चला।

सहकारी कारणोंको भी ईशकृत माननेपर आपत्ति—इस प्रकरणमें यह कहा जा रहा था कि महेश्वर सदाशिव समस्त विश्वकी रचना करता है, पर अनेक दोषोंसे बचनेके लिये कहा गया था कि अनेक सहकारी कारणोंकी अपेक्षा लेकर रचना करता है पर प्राणियोंके अदृष्टकी सहकारितासे उनकी रचना करता है। तो पूछा जा रहा है अब कि वह सहकारी कारण क्या ईश्वरके आधीन उत्पत्ति वाला है या नहीं? अर्थात् उन सहकारी कारणोंकी उत्पत्ति ईश्वरके आधीन है अथवा नहीं, जिन भाग्य आदिक कारणोंकी सहायता लेकर यह ईश जीव लोककी रचना करता है। अदृष्ट आदिक सहकारी कारणोंकी उत्पत्ति यदि ईश्वरके आधीन है; तब फिर एक समयमें एक ही बारमें सारे सहकारी कारणोंको क्यों नहीं उत्पन्न कर देता? जब उसके ही आधीन है कि सहकारी कारण भी रचे और मुख्य काम भी रचे तो सब कुछ एक ही समयमें क्यों नहीं रच डालता। जिसमें सर्व प्रकारकी सामर्थ्य होती है वह कार्यको एकदम एक साथ करना चाहता है। यदि कहो कि उन सहकारी कारणोंको रचना तो ईश्वरके आधीन है, पर सहकारी कारण भी काम दे जायें इसके लिये दूसरा सहकारी चाहिये। तो इस तरह तो उसके लिये तीसरा और उसके लिये चौथा सहकारी कारण चाहिये, उसकी अनवस्था होगी। और ईश्वर फिर उसके कारण, कारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के कारण इनकी रचनामें ही लगा रहेगा, मुख्य जो प्रकृत काम है उसको करेगा ही कब ?

सहकारी कारणोंको परम्परोद्भूत म [illegible] बाधा—यदि कहो कि जैसे बीज और अंकुर इन दोनोंकी परम्परा चलती है। बीजमे अंकुर होते अंकुरसे बीज होते, तो जैसे पूर्व कारणसे उत्तर कारण बन जाते हैं इसी प्रकार इन सहकारी कारणोंमें भी पूर्व कारणसे उत्तर सहकारी कारण बन जाते हैं इसमें अनवस्था दोषके लिए नही है किन्तु यह तो परम्परा है। आचार्यदेव समाधानमें कहते हैं—तब फिर एक सृष्टिकर्ता ईशके माननेकी क्या आवश्यकता रही ? प्रत्येक पदार्थ अपने पूर्व कारणसे अपनी उत्तर पर्यायमें विकसित हो जाता है और यह परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है। यहां किसीको इस अटकावमें रखनेकी क्या जरूरत है ? यदि यह कहो कि उन सहकारी कारणोंकी उत्पत्ति ईश्वरके आधीन नहीं है, वे मिलते हैं। जब आते हैं तब ईश्वर उन कारणोंकी सहकारिता लेकर प्राणियोंको रचना करता है। तो लो इसीमें तुम्हारा हेतु अनेकान्तिक दोष वाला हो गया कि देखो यह सहकारी कारण है तो कार्य, पर ईश्वरके द्वारा रचा गया नहीं है। तब यह बात तो नहीं रही कि जो कार्य होते हैं वे सब ईश्वरके द्वारा रचे गये होते हैं ~~वे सब ईश्वरके द्वारा रचे गये होते हैं~~। इन पदार्थोंका रचने वाला कोई एक नहीं है। सभी लोग स्पष्ट आंखों सामने देखते हैं कि पदार्थोंका जिस प्रकार मिलन होता है, संयोग होता है और वहां निमित्त नैमित्तिक विधिमें जैसा जो कुछ परिणमन वाला प्रभाव आना होता है होता आ रहा है। निमित्त नैमित्तिक भावकी सही व्यवस्था है। उसमें कोई एक करनेवाला आये यह बात नहीं है। जगतमें अनन्तानन्त पदार्थ हैं, वे सब परिणमनशील हैं और अपनी परिणमनशीलताके कारण निरन्तर नवीन पर्यायें विकसित होती हैं और प्राचीन पर्यायोंका विलय होता है, यह बात पदार्थमें स्वयमेव होती आ रहीं है।

संत वचनोंसे कतृत्ववादके समर्थनका प्रयास—युक्तियोंसे कर्तृत्व सिद्धि के विवादमें असफल सफलताको सफल करनेके लिये अइ शंकाकार कुछ संतोंके वचनों का प्रमाण देकर सिद्ध करना चाहता है कि कोई एक चेतन विश्वका करने वाला है। शंकाकार कह रहा है कि देखो संतोंने भी कर्तृत्वकी सिद्धिके लिये कहा है कि जितने ये महाभूत हैं अर्थात् दिखने वाले भौतिक पदार्थ हैं वे सब कार्य चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर प्राणियोंके सुख दुःखमें निमित्त होते हैं क्योंकि रूपादिमान होनेसे रूपादिमान जितने पदार्थ होते हैं वे किसी एक चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर सुख दुख आदिकमें कारण होते हैं। जैसे जुलाहाके तुरी वेम शलाका आदिक कपड़ा बुननेके साधन होते हैं वे रूपादिमान है अतएव एक जुलाहा द्वारा अधिष्ठित होकर वे दूसरेके सुख दुख आदिकमें कारण पडते हैं। और भी सुनो—संतोंने कहा है कि पृथ्वी आदिक महाभूत अर्थात् दृश्यमान भौतिक पदार्थ किसी एक बुद्धिमान कारणके द्वारा अधि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ष्ठित होकर ही ये अपनी क्रियामें लग पाते हैं। पृथ्वीमें क्रिया क्या है कि अपने आप को अपने आपसे धारण किये रहे। इसी प्रकार और भी जितने छोटे मोटे पदार्थ हैं उनकी क्रिया तो स्पष्ट दिखती है। वे सब एक ईश्वरसे अधिष्ठित होकर ही अपना कार्य कर पा रहे हैं, और भी संतोंकी वाणी सुनो जितना यह लोक है, शरीर है, इन्द्रिय हैं ये सबके सब उपादान, चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर ही अपना कार्य करते हैं क्योंकि ये जितने रूपादिमान पदार्थ हैं रूप रस, स्पर्श वाले पदार्थ पुद्गल हैं वे सब किसी एक चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर चेतनके द्वारा प्रेरित होकर ही कार्य कर सकते हैं। जैसे ये सूत डोरा आदिक रूपादिमान हैं तो जुलाहा आदिककी प्रेरणा मिलती है तब इससे कपड़ा बनता है। ये सारे पदार्थ चाहे आँखोंसे ग्रहणमें आते हों वे सब एक ईश्वरके द्वारा रचे गये हैं क्योंकि परमाणुवोंसे वे रचे गए हैं, उन सबका आकार बना है। जितने आकार वाले पदार्थ हैं वे किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हुये होते हैं। यों अनेक संतोंके वचन हैं। कैसे न मानोगे कि इस सारे विश्वका करने वाला कोई एक बुद्धिमान है।

प्रामाण्यसमाधान—अब समाधानमें कहा जा रहा है कि प्रमाण तो दिये गये लेकिन केवल एक ही बात निरखलो कि जैसा रूप, रस, गंध स्पर्शवान पना चेतनाधिष्ठित होकर इन वसूल आदिक पदार्थोंमें है क्या इस प्रकारका रूपादिमान पना पृथ्वी आकाश आदिकमें है, अथवा जैसा अनित्यपना चेतनाधिष्ठित होकर इन घटपट आदिकमें है क्या ऐसा पृथ्वी आदिकमें है? अथवा जिस प्रकारसे ये पदार्थ किसी एक कुम्हार जुलाहा आदिक पदार्थोंके द्वारा अधिष्ठित है क्या इसी प्रकारके सशरीर किसी चेतनके द्वारा ये पृथ्वी आदिक रचे गये हैं? केवल रूप है इतने मात्र से इसका अविनाभाव नहीं है कि वे किसी चेतनके द्वारा रचे गये हैं क्योंकि ये अपने आप उत्पन्न होने वाले अंकुर बरसात हुई कि एक दो दिनमें ही सब जगह कितने अंकुर पैदा हो जाते हैं तो क्या वे किसी चेतनके द्वारा रचे गये हैं? क्या किसी किसानने उन्हें उत्पन्न किया है? अरे वे स्वय उत्पन्न हो जाते हैं। तो यह कहना ठीक नहीं कि जितने भी रूपादिमान पदार्थ हैं वे किसी चेतनके द्वारा रचे गये हैं। तथा अगर मान भी लो कि कुम्हार जुलाहा आदिक पुरुष सरीखे ही किसी असर्वज्ञके साथ इन कार्योंका अविनाभाव है तो उसमें सर्वज्ञके साथ इन कार्योंका अविनाभाव है तो उसमें सर्वज्ञ तो सिद्ध नहीं हो सका। ईश तो नहीं हुआ। जिन जिन लोगोंकी जो सामर्थ्य चला उन्होंने उन क्रियायोंको रचा। इससे केवल कथनमात्रसे अटपट सिद्ध नहीं किया जा सकता। और फिर ईश्वरका बुद्धि तो अनित्य है। तो बुद्धिसे अभिन्न जो ईश्वर है वह भी अनित्य हुआ। जो जो अनित्य होता है वह किसी चेतन के द्वारा अधिष्ठित है ऐसा आपका कहना है तो उस ईश्वरको अधिष्ठित बनाने वाला कोई अन्य ईश्वर होना चाहिए। तो ईश्वरकी रचना ही अभी पूरी न हो पायगी फिर कमनेकी बात कहाँ? अगर कहो कि वह ईश्वर एक है उसकी बुद्धि अनित्य है, पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसे दूसरेने नहीं बनाया तो जो कार्य होनेपर भी किसी ईश्वरके द्वारा नहीं रचा गया यह बात सही सिद्ध हो गयी।

कर्तृत्वके सम्बन्धमें आत्मनिर्णय—कर्तृत्ववादका प्रकरण सुनकर हमें इस निर्णयपर पहुंचना चाहिये कि ईश्वर तो कर्ता हो कैसे ? यहांके पुरुष भी कर्ता नहीं। जैसे देखते हैं कि महिलाने रोटी बना दी तो रोटियोंके करने वाली महिलाने हुई. यह आपका एक व्यवहार कथन है। वस्तुतः रोटीको महिला नहीं कर सकती। अगर रोटी महिलाके हाथकी बात है तो खेतसे चिकनी मिट्टी लाकर रख दो और कहो कि बनावे वह महिला रोटी, तो नहीं बना सकती। अरे रोटीका उत्पाद तो आटा, गेहूं, अनाजसे होता है। उस रोटी का करने वाला उपादान आटा है हाँ उस रोटीके बनानेमें निमित्त अवश्य है वह महिला। वह महिला रोटी बनानेका कार्य न करे तो कहाँसे वह रोटी बन सकती है लेकिन वस्तुस्वरूप निरखिये तो उस महिलाने अपने हाथमेंसे कुछ चीज आटेमें नहीं डाली, न उससे बनी। तो यहांपर भी हम लोक व्यवहारमें जो कर्तापनका भारी वचन जाल रचा करते हैं वहां भी हमें सावधानीसे निरखना है। लोग कर्तृत्व अहंकारमें ही तो ऐंठे जा रहे हैं। मैंने किया, मैं कर दूंगा यह। और कहनेकी ही बात दूसरेपर लादकर उन्हें बहकाया जा सकता है—भाई फलाने साहबने यह धर्मशाला बनाया, मंदिर बनाया, अमुक बनाया, और वह कर्तृत्वकी बात सुनकर बड़ा खुश होता है और वह कोई दूसरा काम कर देनेके लिए उत्साह बनाता है और उसमें अपनी शान समझता है। तो लोग कर्तृत्वके आशयमें अपनेको भुले हुये यह नहीं निरख पाते कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ मेरा स्वरूप क्या है, जरा अन्दरमें निरखिये इन्द्रियका व्यापार रोककर और विशेषतया नेत्र बन्द करके, इस शरीर तककी भी सुधि भूलकर कुछ अन्दरमें निरखे तो वहां, मिलेगा वह आत्मा दृष्टिमें आयगा। वह सद्भुत है, ज्ञान रूप है, यह दृष्टिमें आयगा। यह मैं आत्मा ज्ञान मात्र हूँ और यह केवल जाननका ही निरन्तर कार्य करता रहता है, और जाननमें जो कुछ आनन्दकी उदभूती है उसका मैं भोग कर रहा हूँ। तो ज्ञानको ही करता हूं, ज्ञानको ही भोगता हूँ, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञानको छोड़कर अन्य कुछ यहां वैभव नहीं है।

दुर्लभ नरजीवनमें अपनी अनर्थ करतूत—संसारमें अनादिसे रुलते हुये आज सुयोगसे अच्छी स्थितिमें आये हैं, हम आप लोग उत्तम जैन कुलमें उत्पन्न हुये हैं, धन वैभवका साधन भी खूब पाया है, मगर यह तो बतावो कि इस मनुष्य जीवन में जीकर असलमें करना क्या है ? ···करना क्या है। अजी धन जोड़ना है। लाख हुये अब ५० लाख हुए। अब करोड़पति होंगे। अरे नादान ! सोचे तो जरा कि लाख और करोड़का भी जो धन है वह तो आखिर पौद्गलिक ढेर है। तेरे आत्मा का उसमें कुछ सम्बन्ध है क्या ? वर्तमान समयमें भी एक उस पौद्गलिक ढेरसे तेरे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को कोई निराकुलता आ रहीं है क्या ? भली प्रकार निरखले। वैभवका ढेर लगाकर कुछ दूसरे लोगोंमें अपनी महिमा समझते हैं और इसी कारण कुछ मौज मानते हैं। मौजमें निराकुलता अथवा शान्ति नहीं है। वह क्षोभसे भरी हुई स्थिति है। वहां अपने आपमें टिकाव नहीं है। अपने स्वरूपसे बाहर दृष्टि लगा लगाकर कल्पनायें कर करके एक क्षोभ भरी आकुलता मचायी जा रही है, शान्ति नहीं है। और फिर करते जाइये ढेर क्या होगा अन्तमें ? अन्तमें यहांसे जाना ही पड़ेगा। सारा वैभव छूटेगा ना, एक पाई भी साथ जायगा क्या ? अरे अपने ही शरीरका एक रोम भी साथ न जायेगा। जिनसे इतनी ममता कर रहे, जिनमें इतना मोह कर रहे वे कोई लोग जरा भी मदद दे देंगे क्या ?

व्यर्थ अनर्थ दुरर्थ विकल्पोंका ठेका और व्यापार—सबका सर्वत्र अकेलापन है। आप अकेले हैं, केवल अपना स्वरूप लिये हुए हैं। स्वरूप ही मात्र आपका वैभव है और स्वरूपमें जो क्रिया बनती है, अनुभूति बनती है बस वहां तक ही आप करतूत है और आपका उपभोग है। इससे बाहर कुछ नहीं है। तब क्या कर्तव्य हो जाता है ? इस दुर्लभ मनुष्य जीवनको पाकर हम आपका क्या कर्तव्य होना चाहिये इस बातपर जरा ध्यान तो लायें यह जगत मायारूप है। जो लोग नजर आ रहे हैं ये सब भी मायारूप हैं, परमार्थ नहीं हैं। एक जीव और पुद्गल इनका एक पिण्ड बना हुआ है जिसे हम आप एक दूसरेको जीव कहकर सम्बोधते हैं और स्नेह बढ़ाते हैं वे सब मायारूप पदार्थ हैं वहांसे कुछ सिद्धि न हो सकेगी। इन सबमें आकर्षण होनेका मूल कारण तो अज्ञान है। मैं इनसे निराला हूं और केवल मैं अपनेको ही करने वाला हूँ अपनेको ही भोगने वाला हूँ, यह ज्ञानप्रकाश जब नहीं है तब होगा क्या, परमें लगेगा, परमें अपना हित मानोगे, और जब यह भ्रम आ गया, परमें हित माननेकी भ्रान्ति हो गयी तब परमें ही बिगाड़ करना, परकी रचनाके विकल्प करते रहना बस यही एक काय रह गया मोही पुरुषोंका। और करता क्या है मोही, सिवाय परपदार्थों के सम्बन्धमें अनापसनाप विकल्प मचाते रहनेके। लोग तो समझते हैं कि यह सेठजी बहुत बड़ा व्यापार कर रहे हैं पर वहां सेठ बड़ा व्यापार जरूर कर रहे हैं पर वहाँ वह सेठ बड़ा व्यापार जरूर कह रहा है, बाहरका व्यापार नहीं कह रहे मगर वह अपने आपमें ही कोई बरबादी वाला बड़ा व्यापार कह रहा है। क्योंकि पर पदार्थों में ज्ञानको लगाकर उनको दृष्टिमें रखकर, उनसे हित मानकर अपने आपमें बहुत बड़े लम्बे चौड़े विकल्पोंके मचानेका रातदिन व्यापार कर रहा है। बाहरी कुछ व्यापार नहीं है बाहरकी बात तो कोई पूर्वबद्ध पुण्यके सुयोगसे मेल मिलापमें आ गया, उसमें वह कुछ नहीं कर रहा, पर विकल्प मचानेका बड़ा व्यापार कर रहा है। यह जीव समझता है कि मैं कमाता हूं मैं घरके इतने लोगोंका पालन पोषण करता हूं तो ये जिन्दा रहते हैं। और क्यों जी जब ये जीव आपके घरमें न आये थे, किसी दूसरे भवमें थे तब वे सत् थे कि असत् थे। जिन्दा थे ना, अब आपने उनकी जिन्दगीका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ठेका समझ रखा है।

दूसरोंके भाग्यपर हामी होनेका मोहियोंका व्यामोह – अनेक स्थलोंपर तो ऐसा भी सम्भव है कि जो मान रहा है कि मैं इन जीवोंका पालन पोषण करता हूँ वह पुरुष जब तक घरमें बैठा है तब तक उनकी गरीबी रहती है और वह पुरुष अपना घर छोड़ दे तो उनका भाग्य जो एक इसके घरमें रहनेके कारण रुका हुआ था, घरसे निकल जानेपर उनका भाग्य खुलता है और पनप जाता है। यहीं आप अनेक उदाहरण देखेंगे। एक ऐसा छोटा कथानक है कि एक जोसी था। वह प्रतिदिन १०–११ बजे आटा माँगकर घर लाता था तब सब घरके लोग खाते थे। एक दिन वह एक गांवमें आटा माँग रहा था। उसे एक सन्यासी मिला। सन्यासीने पूछा – जोसी जी क्या कर रहे हो? तो वह जोसी बोला कि हम आटा माँग रहे हैं, घर ले जायेंगे तब घरके सभी प्राणियोंका पालन पोषण करते हैं। तो सन्यासी बोला कि तुम्हारा यह ख्याल गलत है, तुम दूसरेका नहीं पालन पोषण करते। तुम इसी समय हमारे साथ जङ्गल चलो! वह बड़ा श्रद्धालु था, सन्यासीके साथ हो लिया। अब वह १०–११–१२ बजे तक घर न पहुँचा तो उसको ढुढौंआ पड़े क्योंकि प्रतिदिन १०–११ बजे वह आटा माँगकर घर आता था। उसी समय किसी मजाकियाने कह दिया कि अरे, उसे तो बाघ उठा ले गया और उसने खा डाला। यह बात गांवमें फैल गयी, तो लोगोंने यकीन कर लिया कि वह तो मर गया। लोग समझानेको उसके घर पहुँचे। कुछ देरके बादमें उसके पड़ौसके सेठोंने सोचा कि देखो अब इसके घरमें कोई आदमी तो रहा नहीं। स्त्री है, माँ है और छोटे छोटे ६–७ बच्चे हैं, तो ये अपने पड़ौसमें रहते हुए भूखों मरते जाँय, यह बात तो न होना चाहिये! सो अनाज वालोंने ४–५ बोरा अनाज दे दिया, घी वालोंने एक दो टीन घी दे दिया, कपड़ेवालों ने ५–७ थान कपड़ा दे दिया, शकर वालोंने एक दो मन शकर दे दिया। यों पड़ौसके सभी सेठोंने कुछ न कुछ उस जोसीकी पत्नीको दे दिया। अब क्या था, जैसे दिन उस जोशीके घर वालोंने कभी न देखे थे वैसे दिन देखने लगे। रोज–रोज ताजी पकौड़ियाँ खूब खायें, जो चाहे बनाकर खायें, बड़े अच्छे नये–नये कपड़े पहिनें। खूब मौजमें रहने लगे। अब १५ दिनके बादमें वह जोसी कहता है कि महाराज अब तो आप आज्ञा दीजिये हम अपने घर जाकर देख आयें कौन मरा कौन बचा है? तो सन्यासीने कहा अच्छा देख आओ! मगर उन्हें छिपकर देखना, यों सीधे घरमें न घुस जाना। तो वह जोसी अपने घर आया और घरके पीछेकी दीवारसे ऊपर छतपर चढ़ गया। छिपकर घरमें देखने लगा। तो क्या देखता है कि यहाँ तो बड़ा मौज है। खूब पूड़ी कचौड़ी ताजी बना बनाकर खायी जा रही हैं। सभी खूब नये नये कपड़े पहिने हुए हैं। सभी खूब हंस खेल रहे हैं। यह दृश्य देखकर मारे खुशीके वह जोशी घरमें कूद पड़ा और अपने बच्चोंको गलेसे लगाने लगा। तो घर वालोंको तो मालूम हो गया था कि वह मर गया है, इसलिये उसे देखकर सोचा कि यह तो भूत है, सो आगके लूगरों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से, ढेला पत्थर आदिसे मार मारकर उसे भगाने लगे। वह बेचारा जोसी किसी तरह अपनी जान बचाकर उसी जङ्गलमें सन्यासीके पास गया। सन्यासीसे जाकर बताया, महाराज ! वहां पर तो सभी बड़े मौजमें थे किन्तु मैं घरमें गया तो सभीने मुझे ढेला पत्थर तथा अग्निके लूगर आदिसे मार मार कर भगाया। मैं बड़ी मुश्किलसे जान बचाकर आपके पास भाग आया हूं। तो सन्यासी बोला — अरे मूर्ख जब वे बड़े मौजमें हैं तो तुझे क्या पूछगे ? तो यह अभिमान रखना कि हम धन कमाते हैं, अपने परिवार के लोगोंका पालन पोषण करते हैं इस प्रकारका अभिमान हटाना अपने जीवनमें शांति पानेके लिए अति आवश्यक है।

अन्योपदेशपूर्वक वाग्व्यवहारसे सृष्टिकर्ता सिद्धिके सम्बन्धमें चर्चा समाधान— सृष्टिकर्तृत्वके समर्थनमें एक अनुमान और दिया जा रहा है। सृष्टिके प्रारम्भमें पुरुषोंका व्यवहार किसी अन्यके उपदेश पूर्वक होता है, क्योंकि उत्तरकालमें चेते हुए, समझे हुये पुरुषोंको प्रति अर्थके प्रति नियतपनेका व्यवहार हुआ करता है। जैसे कि जो वचन व्यवहारको नहीं समझता ऐसे बच्चेको माता पहिले उपदेश करती है। देखो यह गाय है, यह बकरी है। तब उस उपदेशको सुनकरके वह बच्चा यह अवधारण करता है, उन अर्थोंमें नियतपनेकी बुद्धि करता है कि हाँ यह गाय है, यह बकरी है, तो इसी प्रकार जिस समय सृष्टि हुई उस सृष्टिके समयमें लोगोंको बताने वाला कौन था, सिवाय एक इस महेश्वरके तो इससे सिद्ध होता है कि सृष्टिकी महेश्वरने और उसने सबको उपदेश भी किया। इसके समाधानमें कहते हैं कि यह अनुमान अपने पदों की भी सिद्धि नहीं रख सकता। यह कहना कि उत्तरकालमें समझे हुए लोग, यही सिद्ध नहीं होता, क्योंकि प्रलयकालमें अर्थात् जब एक तूफान, वृष्टि, अग्नि, बरसना आदिक खोटी वृष्टियां होती हैं और तब दुनियाका कुछ हिस्सेमें प्रलय होता है। उस समय भी ऐसे पुरुष नहीं होते कि जिनका ज्ञान और स्मरण लुप्त हो गया हो अथवा शरीर इन्द्रिय विगत हो गयी हों। ऐसे जीव तब भी नहीं हुआ करते। अर्थात् कितना ही प्रलयकाल हो, जो जीव थे, जिनपर प्रलय किया गया वे जीव असत हो जायें, उनका सर्वथा अभाव हो जाय, उनको ज्ञानका स्मरण न रहे ऐसा असत्व नहीं होता। मरते मरते भी ज्ञान स्मरण रहता है और मरकर उनका तुरन्त जन्म होता है। ऐसा नहीं है कि जैसे कुछ लोग समझते हैं कि मुर्दा जमीनमें गड गया तो वह जीव जमीन में ही गड़ा है। हजारों वर्ष बाद उसके न्यायकी तारीख आ पायगी। जीव जब मरता है तो तुरन्त दूसरे ही समय उसकी कोई शकल हो जाती है, प्रलयकी ही असिद्धि है सर्वथा। सर्वथा प्रलय होता हो अर्थात् जीवोंका समूह नाश होता हो यह बात है ही नहीं। और जिसे किसी भी प्रकारका प्रलय समझा जाता हो तो वहां होता क्या है ? अपने किए हुए कर्मोंके वशसे कुछ विशिष्ट ज्ञानान्तरमें उत्पत्ति हो जाती है, कुछ नई ज्ञानमयी दुनियामें उत्पन्न हो जाता है। फिर कैसे कहा जा सकता कि उनका ज्ञान और स्मरण लुप्त हो जाता है। ज्ञानकी स्मृति नहीं रहती और शरीर इन्द्रिय भी नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहती यह बात अयुक्त है ।

व्यवहारके अन्योपदेशपूर्वकत्वका अनियम—अन्योपदेशपूर्वकताकी सिद्धि में दूसरी बात यह है कि यह कहना कि जितने वचन व्यवहार होते हैं, जो भी व्यवहार होते है वे दूसरेके उपदेशपूर्वक होते हैं यह नियमकी बात नहीं है । जीवके मैथुन आदि परिग्रह आदिके ये सारे व्यवहार कितने उपदेशपूर्वक होते हैं ? दूसरोंके उपदेश बिना भी जीवोंमें इनका व्यवहार पाया जाता है । इससे यह कहकर कि सृष्टिके आदिमें व्यवहार अन्यके उपदेशपूर्वक होते हैं और वह अन्य कोई एक चेतन है यह बात अयुक्त है । प्रथम तो सृष्टिका ही मतलब समझो ! सृष्टिका अर्थ क्या है ? क्या कुछ भी न था, असत् था और एकदम कुछ आ गया इसका नाम सृष्टि है ? इसे तो कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता कि कुछ भी न हो और एकदम कुछ हो । असत् कभी सत् नहीं बन सकता । हाँ जो पदार्थ सद्भूत हैं उनकी ही परिणतियाँ नवीन नवीन होती हैं इसीका नाम सृष्टि है तो किसी भी पदार्थमें यह बात सम्भव नहीं कि जो कभी कुछ था ही नहीं वह सब कुछ बन जाय !

ऋषभदेवकी कृपामें सृष्टि माननेकी कल्पना—सृष्टिके माननेका सिल-सिला, यह तो ऋषभनाथ भगवानसे माना गया है । इन्हींको आदमबाबा कहते हैं । जो आदिमें उत्पन्न हुआ हो उसीका नाम है आदिमबाबा । भोगभूमिके बादमें जब कर्मभूमिका प्रारम्भ हुआ तो उस कर्मभूमिके आदिमें आदिनाथ प्रभु उत्पन्न हुये । जिनका भगवद्गीतामें भी वर्णन है कि वह ऋषभदेव ८वें अवतारके रूपमें थे । तो उस समय लोग बड़ी परेशानीमें थे । पहिले तो कल्पवृक्षोंसे मनमानीं भोगोपभोग वस्तुवोंकी प्राप्ति हो रही थी, खाना पीना कपड़ा बाजे शृङ्गार आदिक सब कुछ उन्हें अनायास प्राप्त होते थे, लेकिन जब ये फल मिलने बंद हो गए तो प्रजा परे-शानीमें पड़ गयी । उस समय कोई उपाय न रहा कि कैसे प्राणोंकी रक्षा की जाय ? तब सब प्रजाके लोग चौदहवें कुलकर अंतिम मनु नाभि राजाके पास आये और बोले, महाराज हम लोग बड़ी परेशानीमें हैं । अब हम लोगोंके प्राण रहना कठिन है । तो उस समय अंतिम मनुने अपने पुत्र वृषभदेवके पास प्रजाको भेजा कि वह विशिष्ट ज्ञानी है, वह तुम्हारी समस्त समस्यावोंका हल करेगा । प्रजाजन वहां पहुंचे । तो वृषभदेवने उनको सब विधि बतायी । अब इस तरहसे कृषि करो । अब यहां जीव जन्तु भी विरोधी हो गए, लोगोंमें भी परस्पर कलुषताकी भावना जगने लगी । तो अब ये लोग शस्त्र लेकर दुष्टोंसे सज्जनोंकी रक्षा करें, व्यापारकी विधि, खेतीकी विधि, हस्तकारी कला सेवा आदिककी विधि ये सब आदिनाथ देवने बताये । तबसे लोगोंमें यह प्रसिद्धि हुई कि हम लोगोंका परमपिता हम लोगोंका सृष्टा ब्रह्मा रक्षक आज मिला है । तो वह कर्मभूमिकी एक नवीन रचना भी उस समयसे सृष्टि माननेका सिल-सिला चल गया ।

ऋषभदेवकी ब्रह्मरूपता—ये आदिमबाबा ये ही ब्रह्माके रूपमें कहे जाते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। ब्रह्माकी उत्पत्ति नाभिसे होती है। तो आदिदेवकी उत्पत्ति नाभि राजासे हुई थी, ब्रह्मा चतुर्मुख माने गए हैं। तो ये आदिदेव जब तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदयसे सम्पन्न हुए तब इनका मुख चारों ओर समवशरणमें दिखता था। जैसे स्फटिकमणिकी प्रतिमाका मुख ओर अधिक नहीं तो दो तरफसे तो दिखता ही है। पीछेसे भी देखो तो ऐसा लगेगा कि इसका मुख इस तरफ है क्योंकि वह स्फटिक स्वच्छ है। और, अगल बगलसे भी कुछ समझमें आता है। तो जिसका शरीर स्फटिककी तरह निर्मल बन गया तो परमौदारिक शरीरी प्रभुका मुख अगर चारों ओरसे दिखे तो इस में क्या आश्चर्य ? एक तो उनके शरीरका अतिशय बन जाता और फिर इन्द्रोंका अतिशय। तो चतुर्मुख ये आदिदेव हैं। इस तरह सृष्टि की जो कल्पना है वह कर्मभूमि के आदि समयकी कल्पना है।

सृष्टि और प्रलयका रूप—कहीं यह नहीं होता कि कुछ न था और असत् आ गया। जब कभी प्रलय भी होता है तब भी इस कर्मभूमिके आदि में प्रलयके आदिमें प्रलयके बाद सृष्टि नहीं हुई। वहां बराबर ठीक समय चल रहा था। अब इस कलिकालके बाद जिस कालमें दोनों काल सामिल हैं पंचम और षष्ठ इसके बाद प्रलय मचेगी व सारे विश्वमें न होगी किन्तु भरत ऐरावतके आर्यखण्डमें होगी। भरत क्षेत्रके समस्त प्रदेशोंमें न होगी। तो उस समयके जीव यहां फिर भी कुछ बच जाते हैं और बहुतसे मर जाते हैं तो वे थोड़े ही समयमें यहां वहां उत्पन्न होकर यहीं फिर भी पैदा हो सकते हैं। तो सृष्टि कोई एक अपूर्व हुई हो और वहां किसी एक चैतनने अधिष्ठान किया हो यह बात नहीं बनती प्रलयकालके तो लक्षण अभीसे ही नजर आने लगे हैं। होगा बहुत दिनोंके बाद प्रलय, मगर साधन तो पहिलेसे ही जुटना चाहिये ना, ये अणुबम क्या हैं ? कहते हैं कि ७ दिन अग्निकी वर्षा होगी, अरे ७ दिन क्या ? अधिक दिन भी हो तो आश्चर्य क्या ? ये जितने आज वैज्ञानिक साधन बढ़ रहे हैं अणुबम, रसायनबम, अनेक प्रकार के जो आविष्कार हो रहे हैं और होते जा रहे हैं यह सब उस प्रलयकालकी ही तो तैयारीका प्रारम्भ जैसा लगता है। आजकल जो राकेट चलता है यह भी एक मारकअस्त्र है। तो जो अनेक प्रकारके बम बनाये जा रहे हैं वे कभी न कभी तो फूटेंगे ही। तो प्रलयकाल होगा तो हजारों वर्षोंके बाद मगर लक्षण अभीसे दिखने लगे हैं। प्रलय होनेपर भी सर्वाव्यवहार लोप नहीं होता, और सृष्टिके समय कहीं असत् की सृष्टि नहीं होती। कोई एक सामान्य व्यवहार चल रहा था जिसमें कुछ असुविधा आने लगी हो वहाँ एक विशिष्ट पुरुष जन्म लेता है जो सब लोगोंको एक सुविधामें लगा देता है। उसीका नाम सृष्टा है।

व्यवहारकी अन्योपदेश पूर्वकतासे लोकमें अनादि परम्पराकी सिद्धि—अन्यके उपदेश पूर्वक वचनव्यवहार होता है, प्रतिअर्थ नियतता होती है इससे यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्ध नहीं होता कि कोई एक मात्र चेतन था जिसके स्वामित्वमें यह व्यवहार चला । हाँ यदि केवल साधारणतया साध्य मानेंगे अर्थात् व्यवहार अन्योपदेश पूर्वक होता है तो यह बात मानी जा सकती है क्योंकि यह जगत अनादि है और अनादिसे ही एक दूसरेको समझाता आया है और यों समझाते हुए वे व्यवहार करते आ रहे हैं। अन्योपदेश पूर्वकता इस परम्परामें घटित हो जायगी किन्तु बिल्कुल ही प्रथक कोई एक चेतन था उसने सब व्यवहार सिखाया यह बात सिद्ध नहीं होती। अनादिकालसे व्यवहार चला आया है सभी पुरुषोंका व्यवहार चला आ रहा है वह दूसरोंके उपदेशपूर्वक है यह बात इष्ट ही है। जैसे इस धार्मिक समाजमें बच्चोंको माँ मन्दिर आना सिखाती है तो उस माँ की माँने उसे सिखाया होगा। यों चला आ रहा है । अपने बच्चोंको बचपनमें मन्दिर ले जाय और वहाँ बैठना, बन्दन करना सिखाया अनेक बातें ये सब पूर्वोपदेश पूर्वक चली आ रही हैं, तो परम्परासे चली आ रही हैं, अन्य उपदेशपूर्वक व्यवहार है । यह हेतु तो संसारकी अनादिताको सिद्ध कहता है न कि सृष्टिको । उपदेश पूर्वकता व्यवहार है। यह हेतु तो संसारकी अनादिताको सिद्ध करता है न कि सृष्टिको उपदेश पूर्वकता व्यवहारमें है, सो इससे यह तो न सिद्ध होगा कि कोई एक ही चेतनके उपदेशपूर्वक हुआ। और, तीसरी बात यह है कि ईश्वरके मुख नहीं होता । शरीर ही नहीं तो बिना मुखके उपदेश क्या करें जैसे अन्य मुक्त आत्मा जो अनादि मुक्त नहीं माने गये कर्ममुक्त माने गये वहाँ भी तो शरीर नहीं, इन्द्रिय नहीं मुख नहीं वे भी तो उपदेश नहीं करते। तो शरीर इन्द्रिय मुखके बिना उपदेश ही कैसे सम्भव हो सकता है ?

प्रभुतामें रागमय प्रवृत्तिकी असंभवता—जिस समय ऋषभदेवने युगके आदिमें उपदेश किया था लोगोंको सुविधायें प्रदान करनेके लिये उस समय वे भगवान न थे। उनका शरीर इन्द्रिय मुख पुरुषोंकी ही तरह था। वे शंकाओंका समाधान करते थे। किन्हींकी बातका जवाब देते थे, अनेक प्रकारके विधि विधान बताते थे । वे उस समय गृहस्थीमें ही थे। और, जब वे भगवान भी हुये, अरहंत भी हुये, सकल परमात्मा हुये उस समय भी उनका उपदेश पुरुषोंकी भाँति मुखसे हुआ करता हो सो सम्भव नहीं। कहीं बताया है कि सर्वाङ्ग दिव्य ध्वनि खिरती थी, कहीं मुखसे भी बताया है सो सर्वाङ्गमें मुख भी आ गया, मुखसे बोलनेकी प्रसिद्धि है, पर उसका भाव यह है कि दिव्य ध्वनि सर्वाङ्गसे हुई। खैर कैसे भी उपदेश हुआ हो पर उनकी वह ध्वनि इच्छा रहित है, और वह ध्वनि हम आप जैसी शब्दक्रमको लिये हुए नहीं है । वह ध्वनि ॐकारमय है अतएव सर्वाक्षर है। निरक्षरी कोई भी ध्वनि निकल रही हो सब लोग अपने अपने अभिप्रायसे उसमें अक्षरोंका आरोप कर लेंगे। जैसे जब रेलगाड़ी चलती है धुवां वाला इंजन चलता है तो उसकी आवाजमें अनेक प्रकारके अक्षरोंका लोक आरोप करने लगते है, ऐसे ही भगवानकी दिव्य ध्वनि निरक्षरी है तो श्रोता लोग उससे अपने अपने ज्ञान विकासके माफिक अपने अभिप्रायका अर्थ निकाल लेते हैं, और चूंकि उन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का वह सोचना शब्दपूर्वक है अतएव उस ध्वनिमें उनको वे ही शब्द नजर आते हैं यों ध्वनि सर्वाक्षरमय है और मूलमें अनक्षर है। जो कल्पनागत अधिष्ठायक प्रभुके अब न शरीर है न इन्द्रिय है तो उसका उपदेश होना सम्भव नहीं है, फिर उपदेश पूर्वक सृष्टिके आरम्भमें व्यवहार चला है यह कहना तो अयुक्त है, न सृष्टि सिद्ध है न प्रलयकालमें ज्ञानकी लुप्तता सिद्ध है न प्रभुके उपदेशका बनना सिद्ध है।

पदार्थोंकी ठहर ठहरकर प्रवृत्ति होनेसे एक चेतनाधिष्ठितताकी सिद्धि का प्रयत्न — अब शङ्काकार एक नया अनुमान और रख रहा है। ये जो जगतके दिखने योग्य अथवा न दिखने योग्य जो कुछ भी भूत समुदाय, पदार्थ समुदाय हैं, परमाणु आदिक हैं जो कि लोक–रचनाके हेतुभूत हैं ये सब अपने कार्यकी उत्पत्तिमें सातिशय बुद्धिमान अधिष्ठाताकी अपेक्षा रखते हैं, अर्थात् जिन चीजोंसे यह सारी रचना बनी है वे चीजें निर्माणकार्यमें, अपने परिणमनमें किसी एक बुद्धिमानकी अपेक्षा रखती हैं क्योंकि ये ठहर ठहर कर क्रिया करती हैं। तो जो चीज ठहर ठहर कर क्रिया करे वह किसी एकके द्वारा अधिष्ठित होकर ही क्रिया कर सकती है। जैसे बढ़ई बसूलेसे लकड़ीको छीलता है तो बसूला ठहर ठहर कर चलता है तो उसका अधिष्ठायक बढ़ई है। सो जो चीज ठहर ठहर कर काम करती है समझो उसकी परिणति कराने वाला कोई एक है। तो देखो ना, दुनियामें जो इतने पदार्थ हैं ये पदार्थ काम कर रहे हैं मगर स्थिर होकर क्रिया कर रहे हैं, निरन्तर तो नहीं परिणम रहे हैं, एक स्थूल दृष्टिसे देखना है, चीज ठहरी है और थोड़ी देरमें बदल गयी, तो ठहर ठहरकर ये बदलते रहते हैं, लगातार निरन्तर नहीं बदलते रहते। जैसे मानो दरी बनाई गई तो यह १०–५ वर्ष तो ठहरी रहेगी, इसके बाद सड़ेगी, बदलेगी, टूटेगी क्रिया होगी। तो इससे सिद्ध है कि इनके बनानेवाला कोई है। जिस वस्तुमें ठहरकर काम हो उस वस्तुका कोई एक अधिष्ठायक हुआ करता है। ये सारे पदार्थ जो भी नजर आ रहे हैं और नजर भी न आयें वे भी युक्तिगम्य होकर स्पष्ट समझमें आ रहे हैं कि ये पदार्थ ठहर ठहरकर क्रिया करते हैं, हलन चलन करते हैं अपनी बदल करते हैं, इसका कोई एक अधिष्ठाता जरूर है और जो वह एक अधिष्ठाता है वह अतिशयवान कोई एक बुद्धिमान ही हो सकता है।

पदार्थोंकी ठहर ठहर कर प्रवृत्ति होनेसे एक चेतनाधिष्ठितता मानने में विडम्बना — ठहरकर प्रवृत्ति होनेसे एक अधिष्ठायक होनेकी आशंकाके समाधान में एक छोटीसी ही बात सुनो कि ये पदार्थ तो ठहर–ठहरकर क्रिया करते हैं, मगर ईश्वर भी तो ठहर–ठहर कर रहा है। सृष्टि रच दी, अब थोड़ा आराम कर रहा है। थोड़े समय बाद उसके बीचमें ही कुछ पदार्थोंका अदल बदल कर लेगा। तो ठहरकर जो क्रिया करे वह किसी एकके नियंत्रणमें माना है, तुम्हारा तो ईश्वर भी ठहरकर प्रवृत्ति कर रहा है। देखो ना, हम पैदा हुए और ठहरे ठहरे हैं अभी। हमारे बारेमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ईश्वर चुपचाप है। इतने ये अजीब पदार्थ बन गये ये भी अभी ठहरे हुए हैं तो इनके बारेमें भी अभी ईश्वर चुपचाप है। तो जब ये चेतन अचेतन समस्त पदार्थ अभी ठहरे हुए हैं तो इसका अर्थ है कि इनके बनाने वाला भी अभी ठहरा हुआ है। वह बनाने वाला भी ठहर ठहरकर कार्य कर रहा है तो उस बनाने वालेका भी बनाने वाला कोई होगा। क्योंकि तुमने नियम बना डाला है कि जो ठहर ठहर कर प्रवृत्ति करे उसका कोई बनाने वाला है। और, जो ईशका नियंता हो गया उसमें भी वह आदत होगी कि ठहरकर प्रवृत्ति करे। तो उसका भी कोई नियंता होगा। तो चलो यों उस नियंताकी अभी सृष्टि नहीं बन सकी फिर विश्वकी सृष्टि कब बने तो यह अनवस्था दोष होगा।

एकाकाशान्तर्गत होनेसे विश्वकी एक बुद्धिमन्निर्मितताहोनेपर विचार

शंकाकारका कहना है कि यह सारी दुनिया कोई ७ भुवन कहते कोई १४ भुवन कहते कोई ३ भुवन कहते यह सर्व विश्व किसी बुद्धिमानके द्वारा रचा गया है एकाकाशान्तगर्त होनेसे। कैसे समझा जाय ? देखो— एक मंदिर या महल बनाया गया तो उस महलके भीतरकी दीवालें कमरेके भीतरकी ये सब चारों ओर की दीवालें किसी एक कारीगरसे ही बनी हैं। ऐसा आप लोग अंदाज रखते हैं कि नहीं ? जब महल बनता है तो एकदम लगातार बनता है। थोड़ा थोड़ा करके तो नहीं बनता कि एक भींट आज उठाली एक कारीगरने और उससे लगी हुई दूसरी दिशा वाली भींट अगले साल दूसरे कारीगरने उठाली। करीब करीब ऐसा समझमें आता है ना कि महलके भीतरकी जितनी दीवाले हैं वे एक कारीगरके नियंत्रणमें बनती हैं। तो इसी तरहसे यह तो है एक छोटा महल और यह सारी दुनिया है एक बडा महल, वह ३, ७ अथवा १४ भुवनों वाली दुनिया एक वस्तु (आकाश) के अन्तर्गत है, सो यह विश्व भी किसी एक नियंताके नियंत्रणमें ही रचित है। इस आशंकाका समाधान यह है कि यह कोई नियम नहीं है कि एक महलके अन्तर्गत जितनी दीवालें हों उन सबका निर्माण एक कारीगरके द्वारा ही होता हो यद्यपि प्रायः करते हैं लोग ऐसा ही कि एक ही बारमें एकदम लगातार महल खड़ा कर दिया, बीचमें काम बन्द न हो, साधन सब पहिलेसे ही जुटा लिया। लेकिन किसीके ऐसा साधन न हो तो कोई कारीगरोंसे भी वह महल बन सकता है और बीचकी दीवालोंमें भी भेद पड सकता है। और, एक बार में भी लगातार भी महल बन जाय वहाँ भी एक कारीगरने नहीं बनाया। उनका समान अभिप्राय था। सभीने अपने अपने अभिप्रायकी चेष्टा की और निर्माण किया। तो यह भी युक्ति संगत नहीं है कि यह समस्त लोक महलकी तरह एक सूत्रधारके द्वारा ही बनाया गया है। इस प्रकार एक इस मुख्य प्रसंगमें जिसमें सभी लोग फंसे हुए हैं, जिस कर्तृत्वके आशयमें सबकी प्रवृत्ति चल रही है यह बात दिखाई गई कि यह सब किसी एक चेतनके द्वारा किया गया नहीं और इसका सूक्ष्मतासे विश्लेषण करें तो ये सब हम आप एक चेतनके द्वारा भी किए गये नहीं है। सर्व पदार्थ सत् हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपना अपना उपादान लिये हुए हैं सो अनुकूल पर निमित्तको पाकर स्वयं अपने द्रव्यत्व गुणोंके कारण निरन्तर परिणमा करते हैं। यही बात आज है और यही बात अतीतकालमें सदासे चली आयी है और यही बात भविष्यमें सदा चलती रहेगी। इस प्रकार उपादानको स्वतंत्र निरखना यह तो है एक हितका साधन और परस्पर यह एक दूसरेका कर्ता है ऐसी प्रवृत्ति करना यह है एक विकलताका साधन।

परस्पर अतिशय वृत्ति होनेसे जीवोंका एक अधिष्ठायक होनेकी कल्पना — अब कर्तृत्ववादके समर्थनमें एक अनुमान और दिया जा रहा है। ब्रह्मसे लेकर पिशाच पर्यन्त समस्त जीव लोक किसी एक चेतनके द्वारा अधिष्ठित होकर कार्य करनेमें समर्थ हो पाते हैं। वे अपना कार्य करनेमें एक ईश्वरके आश्रित हैं क्योंकि वे परस्पर अतिशयवृत्ति वाले हैं अर्थात् वे सब जीव एक दूसरेके आधीन हैं। तब इस से सिद्ध होता है कि आखिर जो सबसे बड़ा होगा वह भी एक किसी सर्व समर्थ एक के आधीन है। जैसे कि यहाँ पर देखा जाता है कि एक गांवका मुखिया है ऐसे ऐसे अनेक गाँवोंके मुखियापर नगरका एक मुखिया है, अनेक नगरोंका एक मुखिया है, अनेक देशोंका एक मुखिया है, तो इस तरह जब बहुतसे अतिशय वाले चढाव उतार वाले प्रभुताको लिये हुए लोग हैं तो ये सब किसी सार्वभौम नरपतिके आधीन हैं। जैसे इसी वर्तमान राज्य प्रणालीको देखलो कि जैसे ग्रामीणोंपर ग्रामका थानेदार है, अनेक थानेदार एक कोतवालके आश्रित हैं, अनेक कोतवाल एक एस. पी. के आश्रित हैं अनेक एस. पी. एक कमाण्डरके आश्रित हैं और अनेक कमाण्डर एक मिनिस्टरके आश्रित हैं। तो जब इसमें भी एक दूसरेसे अधिक विशेष अतिशय देखा जा रहा है देखा जा रहा है तो इसमें यह निर्णय है ना, ये सब एक उच्च कमान या सार्वभौम नरपतिके आश्रित है, इसी प्रकार जगतके जीवोंमें जब परस्पर अतिशय देखा जा रहा है, नरकीटोंसे छोटे देवनाओंका अधिक अतिशय, राक्षसोंका उनसे अधिक, यक्षोंका उनसे अधिक और इन्द्रोंका उनसे अधिक इस प्रकार परस्पर विशिष्ट विशिष्ट अतिशय वाले देखे जाते हैं तो इससे सिद्ध है कि इन सबमें एक विधाताकी परतंत्रा है अर्थात् ये सबके सब एक अनादिमुक्त आशङ्काका अब समाधान करते हैं। प्रथम तो अनुमान बनाकर जो दृष्टान्त दिये गये हैं उन दृष्टान्तोंसे ही यह समाधान हो जाता है कि जब यहांके थानेदार कोतवाल आदिक एक दूसरे अफसरके आश्रित हैं तो ये ही ईश्वरके आश्रित न रहे। फिर एक किसी चेतनकी अधिष्ठापना होना और परस्पर अतिशयवान होना इन दोनों बातोंका अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है। हाँ यदि केवल इतना ही कहा जाय कि ये सबके सब जीव किसी एक अधिष्ठाताके आधीन हैं तो यह बात युक्त है। प्रत्येक जीव चाहे वे स्वर्गोंके इन्द्र भी क्यों न हों, पूर्व भवमें उपार्जित किए हुए अदृष्ट के अनुसार कार्य करने व फल भोगनेमें समर्थ हैं और उनका अधिष्ठायक अदृष्ट है। तो जो जीव जन्म मरण करते हैं, सुख दुःख भोगते हैं उनकी इन परिणतियोंमें उनके द्वारा पूर्वोपार्जित कर्म निमित्त है पर कोई दूसरा चेतन किसी दूसरे चेतन कार्यके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए कर्ता हो कारण हो सो बात नहीं है।

चेतनकी परिणतिमें अचेतनकी निमित्तता—एक बात और जान लेनेकी है कि चेतनको तो कोई अन्य चेतना निमित्त भी नहीं बनती किसी काममें। चेतनके विभावमें सुधार बिगाड़में अचेतन निमित्त हुआ करते हैं, चेतनके किसी भी सुधार बिगाड़ आदिकमें चेतन निमित्त नहीं है इस बातको कुछ विशेषतासे सोचते जाइये। कदाचित् यह शंका कर सकें कि एक जीवको दूसरा ज्ञानी पुरुष उपदेश देता है और उसके सुधारमें कारण बनता है तो देखो ना कि एक चेतनके सुधारमें कारण बनता है, तो देखो ना कि एक चेतनके सुधारमें दूसरा चेतन निमित्त हो गया, किन्तु आशंकाकार यहाँ यह भूल जाता है कि उस चेतनको जो सन्मार्ग प्राप्त हुआ है उसमें अन्तरंग निमित्त कारण तो कर्मोंका उपशम क्षयोपशम है और बाह्य कारण निरखा जाय तो वे वचन वर्गणायें, वे सब अचेतन चीजें बाह्य कारण हैं। किसी चेतनका चैतन्य स्वरूप इस चेतनको चिन्तनमें विषयभूत तो हो सकता है, आश्रयभूत तो हो सकता है, इसका ख्याल करके लक्ष्य करके स्वतंत्रतया यह अपने आपमें परिणमन करे यह बात तो हो सकती है पर कोई चेतन इसका निमित्त बने अथवा चैतन्यस्वरूप अन्य इसके सुधारका निमित्त बने यह बात कहाँ आयी ? निमित्त और आश्रयमें अन्तर है। आश्रय उसे कहते हैं जिसका लक्ष्य उपयोग करे, और उपयोगके लक्ष्यसे सम्बन्ध जिसका हो तो, न हो तो वह निमित्त कहलाता है। आश्रयभूत करनेकी बात चेतनमें सम्भव है अचेतनमें नहीं, क्योंकि अचेतन अचेतन परस्परमें जो कार्य कारणभाव है वह निमित्त दृष्टिसे है आश्रयदृष्टि वहाँ नहीं है। एक जीव चूंकि ज्ञानवान है अतएव किसी एक पदार्थको विषयभूत करके अर्थात् ज्ञानका आश्रय बनाकर अपनी कल्पना करके सुख दुःख पाता है। तो लक्ष्यमें दृष्टिमें विषयमें आये हुए पदार्थ आश्रयभूत हैं, निमित्त तो जीवको एक कर्मोंकी दशा हैं। तो कटीसे लेकर इन्द्र तक सभी जीवोंको अपने-अपने भावोंके द्वारा उपार्जित कर्म, अदृष्ट तो अधिष्ठायक है इस जीवको संसारमें रुलानेके लिये, जन्म मरण करानेके लिये सुख दुखकी प्राप्तिके लिए, किन्तु इस विश्वका अन्य कोई अधिष्ठायक हो ऐसा सम्भव नहीं है।

स्वरूपविरुद्धभक्तिमें निराकुलताका अनवसर—हम आप सब जीव आत्महित हो तो चाहते हैं और उस आत्महितके प्रयोजनसे ही परमेश्वरकी भक्ति करते हैं, किन्तु परमेश्वरका ऐसा स्वरूप समझा हो जिस स्वरूपके चिन्तनसे आत्महित हो सके और परमेश्वरकी भक्ति योग्य है और परमेश्वरका ऐसा स्वरूप सोचे जिस स्वरूपके चिन्तनमें उठा जीवका अनर्थ हो रहा हो, उससे तो आत्माका कल्याण नहीं। हितके लिये ही तो परमेश्वरकी भक्ति है। तब हम परमेश्वरके यथार्थ स्वरूपको जाने और जिस पद्धतिसे उसकी भक्ति करें वह पद्धति ऐसी हो कि जिससे हम जगजालसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

छुटकारा पा सकें। परमेश्वरका जब हम यह स्वरूप मान लेते हैं कि वह एक ऐसा समर्थ चेतन है, जो इन सारे विश्वके पदार्थोंकी रचना किया करता है तो भला सोचिये तो सही कि हित तो निर्विकल्प अवस्थाका नाम है जहाँ रंच आकुलता न हो उसको ही तो हितकी अवस्था कहते हैं। जहाँ विकल्प उठ रहे हों, विकल्परहित अवस्था न हो सकती हो वहाँ आकुलता कैसे दूर हो सकती है। एक चेतन इस सारे विश्वको रचता है, मुझे भी रचता है, मुझे भी सुख दुःख देता है, मैं स्वयं प्रभु नहीं, समर्थ नहीं, अपने स्वरूप स्वातत्र्यकी सुधि नहीं और एक आश्रित उपयोग बन गया तो इस प्रकारके आकर्षणमें जो कि भय पूर्वक हुआ है, जो मैत्री और सन्तोषको उत्पन्न नहीं कर सकता, जिस भक्तिका मूल भय है उस स्वरूपकी भक्तिमें हमको निराकुलता कहां मिल सकती है।

स्वरूपानुकूल भक्तिमें निराकुलताकी संसिद्धि—यह आत्मा एक ज्ञानपुञ्ज है, ज्ञान ही इसका समस्त कलेवर है, एक जिस स्वरूपसे निर्माण हुआ है वही स्वरूप है अर्थात् ज्ञानके सिवाय इस जीवमें हम और कुछ नहीं पाते जिससे जानें कि यह जीव है। तो ज्ञानमात्र यह जीव है इसमें रूप, रस, गंध स्पर्श नहीं, इसमें हाथ पैर मुख आदिक तत्त्व नहीं, यह तो केवल ज्ञान शरीरी है। ज्ञानमात्र इस आत्माको समता जगे शान्ति मिले ऐसा क्या उपाय हो सकता है? यह ज्ञानमात्र निस्तरंग हो, इस ज्ञानमें कोई कल्लोल न उठे, रागद्वेषकी तरंग न जगे किसी भी परका तर्क वितर्क न जगे ऐसा यह ज्ञान जब शान्त सुस्थित होगा तब समता निराकुलता, निर्विकल्पता प्राप्त होगी। तो ऐसा करनेके लिये हम क्या ध्यान बनायें, ऐसा ही निस्तरंग ज्ञानमात्र मेरा स्वरूप है इसका ध्यान बने, ऐसा ही प्रभुका स्वरूप है और वह इस रूपमें व्यक्त हो चुका है इस प्रकारका ध्यान बनायें तो यों परमेश्वरका स्वरूप सोचने से उसकी उपासनासे हमारे हितकी सिद्धि हो सकती है, पर विरुद्धस्वरूप विचारनेमें अपने भय पूर्वक उसकी उपासना करनेमें उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

सर्वकर्तृत्ववादका मूल निकास निरुपाय सर्वज्ञत्वका समर्थन—यह जो प्रकरण चल रहा है ग्रन्थके वक्तव्यके संदर्भमें, सीधा यह प्रकरण न आता था। प्रकरण था ज्ञानके स्वरूपको बतानेका। प्रत्यक्षज्ञान निरावरण होता है इसका नाम सुनकर अनादिमुक्त सदाशिव सर्वसमर्थ अधिष्ठायक एक चेतनकी श्रद्धामें लोग यहां यह कह उठे कि सर्वज्ञता निरावरण होनेसे उत्पन्न नहीं होती, किन्तु जो सर्वज्ञ है अनादिसिद्धि है, निरावरण स्वयं अनादिसिद्धि है। उसमें आवरण था ही नहीं, और फिर इस ही बातके समर्थनके लिये कि कैसे समझा जाय कि वह अनादिमुक्त निरावरण सदाशिव। और सर्वज्ञ है। इसका हेतु दिया गया था कि वह महेश्वर अनादिमुक्त सर्वज्ञ है क्योंकि जगतका कर्ता वह हो सकता है जो समस्त विश्वका जानने वाला हो। तो सर्वज्ञमाकी सिद्धिके लिये कर्तृत्ववादका प्रकरण आया, लेकिन समस्त विश्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का कोई एक करने वाला है और अनादिसे ही सर्वज्ञ है यह बात सिद्ध नहीं होती। सर्वज्ञ वह है जिसने कि पहिले योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे तपश्चरणसे सम्यक्त्व ज्ञान चारित्रके प्रतापसे जिनका ज्ञान अभी विकसित हुआ वह महापुरुष सर्वज्ञ होता है।

विविधिस्वभावाकारादिमान् पदार्थोंकी एक स्वभावपूर्वकताकी असिद्धि जो विश्वकर्ता हो वही सर्वज्ञ होता है इस सम्बन्धमें बहुत विस्तारसे विचार किया गया और प्रतीत हुआ है कि विश्वकर्तृत्व किसी एक चेतनमें नहीं है। अब एक सीधीसी बात आखिरी सोचें कि परमेश्वर एक स्वभाव है या अनेक स्वभावी। अनेक स्वभावी माननेसे तो प्रभुकी अनित्यता सिद्ध होती जो कि समर्थकका स्वयं अनिष्ट है। तब एक स्वभावी रहा अर्थात् उस प्रभुका एक रूपसे बर्ताव एक प्रकारका स्वभाव, सम सुस्थित गम्भीर कोई एक ही तो स्वभाव है। तो जो एक स्वभावी है वह अनेक स्वभाव रखने वाले, विचित्र परिणमन करने वाले अनेक पदार्थोंका कारण नहीं बन सकता। ये पर्वत पृथ्वी वृक्ष जीव लोक नाना शरीर ये एक स्वभावपूर्वक नहीं हैं, इन में विचित्र स्वभाव पड़ा हुआ है क्योंकि इनमें विभिन्न तो प्रदेश हैं, विभिन्न समय है, विभिन्न आकार है। किसीका कुछ आकार किसीका कुछ। कोई किसी समय किसी प्रकार परिणम रहा कोई किसी प्रकार। यदि ये सारे विश्वके पदार्थ किसी एक स्वभावपूर्वक होते तो सब एकरूप ही होते जो अनेक आकार रखते हैं अनेक स्वभाव रखते हैं वे एक स्वभाव पूर्वक नहीं होते। जैसे घड़ा, कपड़ा, मुकुट गाड़ी आदिक अनेक पदार्थ ये अपना भिन्न स्वभाव भिन्न क्रिया, भिन्न आकार रखने वाले हैं तो ये एक स्वभाव पूर्वक नही है।

सहकारी सन्निधानसे एकका विविध कार्यकारित्व माननेका प्रस्ताव अब यहाँ शङ्काकार कह रहा है कि क्या हर्ज है। वह एक चेतन एकस्वभावी बना रहे और अनेक स्वभाववाले अनेक आकार वाले इस कार्यका करनहार रहा करे इसमें कौनसी आपत्ति है? क्योंकि वह एकस्वभावी कर्ता नाना प्रकारके सहकारी कारणोंके सन्निधानमें नाना प्रकारके कार्य करता है। कर्ता तो एकस्वभावी है पर जिन जिन कारणोंकी उपस्थितिमें कार्य किया जा रहा है वे कार्य तो नाना हैं। इसलिये नाना कार्य हो जाते हैं। क्योंकि वह एकस्वभावी कर्ता नाना प्रकारके सहकारी कारणोंके सन्निधानमें नाना प्रकारके कार्य करता है। कर्ता तो एकस्वभावी है पर जिन जिन कारणोंकी उपस्थितिमें कार्य किया जा रहा है वे कार्य तो नाना हैं। इसलिये नाना कार्य हो जाते हैं। जैसे एक स्वर्णकार जिन-जिन यंत्रोंसे सहायता लेकर सोने चांदीके आभूषण गढ़ता है, वे आभूषण उतनी तरहके अलग-अलग आकारके बन जाते हैं। तो जैसे वह स्वर्णकार कर्ता तो एक है और अपनी प्रकृति एक रख रहा है लेकिन किसी छोटे यंत्रसे बनाता है तो छोटी आकार वाली चीज बना लेता है इसी प्रकार वह चेतन कर्ता तो एक है पर एक स्वभावी होकर भी नाना सहकारी साधनोंके कारण नाना प्रकारके आकारोंको रच

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता है ।

सहकारी सन्निधानसे एकका विविध कार्यकारित्व माननेपर अनेक स्वभाव तत्वकी आपतितता—अब कर्ताके एकस्वभावताका समाधान देते हैं कि यहांपर भी एक स्वभाव सिद्ध नहीं हो सकता। एक स्वर्णकार भले ही बीसों तरहके यंत्र और साधनोंकी मदद लेकर बीसों तरहके आभूषण गढ़ रहा है लेकिन जिस समय जो यंत्र लिया स्वर्णकारने उस समय उन साधनोंके अनुसार स्वर्णकारके भाव अभिप्राय आदिकमें अन्तर आ गया। तब वह बनाने वाला स्वर्णकार एकस्वभावी न रहा। अगर नाना यंत्रोंको उपयोगमें लेकर भी एकस्वभावी रहे तो इसका अर्थ है कि उन यंत्रों और साधनोंके कारण यहां अतिशय कुछ नहीं पैदा हो सका, क्योंकि यह एक स्वभावी हो रहा। जब उसमें अतिशय न बना तो अनेक साधनोंकी अकिञ्चित्-करता रही और तब अनेक कार्य बन नहीं सकते। तो ये सहकारी कारण जो कि नाना प्रकारके हैं यदि कर्ताके स्वभावमें भेद न डाल सके क्योंकि इच्छामें, ज्ञानमें, प्रयत्नमें, विकल्पमें यदि अन्य अन्य समर्थताके कारण न बन सके तो ये सहकारी ही नहीं हो सकते। अन्यथा याने स्वरूपमें भेद तो आये नहीं और सहकारी अन्य चीज बन जाय तो अटपट कुछ भी सहकारी बने। इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि एक सच्चिदानन्दमय कोई प्रभु नाना प्रकारके जगतके इन पदार्थोंका करनहार है। कितनी विचित्रतायें हैं यहांके पदार्थोंमें, एक ही जातिका जीव ले लो। दो इन्द्रिय जीव ही ले लो। कितनी तरहके दो इन्द्रिय जीव मिलेंगे। इन संसारी जीवोंकी तरह अगर बांटी जाय तो १९७।। लाख करोड़ भेद पड़ेंगे। ये शरीरके भेदसे ही तो कुल भेद हैं। इनमें अभी अचेतन पदार्थ छूट गए। तो इतने प्रकारके विभिन्न जीवोंको नाना अचेतनोंको एकस्वभावी कोई चेतन रचे यह बात सम्भव नहीं है।

सृष्टिकर्तृत्वकी दृष्टि—जीव लोकको, इस विश्वको यदि सृष्टिके रूपमें ही निरखना है, तो यों निरखिये ! जगत में जितने प्राणी हैं ये सब जीव जैसा कर्म करते हैं, जैसा बन्धन होता है उस प्रकारका फल भोगते हैं जन्म मरण करते हैं। इस दृष्टि से स्पष्ट है कि प्रत्येक जीव अपनी सृष्टिका कर्ता है। अब जरा और बढ़ो, जीव जीव जितने हैं ये समस्त जीव एक जातिके हैं और इनका एक स्वरूप है। ये सब जीव एक नहीं हैं, किन्तु स्वरूप इन सबका एक है, अर्थात् सब चेतनात्मक हैं, ज्ञानात्मक हैं, तो स्वरूपदृष्टिसे एक हैं अर्थात् सभी जीव एक स्वरूप रखते हैं। अब इस प्रसङ्गमें सृष्टि कर्तृत्वका भी ध्यान रहा और उस एक स्वरूपका भी ध्यान रहा, लेकिन बीचमें वह विवेक न रक्खा कि स्वरूप सृष्टिकर्ता नहीं होता, किन्तु व्यक्ति सृष्टिकर्ता होता है। प्रत्येक आत्मा जो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके चतुष्टयसे युक्त है ऐसा व्यक्ति सृष्टि का करने वाला है, तो व्यक्तिमें अर्थ क्रिया नहीं होती। इसको एक मोटे रूपमें यों समझलों कि जैसे किसीको दूध लावो। तो दूध कहाँसे लावोगे ? गायसे लायेंगे।...

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किस गायसे लावोगे ? किसी एक गायसे, व्यक्ति रूप गायसे लायेंगे, और गाय गाय सब एक गाय जाति कहलाती है वह जाति भी तो गाय कहलाती । कोई गाय सामान्यसे दूध ला सकता है क्या ? अपना अस्तित्व रखने वाली अनेक गायोंमें सदृशता को बताने वाला जो स्वरूप है उस स्वरूपका नाम गाय जाति है, तो दूध कहाँसे मिलेगा, गाय व्यक्तिसे या गाय जातिसे ? अर्थक्रिया कहाँ होगी व्यक्तिमें या जातिमें । तो ये एक एक जीव ये जुदे जुदे व्यक्ति हैं, ये व्यक्ति अपने आपकी अर्थ क्रिया, सृष्टि कर रहे हैं यह बात एक ओरकी है और सभी जीव स्वरूपदृष्टिसे एक हैं, यह बात एक ओरकी है, इन दो ओरकी बातों को मिलाकर यह भाव बन जायगा कि सभी जीव सृष्टिकर्ता हैं, सभी ईश्वर हैं, इस दृष्टिमें ये सब स्वरूपसे एक हैं तब अर्थ यह निकला, भाव यह बना कि एक ईश्वर इस समस्त सृष्टिका करने वाला है लेकिन इसमें भाव क्या है मर्म क्या है इसे पहिचानें, और उसे व्यवहारमें कैसे लायें ? सो यह यों नहीं बनता कि वे दो बातें तो दो जगहकी हैं। सामान्यदृष्टिसे स्वरूप निरखा गया, विशेष दृष्टिसे सृष्टि कर्तृत्व निरखा गया। दो नयोंका विषय दो जगह है। अब सृष्टि कर्तृत्व को व्यक्तिसे युक्त न करके और शक्तिसे, सामान्यसे स्वरूपसे युक्त कर देते हैं तो यह बात समझमें यथार्थ बनेगी इस तरह तो नयोंके खोज और मिलानसे सृष्टि कर्तृत्व सामान्य मान लेंगे, पर कोई एक स्वतंत्र प्रभु चेतन जो वह भी अपनी आवान्तर सत्ता रखता है और जगतके ये जीव लोक जो अपनी विशिष्ट सत्ता रखते हैं इसको वह करे, यह बात सम्भव नहीं है, प्रत्यक्षसे भी नहीं जाना जा रहा है न किसी अन्य प्रमाणसे भी यह सिद्धि हो सकती है। इससे यह मानो कि विश्वकर्ता होनेसे सर्वज्ञ नहीं हुआ करता किन्तु निरावरणता आनेसे ही यह आत्मा स्वयं सर्वज्ञ होता है।

आवरणके विश्लेषसे सर्वज्ञताके विकल्पकी सिद्धि—सिद्धान्तोंकी परीक्षा करानेके उपायोंको बतानेके अर्थ इस ग्रन्थका निर्माण हुआ है अतएव इसका नाम परीक्षामुखसूत्र है। परीक्षामें मुख्य साधन है प्रमाण। और इस ग्रन्थमें आदिसे लेकर अन्त तक एक प्रमाणका ही अन्वीक्षण किया गया है। प्रमाणके अनुकूल, प्रमाणके स्वरूप, प्रमाणके भेद, प्रमाणके उदाहरण इन ही सब विषयोंसे व्याप्त यह ग्रन्थ है। इस प्रकरणमें यह कहा जा रहा था कि प्रकरणके दो भेद हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्षके दो भेद हैं—सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें तो एकदेश निर्मलता रहती है। जैसे आँखों देखा, यह अमुक पदार्थ है, यह लोग कहते हैं व्यवहार में कि हमने प्रत्यक्ष देखा ! देखना प्रत्यक्ष नहीं कहलाता। जो इन्द्रिय मनके आधीन ज्ञान हैं वे सब ज्ञान सिद्धान्तमें परोक्ष माने गये हैं, पर दार्शनिक शास्त्रमें चूंकि विविध भाषकोंसे वाद-विवादका मुख्य काम रहता है। अतएव इन्द्रियज ज्ञानको भी प्रत्यक्ष माना है। कारण यह है कि इन्द्रियज ज्ञानमें स्पष्टता कुछ प्रतिभास होती है। अभी हमने खुद आँखों देखा। इस ज्ञानमें उसे सन्देह नहीं रहता है। दूसरा है पारमार्थिक प्रत्यक्ष अर्थात् वास्तविक प्रत्यक्ष अनारोपित प्रत्यक्ष। यह पारमार्थिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यक्ष आवरणके विश्लेषसे उत्पन्न होता है। अवधिज्ञान हो तो अवधिज्ञानावरणके योग्य विश्लेषसे अवधिज्ञानकी उत्पत्ति हुई। मनःपर्ययज्ञान हो तो मनःपर्ययज्ञानावरण योग्य विश्लेषसे उसकी उत्पत्ति हुई। यहां विशिष्ट क्षयोपशमरूप विशेष है। क्षयोपशमसे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान भी होते हैं किन्तु इस क्षयोपशममें उससे कुछ एक विशेषता है कि जितने अंशमें क्षयोपशम है, जितने आवरण इसके विश्लेषित हुए उतना परिज्ञान करनेके लिए इसे इन्द्रिय और मन आदिक अन्य साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती। और जब आवश्यकता नहीं होती तो उस ओर उपयोग लगाते ही फिर बिना प्रयत्नके, बिना श्रमके वह सब कुछ ज्ञात हो जाता है। हां पारमार्थिक प्रत्यक्षमें केवल ज्ञान सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष है, तो वहाँ समस्त ज्ञानावरणका क्षय है और समस्त ज्ञान प्रकट है। तो यों प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञानोंमें मुख्य केवलज्ञान, आवरणोंके अपायसे उत्पन्न हुआ है अर्थात् आवरणके विनाश होनेपर सर्वज्ञता हुई है इसके विषयमें भी कुछ चर्चायें आईं, उनका भी समाधान किया।

प्रकृतिके ही सर्वज्ञत्वकी आशङ्का—अब इस प्रसङ्गमें प्रकृति कर्तृत्ववादी खुश होकर कह रहा है कि हाँ हां, यह बात बिल्कुल ठीक है कि आवरणके नष्ट होने पर सर्वज्ञता होती है। ऐसा नहीं है कि कोई अनादिमुक्त चेतन हो और उसकी सर्वज्ञता हो। सर्वज्ञता आवरणके दूर होनेपर ही होती है किन्तु वह सर्वज्ञता प्रकृतिके ही हुआ करती है चेतन आत्माके नहीं! इस सिद्धान्तमें आत्मा ज्ञानवान नहीं है। आत्मा केवल चैतन्यस्वरूप है। ज्ञानका तो आत्मामें जब समवाय सम्बन्ध होता है तब यह ज्ञानवान कहलाता है। देखिये! अनेक सिद्धान्त कुछ सामान्यरूपसे भी परखनेमें आ जाय तो सत् सिद्धान्तके माननेमें दृढ़ता आती है। यह बात ऐसी ही है कि जैसे किसी पदार्थका अस्तित्व माननेमें दृढता तब आती है ना जब भीतरमें यह प्रकाश होता है कि यह अन्य नहीं है, यह यही है। ज्ञानकी दृढतामें दुमुखी गति होती है—विधि और निषेधरूपसे जैसे यह चौकी है ऐसा ज्ञान करते ही अन्दरमें यह भी तो ज्ञान बना है कि चौकीके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ यह नहीं है। इसी प्रकार आत्मा ज्ञानमय है, हाँ ज्ञानमय है। एक तो यों साधारण श्रद्धावश स्वीकार कर लिया, रूढ़िवश लौकिक परम्परासे मान लिया और एक इस तरहसे मान लेना कि आत्मा ज्ञानमय ही है, ज्ञानका सम्बन्ध जुटता है तब ज्ञानमय बनता है ऐसी बात इसमें नहीं है किन्तु यह ज्ञानस्वभावमें तन्मय है यह प्रतीतिसिद्ध निर्णय है। जैसे जैसे अन्य विपरीत निषेधकी किरणें आती जाती हैं वैसे ही वैसे विधिमें एक दृढता आती जाती है। तो प्रकृति कर्तृत्ववादी यह कह रहा है कि वह प्रकृतिका ही आवरण है और प्रकृतिका ही आवरण दूर होता है तब प्रकृति ही सर्वज्ञ बनता है।

प्रकृतिका स्वरूप—प्रकृति तत्त्व क्या माना गया। तो सामान्यरूपसे यों समझ लीजिए कि जैसे सभी लोग कहते हैं चेतन और अचेतन। चेतन सामान्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहनेमें सब चेतन आ गए और अचेतन सामान्य कहनेमें सब अचेतन आ गए। इस तरहसे है आत्मा और प्रकृति। आत्मा तो है चेतन और प्रकृति है अचेतन। अथवा चेतन अचेतनकी जगह पुरुष और प्रकृति शब्द रख लीजिए पुरुष मायने आत्मा है, तो आत्मा है चेतन व प्रकृति है अचेतन आदमी नहीं। किन्तु कुछ इतनी विशेष बात और समझ लीजिए कि इस सिद्धान्तमें पुरुष भी एक है और प्रकृति भी एक है। जैसे कि चेतन अनेक हैं और अचेतन अनेक हैं, यों लोग मानते हैं यों न समझकर यों समझना है इस सिद्धान्तमें कि पुरुष भी एक है और प्रकृति भी एक है। इसी द्वांतके प्रति विकल्पमें कुछ लोग पुरुषको अनेक भी मानते हैं किन्तु प्रकृति वहां भी एक ही मानी गई है। प्रकृतिको लोग झट कुदरत कह देते हैं। यह तो कुदरतका खेल है। वह प्रकृति, वह कुदरत, वह क्या है ? वह सर्व परिणामोंका मूल कारण एक अचेतन है, और इस प्रकृतिसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है और इस प्रकृतिमें ही ज्ञानका आवरण पड़ा है तो इस तरह यह बात तो मान्य हो गयी कि आवरणके विनाश होनेपर सर्वज्ञता होती है, किन्तु वह सर्वज्ञता प्रकृतिके ही संभव है, क्योंकि प्रकृतिपर ही आवरण सम्भव है, आत्मामें आवरण नहीं है। आगममें भी लिखा है कि प्रकृतिके ही परिणमन हैं ये सब शुक्ल कर्म और कृष्ण कर्म, याने पुण्य कर्म, पापकर्म, अच्छे भाव, बुरे भाव, जितना जो कुछ परिणमन है, इसका संक्षेप बहुत कुछ समझनेके लिए यह प्रयोग करें कि जितने जो कुछ भी परिणमन परिवर्तन बदल अच्छेसे बुरे, बुरेसे अच्छे बहुत अच्छे जितने जो कुछ बदल हैं वे सब प्रकृतिके काम हैं, आत्मा तो अपरिणामी है। बदल केवल साक्षी चित्स्वरूपमात्र है। ऐसे सिद्धान्तमें यह आशङ्का की जा रही है कि प्रकृति हां सर्वज्ञ हो सकती है योंकि आवरण प्रकृतिके ही होता है और सृष्टि-कर्ता भी प्रकृति है, आत्मा या चेतन सृष्टिकर्ता नहीं है।

प्रकृतिके आवरण और कर्तृत्वकी असिद्धि—प्रकृति कर्तृत्ववादकी आशंका के समाधानमें केवल दो ही बातें कही जा रही हैं एक तो यह कि ऐसा मानना कि जो कुछ भी पुण्य पाप भाव हैं वे सब प्रधानके परिणमन हैं, प्रकृतिके परिणमन है, एक तो यह बात सङ्गत न रहेगी, दूसरे यह प्रकृति ही समस्त परिणमनका करने वाली है यह भी सिद्ध नहीं हो सकता। जब प्रकृतिका परिणमन सिद्ध नहीं है, प्रकृति लोकका करने वाला है, यह सिद्ध नहीं है तो इस आत्माको साधन बनाकर जो यह कहा गया कि प्रकृति ही सर्वज्ञ है, आत्मा सर्वज्ञ नहीं होता यह बात विचारणीय है।

प्रकृतिसे बुद्धि होनेका प्रतिपादन—अब शङ्काकार अपना सिद्धान्त कुछ विस्ताररूपमें रख रहा है कि कैसे कहते कि जगतकी सृष्टि प्रकृतिसे नहीं होती। जितनी सृष्टि हो रही है वह सब प्रकृतिसे उत्पन्न होती है। कैसे सृष्टि बनी ? उसका क्रम यह है कि प्रकृतिसे तो महत्त्व उत्पन्न हुआ। महत्त्व मायने एक ज्ञान, अध्यवसाय, संकल्प विकल्प ये प्रकृतिसे उत्पन्न हुए। जरा शङ्काकारकी बातको समझनेके लिए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्याद्वादसे सामंजस्यकी भी बीच बीचमें झलक होती रहे तो जरा अच्छा समझमें आयगा । स्याद्वादी जन कहते हैं कि प्रकृति के उदयका निमित्त पाकर ये संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं । यहाँ यह कहा जा रहा है कि नहीं, ये संकल्प विकल्प, ये ज्ञान तर्क बितर्क ये सब प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं । इनकी उत्पत्ति सीधे प्रकृतिसे ही हुआ करती है । निमित्तकी बात नहीं है, अर्थात् ये सब प्रकृतिके परिणमन हैं, इनका उपादान है प्रकृति । तो सर्वप्रथम प्रकृतिसे महान उत्पन्न हुआ महानका अर्थ है विषयोंमें अध्यवसाय करने वाली बुद्धि । इसीका नाम है अध्यवसाय, विषयोंमें प्रवृत्त करने वाली बुद्धि, एक लगाव रखने वाली बुद्धि । यही तो ज्ञान है । ज्ञान और कहते किस हैं । तो प्रकृतिसे महत्त्वकी उत्पत्तिकी उत्पत्ति हुई अर्थात् प्रकृतिसे बुद्धि प्रकट हुई । वस्तुतः बुद्धिका सत्त्व ही नहीं है आत्मामें । आत्मा तो एक चैतन्य स्वरूप है । यह सब शङ्काकार कह रहा है ।

बुद्धिसे अहंकार होनेका प्रतिपादन - बुद्धि उत्पन्न हुई है प्रकृतिसे और बुद्धिसे उत्पन्न होता है अहंकार । मैं सुन्दर हूँ, दर्शनी हूँ, मैं ऐसी पोजीशनका हूँ, मैं नायक हूँ । यों सुखी, दुखी, राव, रंक आदिक जितने भी अपने आपमें अहंरूपसे मानने के जो संकल्प हैं उन सबका नाम है अहंकार । क्यों जी, जैसे किसीने कहा कि कौन मुझे नहीं समझता कि मैं इस नगरका करोड़पति सेठ हूँ तो यह अहंकारकहलाया कि नहीं ? अहकार है । और कोई यह कहे कि मैं तो जनताका सेवक तुच्छ व्यक्ति हूं तो यह भी अहङ्कार कहलायेगा कि नहीं ?···यह भी अहङ्कार है । संकल्प विकल्प तो दोनोंने किया ना और संकल्प विकल्पमें अहंरूपसे प्रतीति करनेका नाम अहङ्कार है । तो आप समझ लीजिए कि लोकमें बड़े बड़े ज्ञानियोंके ज्ञान देहाती लोगोंके ज्ञान ये सब कुछ न कुछ अध्यवसाय रखते हैं । और उससे फिर इनकी वृत्ति यह उठी तो ये अहङ्कार हैं । इस प्रकृतिसे बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धिसे अहङ्कार उत्पन्न हुआ ।

अहङ्कारसे नियम, इन्द्रिय और भूतोंकी सृष्टिका प्रतिपादन —अहङ्कार बनानेसे फिर इन ५ तन्मात्राओंकी उत्पत्ति हुई शब्द स्पर्श, रूप, रस और गंध । ये ही ५ चीजें तो यहाँ विषयरूपसे समझमें आती हैं । ये सब जब अहङ्कारसे उत्पन्न हुए और अहंकारका मूल स्रोत है प्रकृति तो इसका यही अर्थ तो हुआ कि यह सब प्रकृतिका परिणाम है प्रकृतिका खेल है । तो इस अहंकारसे ५ बुद्धीन्द्रिय उत्पन्न होती हैं अर्थात् जाननहार इन्द्रिय —स्पर्शन, रसना घ्राण चक्षु और स्रोत्र । ये ५ प्रकार की इन्द्रियां हैं, ये जाननहार हैं अतएव ये बुद्धीन्द्रिय कहलाती हैं और इस ही अहंकार से ५ कर्मेन्द्रियां उत्पन्न होती हैं । वचन, हाथ पैर आदिक क्रियाशील इन्द्रियां अहंकार से उत्पन्न होती हैं । और फिर इस अहंकारसे उत्पन्न हुई उक्त १६ बातोंमेंसे ५ तन्मात्राओंसे ५ भूत उत्पन्न होते पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश । कैसे सबकी व्यवस्था बनी ? ये सब प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं । संक्षेपसे इसका भाव यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समझें कि आत्मा तो निर्लेप विविक्त अपरिणामी चैतन्यस्वभावमात्र है। अथवा यों समझिये कि जैसे स्याद्वादी जन परम शुद्ध निश्चय नयका विषय आत्माके सम्बन्धमें करते हैं उस रूपसे हैं, उस ही नयके स्वरूपको एकान्त करके कि आत्मा ऐसी ही है, इससे बाहर इससे ऊपर इसका व्यक्तरूप कुछ नहीं है यह तो है आत्माकी बात और जितने ये सर्जन हैं, सृष्टि हैं परिणमन हैं ये सब प्रकृतिकी चीज हैं। प्रकृतिसे बुद्धि हुई, बुद्धिसे अहङ्कार हुआ अहङ्कारसे ये बुद्धीन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय उत्पन्न हुए और इनमेंसे ५ भूत उत्पन्न हुए जो कि लोगोंको स्पष्ट नजर आ रहे हैं।

दृश्य पदार्थोंकी भौतिकता—यहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारके सिवाय और क्या नजर आता है? कोई कहे वाह ये आदमी नजर आ रहे हैं तो यह आदमी क्या है? पृथ्वी ही तो है? लोग कहते भी हैं कि यह शरीर क्या है, मिट्टी है मिट्टीमें मिट्टी मिल गई। एक बार कोई अक्कड़बाज आदमी बडी अकड़से चल रहा था तो रास्तेमें उसे एक छोटेसे पत्थरकी ठोकर लग गई। ठोकर लगनेसे वह पत्थर निकल गया उसमें गड्ढा बन गया, तो कविकी भाषामें—वह जमीन यह कहती है—अरे आदमी तू अकड़ मत दिखा, तू तो जो मेरे में यह गड्ढा बन गया है उसको पूरने वाली चीज है। तो जितने भी ये गंधवान पदार्थ हैं ये सब पृथ्वी हैं और जितने रस-वान पदार्थ हैं वे सब जल है। इस आदमीके शरीरमें जो खून आदिक द्रव्य चीजें पायी जाती हैं वे सब जल तत्त्व हैं और जो कुछ तेजोमय हैं वे अग्नि हैं। इस आदमीमें जो गर्मी पायी जाती है। और इसमें हवा है वायु उठती है, वह वायु तत्त्व है। तो यह एक बार मह भूतोंका पिण्ड है, और एक है आकाश जो सबमें समाया है तो यह सारा जितना जो कुछ परिणमन है प्रकृतिका परिणमन है। प्रकृतिसे ही ज्ञान बनता है और प्रकृतिसे ही ज्ञानपर आवरण रहा करता है और आवरण दूर होनेसे प्रकृति ही सर्वज्ञ बनती है। कोई आत्मा सर्वज्ञ नहीं बना करता। ऐसा शङ्काकार प्रकृतिके २४ तत्त्व और एक पुरुष तत्त्व यों २५ तत्त्वोंका समर्थन कर रहा है। जहाँ तत्त्वोंकी संख्या प्रधान है उस सिद्धान्तको कहते हैं सांख्य।

प्रकृति और व्यक्तरूपोंकी त्रिगुणात्मकतासे विश्वको प्रकृत्यात्मक सिद्ध करनेका प्रयास—प्रकृति कर्तृत्ववादके समर्थनमें और भी कहा जा रहा है कि देखो ना, ये सारे महत्तादिक भेद बुद्धि अहंकार विषय इन्द्रिय आदि ये सबके सब प्रकृति-स्वरूप हैं, प्रकृत्यात्मकता हैं क्योंकि प्रकृति और इसमें कुछ भेद नजर नहीं आते। सब प्रकृति स्वरूप हैं। लोग भी कह बैठते हैं कि सब कुदरतका खेल है। कोई कहे कि अरे जिस कुदरतका खेल है उसे जरा पकड़कर दिखाओ तो सही कि यह है कुदरत और यह है इसका खेल। अरे खेलके रग रगमें कुदरत समायी हुई है उसको अलग क्या बताओगे। जितने ये परिणाम हैं प्रकृतिके, ये सब प्रकृत्यात्मक हैं और इससे भी साफ विदित होता है, जैसे प्रकृति त्रिगुणात्मक है सत्त्व गुण, रजोगुण, तमोगुण,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन तीन गुणोंमें व्याप्त प्रकृति है। तब बुद्धि आदिकको भी देख लीजिये। ये भी त्रिगुणात्मक हैं कभी बुद्धिकी तामसी प्रकृति बन जाती है कभी राजसी और कभी सात्त्विकी। जब बुद्धिमें राजसी प्रकृतिकी प्रमुखता आ जाती है तब यह क्रुद्ध, दुष्ट, प्रचंड, दूसरेका विनाश करनहार, इस प्रकारकी निवृत्ति होती है और जब यह बुद्धि तामसी प्रकृतिमें आती है तब यह कायर अज्ञान अबोध, बरबादीके सम्मुख हुआ, यह अवस्था आती है। जब बुद्धि सात्त्विकी प्रकृतिमें आती है तब स्वच्छ ज्ञान, दूसरोंका मार्गदर्शक, स्वयं अपनेमें सावधान, इस प्रकार बड़ी समताका अनुभव करने वाली बुद्धि होती है। इस प्रकार इन सब तत्त्वोंमें त्रिगुणात्मक है तो प्रकृति भी त्रिगुणात्मक है।

प्रकृति और व्यक्तरूपोंके अविवेकित्वसे विश्वको प्रकृत्यात्मक सिद्ध करनेका प्रयास— दूसरी बात—ये महतादिक तत्त्व ये सब अविवेकी हैं तो प्रकृति भी अविवेकी है इस त्रिगुणात्मक स्वरूपमें यह विवेक नहीं किया जा सकता। ये स्वयं यह भेद नहीं डाल पाते कि लो यह तो सत्त्वगुण, यह है रजोगुण, यह है तमोगुण। कारण यह है कि सभी पदार्थ निरन्तर त्रिगुणात्मक रहती है। ऐसा नहीं है कि कोई पदार्थ बड़े उच्च विकासमें आया है तो उसमें रजोगुण और तमोगुण न रहे, सत्त्वगुण ही रहे। विकास स्वच्छ होता है इसका अर्थ है कि सत्त्व गुणकी प्रधानता आयी है। तो वे तीनोंके तीनों उसमें स्वरूपमय होनेके कारण वह विवेक नहीं रख सकता है। तो अविवेक प्रकृति भी है और अविवेककी ये सब व्यक्त परिणमन भी है अथवा इससे यह विवेक नहीं किया जा सकता कि इसमें यह गुण है और यह गुणी है ये सत्त्वादिक गुण हैं और ये बुद्धिआदिक गुणी है, किन्तु जो गुण है वही व्यक्त है, जो व्यक्त है वह ही गुण है। इस तरह व्यक्त मायने यह बुद्धि अहंकार सृष्टि आदिक ये सब और अव्यक्त मायने प्रकृति। दोनोंका स्वरूप एकसा मिलता है इससे यह निश्चय होता है कि यह सबका सब परिणमन एक प्रकृतिका परिणमन है सर्वप्रकृत्यात्मक है।

प्रकृति और व्यक्तरूपोंको विषय अथवा उपयोग्य दिखाकर विश्वको प्रकृत्यात्मक सिद्ध करनेका प्रयास—इसी प्रकार इन व्यक्त चीजोंको भी देखो ये विषय बन रहे हैं। ये भोगनेमें आते हैं। कभी बुद्धि भोगनेको आती, कभी विषय भोगनेमें आ रहे। इन सब पदार्थोंका उपभोग भी किया जाता तो ये सब उपभोज्य हैं अतएव विषय हैं और प्रकृति भी उपभोग्य है, प्रकृति भी भोगी जाती है। प्रकृति तो भोगी जाती है और भोगने वाला चेतन है इस सिद्धान्तमें। जरा स्याद्वादियोंकी कुछ मान्यतावोंको सामंजस्य करके भी देखलो! जैसे कहा गया कि रागद्वेषादिकका करनेवाला है कर्म, ये वर्णादिकभाव कर्मकृत हैं और कर्मके मायने प्रकृति! कर्मकी ८ प्रकृतियां हैं ज्ञानावरणआदिक और १४८ उत्तर प्रकृतियाँ हैं। तो कर्म कहो या प्रकृति कहो, रागादिक भावोंका करने वाला है प्रकृति। मगर प्रकृति क्या रागादिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावोंको भोग सकती है ? कर्म क्या रागादिक भावोंको भोग सकते हैं ? इनके भोगने वाला चेतन है। तो वही हम कह रहे हैं। प्रकृतिकर्तृत्ववादका यह सिद्धान्त है कि करने वाली प्रकृति है। सारी रचना, सारी सृष्टि, यह सब प्रकृतिका काम है और जो रागादिक भाव उत्पन्न होते हैं अथवा ये सबकी सब चीजें हैं इन सबका भोगने वाला आत्मा है और इसपर भी तारीफ देखते जाइये कि यह आत्मा इन सब प्रकृतियोंको भोगता है और फिर भी अपरिणामी है। कोई पूछे कि यह कैसे हो जायगा कि भोगने वाले भी चेतन बने रहें और अपरिणामी अर्थात् टससे मस न होने वाले बने रहें। तो भाई ! बात यह होती है कि पुरुषका आत्माका स्वभाव तो चेतन है और जितने ये ज्ञान हैं, जितने ये सङ्कल्प हैं ये सब प्रकृतिके धर्म हैं। तो यह प्रकृति अपना धर्म, ज्ञान, आकार, स्वरूप, ढाँचा, निर्माण आदि सब चेतनको सौंप देता है। और इस समर्पणके प्रसङ्गमें जो कुछ भोगनेकी बात बनती है यह एक प्रकृतिके संसर्गसे बनती हैं। आत्मामें स्वयं कोई तरङ्ग नहीं है। इस प्रकार प्रकृति कर्तृत्ववादी मूलमें २ तत्त्व रखकर यह सिद्ध कर रहे हैं कि प्रकृति ही सर्वज्ञ बन सकता है, आत्मा सर्वज्ञ नहीं होता।

विश्वका निर्णय - यह विश्व क्या है ? इसका सही निर्णय न हो, तो एक अँधेरा सा रहता है। क्या करना चाहिए ? किस तरह शान्ति मिले ? इन बातोंका कोई मार्ग नहीं दीखता। अतः इस विश्वका निर्णय करना आत्महितार्थीको आवश्यक है। यह विश्व क्या है ? इस सम्बन्धमें स्याद्वाद शासन बताता है कि यह अनन्तानन्त पदार्थोंका समूह है। वे समस्त पदार्थ ६ जातियोंमे विभक्त हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव तो अनन्तानन्त हैं, पुद्गल उनसे भी अनन्तानन्त गुणे हैं, धर्मद्रव्य एक, अधर्मद्रव्य एक, आकाशद्रव्य एक और कालद्रव्य असंख्यात हैं। इन समस्त अनन्तानन्त पदार्थोंमें परिणमनेकी शक्ति पायी जाती है। अरे वे योग्य निमित्त सन्निधानको पाकर स्वयं ही परिणमते रहते हैं यह है लोक व्यवस्था। इस लोककी व्यवस्था प्रकृतिकर्तृत्ववादी यों कहते हैं कि केवल मूलमें दो ही तत्त्व हैं - पुरुष और प्रकृति अर्थात् आत्मा और प्रधान। आत्मा तो केवल एक चैतन्यमात्र है, उसमें ज्ञान भी नहीं है, वह अपरिणामी है और प्रकृतिका यह समस्त खेल है सारी रचना प्रकृतिकी है। प्रकृतिसे ये ज्ञान अहंकार आदिक सब उत्पन्न हुए। सारा विश्व एक प्रकृतिकी ही लीला है।

व्यक्त और प्रकृतिमें सामान्यकी दृष्टिसे अभेदका समर्थन इस प्रसङ्ग में यह चर्चा छेड़ी गई है कि यह सारा विश्व प्रकृतिरूप ही है यह कैसे माना जाय ? तो प्रकृतिसे जो कुछ उत्पन्न हुए हैं बुद्धि अहंकार आदिक इन सबमें और प्रकृतिमें अभेद दिखाया जा रहा है। चूंकि ये सब कार्य भी उसी स्वरूपको रख रहे हैं जिस स्वरूपको प्रकृति रखती है। तो उन स्वरूपोंमें तीन स्वरूप और बतलाये जा रहे हैं—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मी। प्रकृति भी सामान्यरूप है और ये जगतके पदार्थ विषय शब्दादिक इन्द्रियाँ भौतिक पदार्थ ये सब भी सामान्य हैं। यहाँ सामान्यका अर्थ है जो सबके उपयोगमें आये ! जैसे लोकमें अपने घरकी पत्नी तो विशेष स्त्री कहलाती है और जो गणिकादिक हैं उन्हें लोग सामान्य स्त्री कहते हैं क्योंकि उनका कोई एक पति नहीं है, वे जिस चाहेके द्वारा उपभोग्य होती हैं। तो इसी प्रकार ये पदार्थ भी जो जगतमें दिखते हैं ये सबके द्वारा उपभोग्य हैं। प्रत्येक आत्माके द्वारा उपभोग्य हैं। इसी प्रकार प्रकृति भी उपभोग्य है। तो चूँकि सामान्य होनेसे प्रकृतिमें और प्रकृतिकी पर्यायोंमें बुद्धि अहंकार पृथ्वी जल आदिकमें कोई अन्तर नहीं है। सो ये सब प्रकृतिस्वरूप हैं।

अचेतन और प्रसवधर्मीकी दृष्टिसे व्यक्त और प्रधानमें अभेदका समर्थन — दूसरा स्वरूप बतला रहे हैं अचेतन। प्रकृति भी अचेतन है और प्रकृतिसे उत्पन्न हुए बुद्धि अहंकार इन्द्रिय और विषय पृथ्वी आदिक ये सब भी अचेतन हैं। तो अचेतनत्व इन व्यक्तिरूपमें भी पाया जाता और अव्यक्त प्रकृतिमें भी। इससे सिद्ध है कि यह सब जग जाल प्रकृत्यात्मक है। तभी तो देखो ना कि प्रकृतिके ये परिणमन हैं सुख दुःख, लेकिन इन सुख दुखोंको प्रकृति नहीं भोग सकती। भोगनेवाला आत्मा है। तो सुख दुख रागद्वेष मोह आदिक भावोंको भोगनेमें असमर्थ है प्रकृति, इस कारण अचेतन है और ये सब दृश्यमान पदार्थ भी अचेतन हैं। तीसरा स्वरूप बताया जारहा प्रसवधर्मी अर्थात् एक दूसरेको उत्पन्न करनेका धर्म रखना। जैसे प्रकृतिने बुद्धिको उत्पन्न किया और इन विषयोंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन ५ महाभूतोंको उत्पन्न किया। जैसे इनमें दूसरेको उत्पन्न करनेका धर्म पाया जाता है वैसे ही प्रकृति में भी सर्वधर्मित्व पाया जाता है। तो प्रसवधर्मी होनेके कारण है प्रकृति और प्रकृति के ये परिणमन, यह सब दृश्यमान विश्व सब एक चीज रही। इस प्रकार यह समस्त विश्व प्रकृत्यात्मक है।

प्रकृतिके स्रष्टत्वका विचार — प्रकृतिकर्तृत्ववादी यहाँ अपना यह अभिप्राय रख रहे हैं कि प्रकृति ही तो सृष्टिकर्ता है और सृष्टिकर्ता होनेके कारण प्रकृति ही सर्वज्ञ हो सकता है, प्रकृतिपर ही आवरण होता है और आवरणके विनाशसे प्रकृति सर्वज्ञ बनती है, आत्मा सर्वज्ञ नहीं होता क्योंकि आत्मामें ज्ञान ही नहीं है। ज्ञान भी प्रकृतिका गुण है। इस तरह प्रकृतिकर्तृत्ववादमें आत्माकी सर्वज्ञताका निषेध करनेके लिए यह प्रकृतिके सृष्टिकर्तृत्वकी बात आई है इसका अब समाधान पाना है। यह कहना कि अहंकार बुद्धि आदिक ये सब प्रकृत्यात्मक हैं। यह कथन ही वचनबाधिक है। यदि यह सब व्यक्तरूप प्रकृतिस्वरूप है, तो प्रकृति तो एकस्वभावी है तो फिर प्रकृतिसे इस प्रवृत्तिका निष्पादन नहीं हो सकता क्योंकि जो जिससे सर्वथा अभिन्न है वह उसका कार्य बन सकता न कारण बन सकता। जैसे आत्मा चिन्मात्र माना है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह बतलावो कि चैतन्य कारण है या आत्मा कारण है ? आत्मा और चैतन्य इन दोनोंमें कार्य क्या है और कारण क्या है ? जब दोनों अभेद हैं, एकस्वरूप हैं तो उन में कार्यकारणका विभाग नहीं बनाया जा सकता। तो इस प्रकार ये विषय अहंकार पृथ्वी जल आदिक समस्त पदार्थ जब प्रकृतिस्वरूप मान लिया, प्रकृतिका इसमें अभेद मान लिया तब फिर कार्य कारण नहीं बन सकता कि यह प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ और इन सबका कारण प्रकृति है।

भिन्नलक्षण पदार्थोंमें कार्य कारणकी संभवता—कार्य कारण तो भिन्न लक्षण वाले पदार्थोंमें बनता है। अग्नि कारण है धूम कार्य है अग्नि चीज अलग है धूमका लक्षण अलग है, कहीं रोटी बनाना हो तो रोटी धुवाँ पर न धर देंगे तो धुवाँ का कार्य अलग है अग्निका काम अलग है, धुवाँका स्वरूप न्यारा है, अग्निका स्वरूप न्यारा है इस कारणसे इसमें कार्य कारणकी बात बन जाती है। लेकिन जब बुद्धि अहंकार पृथ्वी जल आदिक सबको प्रकृत्यात्मक मान लिया तो कार्य करण विभाव अब नहीं बन सकता। एक रूप होनेपर भी यदि कार्य कारण मान लिया जाय तो कोई उल्टा भी कह सकता है, यों व्यवस्था नहीं बन सकती तब फिर ऐसा ऐलान करना, ऐसी प्रतिज्ञा करना कि जो उसका कारण है वह कारण ही हैं और विषय, अहंकार, इन्द्रियभूत ये सब कार्य हैं। अथवा उनमें भी ऐसा भेद डालना कि प्रकृति तो कारण है और बाकी जो आखिरी चीजें है भूत इन्द्रिय ये सब कार्य ही हैं। और, बुद्धि अहंकार और शब्दादिक विषय ये किसीके कार्य हैं और किसीके कारण हैं, ऐसा कहना व्यर्थ है। जब प्रकृतिका और इन सब परिणामोंका अभेद है तो वहाँ कार्य कारण विभाग हो नहीं सकता, क्योंकि कार्यकारण भेद अपेक्षा रखकर होता है, इसका यह कार्य है, इसका यह कार्य है, इसका यह कारण है, वे दोनों अलग-अलग हों और फिर उनमें अपेक्षा हो तो कार्य कारण भेद बनता है। सो न तो अलग-अलग माना है कि प्रकृति जुदा है बुद्धि अहंकारादि जुदा हैं इस प्रकार जुदापन भी नहीं मान रहे तब फिर इसमें कार्यकारण भाव नहीं बन सकता। अन्यथा जैसे कहते हो कि यह सारा जगत प्रकृतिका विकार है, हम कह बैठे कि सारा जगत आत्माका विकार है जब प्रकृति और इस जगतमें तुम्हारा कुछ भेद नहीं तो प्रकृतिका कार्य है कहनेके बजाय कोई कह दे कि आत्माका कार्य है सब तो उसमें क्या आपत्ति आती है। इससे यह बात कहना कि यह सब प्रकृतिकी सृष्टि है और इस सृष्टिका प्रकृतिमें अभेद है, युक्ति सङ्गत नहीं है।

हेतुमत्त्व दिखाकर व्यक्त अव्यक्तमें भेद करनेका प्रयास—अब शङ्काकार प्रकृति और सृष्टिका अभेद बतानेमें जब कार्य न बना सके तो कह रहे हैं कि प्रकृतिमें और इस सृष्टिमें भेद है। प्रकृतिका लक्षण दूसरा है और इस व्यक्तरूपका लक्षण दूसरा है, किस प्रकार सो देखिये। जितने ये व्यक्त काम हैं बुद्धि, अहंकार, इन्द्रिय, पृथ्वी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आदिक ये सब कारणवान हैं इन सबका कारण है कोई न कोई, किन्तु प्रकृतिका कोई कारण नहीं है। तब प्रकृतिमें और इस व्यक्तरूपमें लक्षण भेद हो गया। यह सारा व्यक्तरूपमें समझमें आ रहा है, संकल्प विकल्प समझमें आ रहे हैं ना, ये व्यक्त हैं, अहंकार व्यक्त है, पृथ्वी आदिक व्यक्त हैं, प्रकृति किसीसे उत्पन्न नहीं हुई, प्रकृति अनादिसिद्ध है और आत्मा भी अनादिसिद्ध है। न प्रकृतिका कोई कारण है न आत्मा का। तो इस प्रकृतिमें और इस व्यक्त विश्वमें भेद है। यह व्यक्त स्वरूप जितना है सबका कोई कारण है। ये पृथ्वी जल आदिक शब्दरूपादिकसे उत्पन्न हुये। इनका कारण विषय हैं। विषय, इन्द्रिय ये सब अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं, इनका कारण अहंकार है। अहंकार बुद्धिसे उत्पन्न हुआ सो अहंकारका कारण बुद्धि है और बुद्धि प्रकृतिसे उत्पन्न हुई, सो बुद्धिका कारण प्रकृति है, पर प्रकृति तो किसीसे भी उत्पन्न न हुई। सो प्रकृति अकारण है।

व्यक्तका अनित्यत्व व अव्यापित्व बताकर व्यक्त व अव्यक्तमें भेद करनेका प्रयास — व्यक्त और अव्यक्तमें और भी भेद सुनो। यह सृष्टि सब अनित्य है। बुद्धि, अहंकार महाभूत, इन्द्रिय ये सब अनित्य हैं। विनाशीक हैं, इनका विनाश होता है किन्तु प्रकृतिका विनाश नहीं होता। क्योंकि, जो उत्पन्न हुआ वही तो नष्ट हो सकता है। प्रकृति उत्पन्न होती ही नहीं। प्रकृति अनादि सिद्ध है अतः नित्य है और नित्य है ये बुद्धि अहंकार तन्मात्रायें ये सब उत्पन्न होती हैं इस कारण इनका विनाश है। प्रकृति और पुरुष ये स्वर्गमें, आकाशमें सर्वत्र व्यापक रूपसे रहते हैं किन्तु ये बुद्धि अहंकार पृथ्वी आदिक ये तो व्यापकरूपसे नहीं रहते। तो यह भी भेद पाया जाता है कि प्रकृति तो व्यापक है और ये सब व्यक्त रूप व्यापक नहीं हैं।

व्यक्तका सक्रियत्व अनेकत्व दिखाकर व्यक्त व अव्यक्तमें भेद करनेका प्रयास — अब व्यक्त और अव्यक्तमें चौथा लक्षणभेद सुनो। यह सारा व्यक्त रूप जो हैं वह सब सक्रिय हैं. इनमें क्रिया पायी जाती है, चेष्टा पायी जाती है तरंगे पायी जाती है संसरणके सम्बन्धमें यह बुद्धि अहंकार आदिकसे संयुक्त होकर यह सूक्ष्म शरीर व्यक्त रूप होकर संसारमें परिभ्रमण करता है। किन्तु प्रकृति यह तो विभु है, सर्वत्र व्यापक है जो सब जगह फैला हुआ है, एक है वह कहाँ हिले डुले ? जैसे किसी घड़ेमें पूरा पानी भरा है ऊपर तक, अब वह कहाँ छलके कहाँ हिले डुले ? यदि पूरा व्यापक नहीं हैं तो वह हिलेगा डुलेगा, यदि पूरा व्यापक नहीं है तो वह हिले डुलेगा छलकेगा। तो ये पृथ्वी आदिक कहाँ व्यापक हैं, इनका तो ओर छोर नजर आता है, ये इन्द्रिया कहाँ व्यापक हैं, बुद्धि भी कहाँ व्यापक है ?, इनका तो ओर छोर नजर आता है, ये इन्द्रियाँ कहाँ व्यापक है, बुद्धि भी कहाँ व्यापक है ? इनका तो ओर छोर नजर आता है अतएव ये चेष्टावान हैं, किन्तु प्रकृतिमें कोई क्रिया नहीं है। ५ वाँ लक्षण भेद बतला रहे हैं कि ये सब अनेक हैं, परन्तु प्रकृतिमें एक है। बुद्धि अनेक है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विभाव, रागद्वेष अहंकार पृथ्वी, जल, रूप, रस आदिक ये सब व्यक्तरूप अनेक हैं किन्तु प्रकृति एक है। क्योंकि वह तीन लोकका कारण है, जितने भी सर्जन हैं जितने भी दृश्य अथवा अदृश्य जो भी परिणमन हैं उन सबका कारण एक प्रकृति है, तो प्रकृति एक है और जो व्यक्तरूप है वह नाना है, यह भी भेद पाया जाता है।

व्यक्तका आश्रितत्व और लिङ्गत्व दिखाकर व्यक्त व अव्यक्तमें भेद करनेका प्रयास— छठवाँ लक्षणभेद बताते हैं कि यह सारा व्यक्तरूप आश्रित है परन्तु प्रकृति किसीके आश्रय नहीं रहती। जो चीज जिससे उत्पन्न होती है वह उसके आश्रय कही जाती है। जैसे ५ महाभूत उत्पन्न हुए हैं—रस, गंध आदिक विषयोंसे तो महाभूत इन विषयोंके आश्रित हैं, तभी तो जब यह विषय अलग-अलग हो जाता है, बिखर जाता है तो यह स्थूल व्यक्तरूप भी बिखर जाता है। तन्मात्रायें अहंकार उत्पन्न है सो ये अहंकारके आश्रित है। अहंकार बुद्धिके आश्रित है, पर प्रकृति किसीसे उत्पन्न नहीं है इसकारण किसीके आश्रित नहीं है। इस आश्रयपनेका भी प्रकृतिमें और इस व्यक्त विश्वमें भेद है। अब सातवाँ लक्षण भेद भी प्रकृतिमें और इस व्यक्त विश्वमें बतला रहे हैं कि प्रकृति तो अलिङ्गरूप है और यह सारा व्यक्त विश्व लिङ्गरूप है। यह लयको प्राप्त हो जाता है। जिसका लय हुआ करे उसे कहते हैं लिङ्ग। अर्थात् जितना यह व्यक्त विश्व है प्रलय कालमें, यह एक दूसरेमें लयको प्राप्त होता है. पर प्रकृति किसमें लयको प्राप्त हो? तो यह सारा विश्व लय वाला है और प्रकृति लयसे रहित है। प्रलयकालके समयमें यह बहुत मोटे रूपमें दिखने वाला महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये सबके सब विषयोंमें विलीन हो जाते हैं क्योंकि ये सब विषयोंसे उत्पन्न हुये हैं। पृथ्वी गंधमें लीन होगी, जल रसमें लीन हो जायगा, अग्नि रूपमें लीन हो जायगी, वायु स्पर्शमें लीन हो जायगी, और आकाश शब्दमें लीन हो जायगा। ये पाँचों विषय अहंकारमें लीन होंगे। अहंकार बुद्धिमें लीन हो जायगा और बुद्धि प्रकृतिमें लीन हो जायगी, उनका नाम प्रलय है, फिर कुछ नहीं बचा, अब प्रकृति रह गयी और आत्मा रह गया। ये दोनों अविनाशी तत्त्व हैं, इनका कहीं लय नहीं होता, यह व्यक्त विश्व रूप लयको प्राप्त होता है परन्तु प्रकृतिका लय नहीं होता। यों प्रकृतिका और इस व्यक्त विश्वका भेद है।

व्यक्तका सावयवत्व और पारतन्त्र्य दिखाकर व्यक्त व अव्यक्तमें भेद करनेका प्रयास—अब ८ वाँ लक्षणभेद देखो! यह साराका सारा विश्व पृथ्वी आदिक ये सब सावयव हैं, इनका हिस्सा है, इनका नाप तोल है, लम्बाई चौड़ाई है, परन्तु लम्बाई चौड़ाई अंश प्रकृतिमें नहीं। प्रकृति निरंश है, लेकिन यह सारा विश्व सांश है। कोई चीज उठाकर देख लो, सबमें अंश पाये जाते हैं, सबमें माप पाया जाता है। तो इस व्यक्त रूप और अव्यक्त प्रधानमें भेद है। अब ९ वाँ लक्षण भेद सुनो! ये सारे विश्वके पदार्थ परतन्त्र हैं। क्यों परतन्त्र हैं? यों कि इसका कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। ये किसी कारणसे उत्पन्न हुए हैं। जैसे पुत्र पितासे उत्पन्न हुआ है। तो पुत्र परतंत्र है, पिताके आधीन रहता है। इसी तरह यह सारा जहान एक दूसरेसे उत्पन्न हुआ है, सो जो जिससे उत्पन्न हुआ वह उसके आधीन है, परन्तु प्रकृति किसीसे उत्पन्न नहीं इसलिए परतंत्र नहीं। तो यह व्यक्त विश्व परतंत्र है और यह प्रकृति परतंत्र नहीं क्योंकि यह सदा अकारण है और इसी कारण किसीके आधीन नहीं है। इस प्रकार प्रकृति और विकृतिके भेदसे इस विश्वमें और इस प्रकृतिमें लक्षण भेद है अतएव ये न्यारे-न्यारे हैं, और जब ये न्यारे-न्यारे हैं तब तो मान लोगे हमारी बात कि इसमें कार्यकारण भेद है।

व्यक्त और अव्यक्तमें लक्षणभेदका समाधान— अब इसका समाधान किया जा रहा है। पहिले तो यह अनिश्चय देखो कि यह सिद्ध करनेके लिए कि यह सारा विश्व प्रकृत्यात्मक है, इस विश्वमें और प्रकृतिमें अभेद सिद्ध करनेकी पड़ गयी थी और जब यह बात रखी कि यह सारा विश्व प्रकृत्यात्मक है, अभेद है, एक रूप है उसमें कार्यकारण भेद तो नहीं बन सकता तब यह सिद्ध करनेकी बात आयी कि यह व्यक्त सारा विश्व जुदी चीज है और प्रकृति चीज जुदी है इसमें लक्षण भेद है। जब जुदा है तो कार्यकारण मान लिया जायगा। तो जब जैसी जरूरत पड़ी तब तैसा भेद माना, अभेद माना। खैर तुम्हारे लक्षण भेदको थोड़ी देरको विचार करनेके लिए मान लिया जाता है पर वह लक्षण भेद बनता नहीं है।

एकस्वभावमें कार्यकारणपनेका अनवकाश— जो यह बात कही थी कि यह व्यक्त सारा विश्व कारण वाला है, किसी न किसी कारणसे उत्पन्न होता, यह भी एक कथन मात्र है क्योंकि जो जिससे भिन्न स्वरूप वाला है वह उससे विपरीत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जुदापन वहीं माना जा सकता है जहाँ स्वभावमें विपरीतता है। प्रकृतिका स्वभाव और व्यक्त विश्वका स्वभाव तुमने एक माना है, अचेतन है प्रकृति और अचेतन ही है यह सारा जहान तो यह व्यक्तरूप विश्वका अचेतन है और प्रकृति भी अचेतन है। जब एकस्वभाव हो गया और एकरूप मान लिया तो उसमें यह कहना कि यह हेतुमान है, यह हेतुमान नहीं है यह बात नहीं बनती। क्योंकि भिन्न स्वभावका कारण हो तो विपरीतता है। भिन्न स्वभाव न हो और फिर भी उनमें विपरीतता जतानेकी कोशिश करना कि प्रकृति जुदी है और यह व्यक्तरूप जुदा है तो फिर कहीं वह भेदव्यवहार नहीं बन सकता है। कोई भी चीज न्यारी न समझिये, और वहाँ भी सत्व, रज और तम ये तीन गुण परस्पर भिन्न स्वभाव वालोंमें भेद न पाया गया तो सारा ही विश्व एकरूप हो जाना चाहिये। सत्वकी क्या प्रकृति अलग, रजकी क्या प्रकृति अलग? जब सब प्रकृत्यात्मक हैं तो इनमें भी कोई भेद न रह सकेगा।

प्रकृति पुरुषके स्वरूपसंपादनका प्रयोजन— यहाँ इस पूर्व पक्षको यों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समझ लीजिए कि ऐसा माना गया है कि जिसमें कुछ भी अदल बदल होती हो सूक्ष्म रूपसे भी जहां कुछ परिणमन ज्ञात हो वह सब प्रकृतिका प्रसार है और जहाँ रंच मात्र भी परिणमन नहीं है, केवल एक चित् है वह है आत्मा। आत्मा कर्ता नहीं है, केवल भोक्ता है, सो भोक्ता भी कब है कि जब बुद्धिने जिसका निर्णय किया वह अर्थ प्रकृतिने सौंप दिया आत्माको। तो आत्मा उसे चेतता है इतना ही मात्र भोगना है। किन्तु जो सुख होता है दुःख होता है यह तो प्रकृतिमें होता है, आत्मामें नहीं होता है, देखिये! भोगनेकी बात थोड़ी देरको हम करें भी और भोगनेका कोई अर्थ न आसके तब सुखी दुःखी प्रकृति होगी। जब रागद्वेष भी प्रकृति हुई तो और भोगना क्या है? किन्तु भोगनेकी बात प्रकृतिमें यों नहीं कहा जा सकती कि इसमें चैतन्यात्मकता नहीं है, तो यह साराका सारा विश्व एक प्राकृतिक है आत्मा एक चेतनमात्र है। तो ज्ञान होता है प्रकृतिमें, माया भी होती है। आत्मा सर्वज्ञ नहीं होता. यह इसके कहनेका तात्पर्य है। सब कुछ प्रकृतिका ठाठ है। ऐसा माननेमें इन लोगोंने कोई हित तो सोचा होगा। अपनी बुद्धिके अनुसार जो हित सोचा गया है वह हित यह सोचा गया है कि आत्माका ऐसा स्वरूप माननेमें हित है जिस स्वरूपको जानकर समझकर कुछ भी ग्रहणमें न आये ऐसा ही आत्माका स्वरूप बनाना चाहिए। तो आत्मा यदि ज्ञान-स्वरूपी बना तो ज्ञान तो समझमें आता। ज्ञानमें तो परिणमन है। आत्माको नित्य अपरिणामी माननेके लिये ये सब कृतिकी बातें बताई गई हैं कि यह सारा विश्व एक प्रकृतिकी लीला है, आत्माकी लीला नहीं है। आत्मा तो एक नित्य अपरिणामी चैतन्यमात्र है। इस प्रकार यह सारी विश्व रचना प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुई, इस सिद्धान्तको रखा गया है।

निर्मोहितामें जीवका हित—जीवका हित मोहके हटनेमें ही है। कारण यह है कि जगतके समस्त पदार्थ स्वतंत्र अपना अस्तित्व रख रहे हैं। किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थके साथ रंच भी सम्बन्ध नहीं है। यह जीव ही अपने आपकी ओरसे कल्पनायें करके पदार्थोंसे सम्बन्ध मानता है, और पदार्थोंका सम्बन्ध है नहीं, पदार्थ वे अपने आपके परिणमनसे अपने रूप परिणमेंगे और यह मोही जीव उनमें कल्पनायें कर बैठा कि ये मेरे हैं, यह वैभव मेरा है, ये लोग मेरे हैं, मैं जैसा चाहूँ तैसा इन्हें रहना होगा, मेरे से ये कभी दूर ही नहीं हो सकते, यों कल्पनायें कर रखी और भांति, पदार्थोंका स्वरूप है और भांति। इस कारण वेदना जीवमें हुआ करती है। जिनको हम सिद्ध परमेष्ठी कहते, जिनकी हम बड़ी उपासना करते हैं उनमें और बात हैं क्या? यही अन्दरमें ज्ञानप्रकाश हो गया है, उनकी दृष्टि इस सत्यपर स्थिर हो गयी है कैवल्यकी उपासनासे कैवल्य प्रकट हो गया है। वे प्रकट निहार रहे हैं कि अणु अणु पृथक हैं, मेरे आत्मासे यह सारा शरीरका पिण्डोंका, कर्मोंका समूह पृथक है। मेरा स्वरूप न्यारा है इसमें रागादिक विभाव भी नहीं है। ये भी कर्मका कारण पाकर उत्पन्न हुए हैं। मैं सबसे निराया अलिप्त हूँ ऐसे चैतन्यस्वरूपकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्रद्धा और ऐसा ही निरन्तरका ज्ञान और इस ही रूप अपना आचरण बनाना, यह तपश्चरण किया था इसके प्रसादसे सर्वतः शुद्ध परिणति पाई जाती है। इसी कारण सिद्ध परमेष्ठी पूज्य हैं। हम आप सब उनकी उपासना करते हैं। ये साधुजन इस ही निर्लेप चैतन्यस्वभावकी उपासनासे कर्ममुक्त हो जाते हैं, प्रभु हो जाते हैं और जिन प्रभुकी हम उपासना करते हैं वे अरहंत और सिद्ध ऐसे ही प्रभु हैं। इन निर्मोह निर्दोष प्रभुकी उपासनासे हमें निर्मोहताका पाठ लेना चाहिये।

प्रभुका उपदेश माननेमें प्रभुका यथार्थ विनय—भैया! हम उनकी उपासना तो करें और अपने आपमें उल्टा ख्याल रखें कि मेरा ही तो यह वैभव है, मेरी ही तो यह इज्जत है, मैं देखो इस लोकमें कैसा पड़ा हूँ इस लोकमें मेरा नाम है, मैं कैसा सुखी हूँ, ऐसे पर्यायके नाते जो जो कुछ बात है उसरूप अपना अनुभव करें तो उसे यों समझिये कि जैसे कोई अपने पितासे वचन तो बड़े विनयके कहता है पर न उसकी बात मानता है, न उसके खाने पीनेकी सुधि करता है तो वह अपने पिताका भक्त तो न कहलायेगा। केवल बातोंसे ही तो उस पिताका पेट न भर जायगा। ठीक इसी तरह प्रभुकी कोई बड़ी पूजा करे, बड़े सुन्दर शब्दोंमें बड़ी ऊँची स्तुति बोल जाय, पर प्रभुकी तरहका अपना आचरण बनानेकी बात वह एक न माने, और प्रभुके गुणगान करता रहे तो उससे कहीं वह प्रभुका भक्त न कहलायेगा। उससे उसकी कुछ भी सिद्धि न हो सकेगी। प्रभुका मुख्य उपदेश यह है कि इन परपदार्थोंमें ममताका परित्याग करो। घरमें रहते हुए भी निर्मोह रहा जा सकता है, घर त्याग करके भी निर्मोह रहा जा सकता है। निर्मोहका अर्थ है यह स्पष्ट अपने आपमें भान रहना कि मेरा मेरे आत्मस्वरूपमें सिवाय मेरे इस ज्ञानानन्द स्वभावके सिवाय कुछ भी मेरा नहीं है। मैं केवल निज ज्ञानानन्दात्मक ही हूँ, इस प्रकारकी दृढ़ श्रद्धा होना, ऐसा ही ज्ञान रखना यही तो निर्मोहिता है। तो निर्मोह हुये बिना जीवका उत्थान नहीं हो सकता।

दर्शनशास्त्रोंका उद्देश्य निर्मोहताका उद्यम—निर्मोहताके उद्यममें अनेक दर्शनोंका ज्ञान किया जा रहा है। निर्मोह कैसे बने इसके लिए ज्ञान चाहिये, और वह ज्ञान किस दर्शनमें किस तरहसे दिया है, क्या युक्ति निकाली है? तो उपाय की खोज सबकी एक इस निर्मोहताके लिये हुई है। जो ईश्वरको सृष्टिकर्ता मानते हैं वे यह उपाय निकाल रहे हैं कि चूंकि शरीर, वैभव आदिक यह सब कुछ ईश्वरने बनाया है इस लिए ये कोई भी पदार्थ मेरे नहीं हैं, ये तो ईश्वरकी चीज हैं। ईश्वरकी जो चीज है वह ईश्वरके नामपर ईश्वरको ही सौंपो उसमें मेरा कोई हक नहीं है, यह बुद्धि बनाकर उन्होंने मोहको दूर करनेका उपाय निकाला। तो यहाँ प्रकृतिकर्तृत्ववादी मोह दूर करनेका ही एक उपाय बना रहा है इसका कथन है कि मैं आत्मा तो एक चैतन्य मात्र हूँ, इसमें तो रंचमात्र भी तरङ्ग नहीं है, किसी भी प्रकारका अदल बदल नहीं है, यह तो चित्स्वरूप है। जितना अदल बदल है वह सब अचेतनका है, सुख दुःख होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है तो, रागद्वेष होता है तो अथवा ये विभाव आदिक होते हैं तो ये सब अचेतनके अदल बदल हैं, प्रकृतिके धर्म हैं, मैं तो पुरुष हूँ, आत्मा हूं, चैतन्यस्वरूपमात्र हूं, मेरी कुछ भी अदल बदल नहीं । इस प्रकारका परिज्ञान करके यह भेदविज्ञानका उपाय निकाला कि मैं तो एक चैतन्यस्वरूप हूँ, उससे जब अलग हुआ और भ्रममें पड़ा, प्रकृति के धर्मको हमने अपना माना तो संसारमें रुलते हैं । मैं उन्हें अपना न मानूँ, मैं चैतन्य स्वरूपमात्र हूँ ऐसा संकल्प करूँ और ये सारी लहरें जो भ्रान्तिके कारण उठ रहीं हैं ये समाप्त हों तो निर्मोहता प्रकट होगी ।

आत्माके अपरिणामित्वकी मान्यतामें अध्यात्म यत्नका अनवसर—भैया ! मोटे रूपसे बड़ी भली बातें लग रही हैं कि हाँ ठीक तो है निर्मोहताका उपाय प्रकृतिवादने सही निकाला । लेकिन, जब यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि आत्मा चैतन्यस्वरूपमात्र है. इसमें सुख दुख नहीं, रागद्वेष नहीं, अहङ्कार विषय कषाय नहीं, तब फिर ठीक है, रहने दो, अब अड़चन क्या आयी ? कौन सी समस्या उठ खड़ी हुई जो मुक्तिका उद्यम करना पड़ रहा है ? अरे प्रकृतिमें रागद्वेष हुए, प्रकृति ही मुक्ति करे, मैं आत्मा हूँ मुझे मुक्तिके लिए क्या उद्यम करना ? तो एक कोरा शुद्ध निश्चयका एकान्त भी तो उत्साहहीन कर देता है । अरे मैं स्वभावतः तो चैतन्यस्वरूप हूं, विशुद्ध हूं, इस मुझमें ही तो प्रकृतिका निमित्त पाकर ये रागद्वेषादिक परिणतियां होती हैं, इनको मिटाना है और मुक्ति प्राप्त करना है । यह साहस तब जग सकता है जब सही रूपमें यह तत्त्व माना जाय कि मैं आत्मा हूँ, और अपरिणामी नहीं किन्तु सत्व होनेके नाते परिणमनशील हूँ । आज मेरा यह अहितरूप परिणमन है । यह परिणमन मेरा मिट सकता है और शुद्ध परिणमन आ सकता है । इस परिणमनको मेटनेके लिए उपाय मुझे ही करना है और वह उपाय ज्ञानका उपाय है ।

धर्मकी आविर्भूति—धर्मकरो ! यह उपदेश किया । तो धर्म करनेके लिए मैं क्या करूँ ? क्या हाथ पैर चलाऊँ ? क्या यहाँ वहाँकी चीजोंको उठाऊँ, धरूँ ? क्या करूँ ? व्यवहारमें यद्यपि इन क्रियाओंका उपदेश दिया जाता है -पूजा करो, द्रव्य चढाओ यात्रा करो, अनेक हस्तपादकी क्रियायें करते हैं, लेकिन ये क्रियायें एक मनको थामनेके लिये हैं । अयोग्य बातोंमें, विषय कषायोंके परिणामोंमें यह मन न जाय, उसके लिए एक आलम्बन किया है । उस आलम्बनमें रहकर प्रभुके स्वरूपपर दृष्टि दे लूँ, अपने स्वरूपपर दृष्टि दे लूँ इसके लिए यह व्यावहारिक यत्न किया है । तो धर्म कहाँ हुआ ? हाथ पैर चलानेमें नहीं किन्तु अपने भीतर ज्ञान दृष्टि द्वारा जो स्वरूपका स्पर्श हो, प्रभुके शुद्ध विकासका परिज्ञान हो वहाँ धर्म है । धर्म क्रियावोंमें, चेष्टावोंमें नहीं है । धर्म करो इसका सीधा अर्थ यह है कि मोह रागद्वेषसे अलग होवो । कुछ क्रिया करनेका नाम, द्रव्यका दान देनेका नाम, परका उपकार करनेका नाम, यथार्थतः धर्म नहीं है । इनका नाम व्यवहारमें तो धर्म कहा जाता है लेकिन इससे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परखिये कि इन क्रियावोंके करते हुयेमें मैं अपने आपको इन सबसे निराला ज्ञान मात्र हूँ ऐसी दृष्टि रखकर सन्तोष करनेकी बात रखता हूं या नहीं। अगर निर्लेप निरखकर सन्तोषकी बात आती है तो धर्म किया जा रहा है, अन्यथा कषाय मेटनेके लिए जो व्यवहार धर्म बताया गया है वह व्यवहार धर्म कषाय बढ़ानेमें भी कारण बनाया जा सकता है। त्याग किया जाता है परम विनयशील होकर अपने आपके स्वरूपमें नम जानेके लिए और कोई पुरुष त्याग करके दुनियामें अपनी उच्चता दिखाना चाहे —मैं ठीक चल रहा हूँ, मेरी पद्धति लोकमें अच्छी बनी है, पोजीशन सम्हली है, ऐसा भाव बनाया तो वह त्याग मान कषाय बढ़ानेके लिए हो गया जो कि नम्र विनयशील होकर अपने आपके स्वरूपमें नम जानेके लिए था, लीन हो जानेके लिए था वह कषायकी वृद्धिके अर्थ हो गया है, तो सम्यग्ज्ञान ही हम आपका सत्य शरण है।

अभेदमें कार्यत्व व कारणत्वकी अव्यवस्था प्रकृति कर्तृत्ववादी यह कह रहे हैं कि दुनियामें जो कुछ भी यह प्रसार है, जो कुछ भी भौतिक नजर आ रहे हैं या जो कुछ समझमें आ रहा है, विकल्प आ रहे हैं, तरंगें हो रही हैं ये सब प्राकृतिक हैं, प्रकृतिके धर्म हैं, प्रकृतिको कहते हैं अव्यक्त और इन सब माया जालोंको कहते हैं व्यक्त। व्यक्त मायने जो स्पष्ट लोगोंकी समझमें आ रहा है, अव्यक्त मायने जो प्रकट नहीं हो पाता, जिसको समझ नहीं पाते, पकड़ नहीं सकते, दिखा नहीं सकते, जो इन्द्रिय द्वारा गम्य नहीं है वह है अव्यक्त जो समझा जा रहा है वह है व्यक्त। तो प्रकृति है अव्यक्त, जिससे संसारकी रचना चलती है और ये सारी रचनायें हैं व्यक्त। तो यहां यह बात कही गई थी कि व्यक्त और अव्यक्तमें भेद नहीं हैं। जब व्यक्त और अव्यक्तमें भेद नही है। एक हैं फिर यह बात कैसे बन सकती कि अव्यक्त तो कारण है और व्यक्त कार्य है जब इनमें भेद ही नहीं आता है। एक स्वरूप है यह, तो छटनी कैसे की जा सकती है कि कारण तो अव्यक्त है, कोई यों कह देगा कि कारण तो व्यक्त है व कार्य अव्यक्त है। जब दोनों एक हो गये तो उल्टा भी कार्यकारण बता सकते हैं। इस कारणसे कोई यह निश्चय, एकान्त नहीं बन सकता कि प्रकृति कारण है और ये सब कार्य हैं।

मूल पदार्थोंकी वैज्ञानिक खोज भैया! कुछ भी जरा सत्य दृष्टिसे खोजा जाय, उनके उपादानको तका जाय और वैज्ञानिक ढङ्गसे सोचा जाय तो यह नजर आयगा कि जितने ये रूप, रस, गंध, स्पर्शवान पदार्थ हैं वे सब एक मूलमें कुछ उपादानको लिए हुए हैं और चूंकि इन सबके खण्ड खण्ड हुए देखे जाते हैं, दरी है, तंतुवों का समूह है एक ही तंतुमें हजारों टुकड़े होते हैं, उनके भी और टुकड़े होते हैं स्वयं टुकड़े हो होकर कोई ऐसा टुकड़ा भी होता है जिसका फिर भाग नहीं होता। तो इससे सिद्ध होता है कि इसका मूल उपादान कारण अतिसूक्ष्म है और वह कहलाता है अणु। तो रूपी, सूक्ष्म, निरंश ऐसे अणु दृश्यमान स्कंधके उपादान हैं और जितने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केवल भावात्मक तत्व हैं, जहां रूप, रस गंध स्पर्श नहीं पाया जाता है, ऐसे रागद्वेष सुख दु:ख ज्ञान ध्यान साधना ये अन्त: जितने ज्ञानादि भाव पाये जाते हैं ये सब चेतन के धर्म हैं। यों चेतन भी बड़ा विस्तार लिए हुए है और यह अचेतन भी बड़ा विस्तार लिए हुए है। इससे उनमें यह छाँटना कि आत्मा तो अपरिणामी ही है, वह किसी कार्यको नहीं करता, उसका कोई प्रसार नहीं है, यह सब प्रकृतिका प्रसार है। जितने नर कीट आदि जीव दिख रहे हैं ये सब प्रकृतिके धर्म हैं. प्रकृतिसे ये सब उत्पन्न हुए हैं यह छांट नहीं हो सकती। ऐसा कार्य कारण भाव तो तब माना जा सकता है जब इनमें अन्वय व्यतिरेक हो। मगर यह निश्चय तो नहीं कि प्रकृतिसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति है। यह तो एक कल्पना है और कल्पना श्रद्धावश रूढ़िमें आ जाय तो कुछ ऐसा नजर आने लगता है।

कल्पनाकी वकालत—कल्पना प्रभाव देखिये ! सच्ची बात भी विरुद्ध कल्पना करनेपर असत्य मालूम होती है। असत्य बात भी कल्पना होनेपर सत्य मालूम होती है। एक कथानक है कि कोई पुरुष एक बकरी लिए जा रहा था। चार ठगोंने देखा कि बकरी बड़ी सुन्दर है और सोचा कि इसे तो छीनना चाहिये, सो परस्परमें सलाह करके वे चारों ठग उसी रास्तेमें आगे शीघ्र जाकर एक एक मीलको दूरं पर जाकर खड़े हो गये। पहिले मीलपर जब वह बकरी लेकर पहुँचा तो ठग बोला—अरे भाई, बड़ा अच्छा कुत्ता लाये. कहांसे लाये ? बस उसकी बात सुनकर वह आगे बढ़ा, यह सोचता हुआ कि यह झूठ कह रहा है। जब दूसरे मील पर पहुँचा तो दूसरा ठग बोला—वाह जी, कितना सुन्दर कुत्ता तुम्हारे पास है ? अब वह इस विचारमें पड़ गया कि यह कुत्ता है या बकरी ? जब तीसरे मीलपर पहुँचा तो तीसरेने कहा—आप कहाँ जारहे हैं इस कुत्तेको लेकर ? अब तो उसके और भी कल्पना जगी। जब चौथे मीलपर चौथे ठगने भी वही बात कही तो सोचा कि देखो सभी कह रहे हैं कि यह कुत्ता है तो हमको भी भ्रम हो गया है कि यह बकरी है, है वास्तवमें कुत्ता ! तो उसे वहीं छोड़कर लौट आया। ठगोंने उस बकरीको ले लिया। तो देखो इतनी मोटी बात भी कल्पनायें बन जानेके कारण वह न जान सका कि यह कुत्ता है या बकरी ? अभी किसी पुरुषसे कोई दूसरा व्यक्ति कहदे कि आपका चेहरा आज बड़ा उदास हैं ? क्या तकलीफ है ? फिर कोई तीसरा कहदे कि आज तो आपकी तबियत कुछ खराब जैसी दिख रही है। इसी प्रकार कोई चौथा भी कुछ कहदे तो उसके अन्दर ऐसी कल्पनायें बन जायेंगी कि उसके और नहीं तो कुछ ज्वर जरूर हो जायगा कल्पनायें उठ रही हैं तो कल्पनाओंसे उससे भी कुछ यथार्थ दिख सकता है। तो प्रकृति क्या है ? इसका कुछ निर्णय न रखकर, कहते आये हैं साधु सन्यासीजन, लगता है ऐसा कि सत्य है महाराज, मगर प्रकृति कौनसा उपादान है, किसका नाम है, उसमें क्या गुण है ? कौनसे असाधारण लक्षण हैं ? विचार करनेपर कुछ समझमें तो नहीं आता, मगर हाँ है प्रकृति। लोग भी तो कह बैठते हैं कि यह सब कुदरतका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

खेल है। देखो ना, पहाड़पर कैसे कैसे फूल खिल रहे, कैसे सुन्दर झरने झर रहे, यह [illegible] है। मगर उस कुदरतको हाथमें रखकर बतावो तो सही कि यह है कुदरत !

प्रकृतिकी सृष्टिका भाव – अरे कुदरत नाम है प्रकृतिका। यह सब प्रकृति का खेल है। तो सही क्या बात है ? प्रकृति नाम है कर्मका। कर्मकी ज्ञानावरण आदिक ८ मूल प्रकृतियाँ हैं। ८ कर्म और १४८ उत्तर प्रकृतियां हैं। इन कर्मोंके उदय का निमित्त पाकर इन आत्माओंकी ऐसी परिणति हुई है ऐसा शरीर मिला है, ये फूल पत्ते जो नजर आ रहे हैं ये सब क्या हैं ? उस उस जातिके नामकर्मके उदयका निमित्त पाकर इस जीवकी ऐसी परिणति हुई है और ऐसी शरीर मिला है। जीवका ऐसा बन जाना स्वभाव न था पर ये बन गये, यह क्या है ? प्रकृतिका खेल है प्रकृति का नाच है। तो प्रकृति मायने कर्म। मायने कर्मका नाच। तो वह कर्म एकरूपी पदार्थ है, बनता है मिटता है, जिसका निमित्त पाकर यह सब विश्वकी रचना हुई है (इस कर्मको नित्य अपरिणामी तत्त्व नहीं है। किन्तु वह नष्ट होता है, बढता है आत्माके मुक्त होता है। उस कर्मकी बात यहाँ प्रकृति शब्दसे कही गयी हो तो प्रकृति नित्य तो नहीं हो सकता क्योंकि नित्यमें कारणता नहीं है, नित्यमें परिणति नहीं होती। जो कूटस्थ नित्य है, जो ज्योंका त्यों है, जिसमें कुछ परिणमन नहीं है तो उस में अर्थक्रिया कैसे होगी ? कोई कार्य कैसे बनेगा, अनुभवन कैसे चलेगा ? यदि नित्य में भी परिणमन मानते हो तो यह बतलाओ कि नित्य पदार्थमें वह सब परिणमन जिससे परिणत हुआ करता है वह परिणमन क्रमसे होगा या एक साथ। क्रमसे वह परिणमन बन नहीं सकता। क्योंकि जब नित्य है, एकस्वभावी है तो क्रम कैसे रखें ? प्रथम तो बने कुछ तो नित्य ही नहीं रहा और नित्य है और बननेकी बात है तो जितना जो कुछ बनना चाहिये वह सब एक साथ हो जाना चाहिये।

नित्यमें भी परिणामकारणत्वकी संभावनाकी आशङ्का—शङ्काकार कहता है कि इसमें क्या हर्ज है कि नित्य भी बना रहे और परिणामका कारण भी बना रहे। जैसे एक सर्प है, सर्प कभी कुडरिया रूपमें आ जाता है, कभी टेढ़ा चलता है कभी मेढ़ा चलता है कभी सीधा पड जाता है। तो जैसे सर्पने अपने आपके ही शरीरमें एक कुण्डली बना ली तो कुण्डली परिणमन हुआ कि नहीं, उस सर्पका परिणाम ? सर्पकी एक बदल कुण्डलीरूपमें है कि नहीं ? है, पर सर्प तो वही है जो पहिले था और अब है। एक दृष्टान्त दिया जा रहा है कि जैसे सर्प वहीका वही है फिर भी उसमें परिणमन होता है तो नित्य होकर भी परिणामसे परिणत हुआ और उस परिणामका कारण कहा जाय तो इसमें कौन सी गलत बात है, वे परिणाम कार्य हुए और जो परिणामको प्राप्त हो वह कारण हुआ। तो इसी तरह परिणति नित्य है। नित्य होनेपर भी उसमें महान अहंकार बुद्धि इन्द्रिय आदिकके परिणमन क्यों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुए ? इन परिणमनोंको प्रकृतिने प्राप्त किया तो ये परिणाम प्रकृतिके कार्य कहलाये और इन परिणामोंका प्रकृति कारण कहलाया प्रकृति वहीकी वही हैं इसमें कौनसा विरोध हो गया ? अरे परिणाम तो एक वस्तुमें ही हुआ करता है और परिणाम व प्रकृतिका अभेद है। अभेद होनेपर भी कार्य कारण भाव बन रहा है, इसमें कोई विरोध आता है क्या ? जैसे स्याद्वादवादी भी मानते हैं कि पदार्थ वह एक है और उसमें नवीन नवीन पर्यायें चलती हैं। यह बतलावो कि वे पर्यायें उस पदार्थसे क्या न्यारी हैं ? न्यारी हों तो अलग करके दिखा दो। जैसे चावल और कूड़ा न्यारे न्यारे हैं अभी मिले हुए हैं तो चावलको कूड़ासे अलग करके दिखा देते, चावल अलग है कूड़ा अलग है। इसी प्रकार जीव और क्रोध अगर न्यारे हैं तो दिखा दो क्रोध जीव। जीवका क्रोध परिणाम अभेद है या भेदको लिए हुए है ? अभेद है। एक ही वस्तुमें जितने परिणाम होते हैं वे उस हीमें तो हैं उस हीमें अभेदरूप भी है और भेद रूप भी है। फिर भी कारण कार्य बना हुआ है। जीव क्रोधादिक परिणामोंसे परिणत हो रहे हैं तो परिणाम कार्य है और जीव उनका कारण है। तो एक ही वस्तुमें परिणाम और परिणामी अभेद होनेपर भी उनमें कार्य कारणका भाव बनाया जा सकता है ? तो इस समय प्रकृतिवादी यह कह रहे हैं कि प्रकृति एक वस्तु है और ये सब परिणाम उसमेंसे निकलते हैं। उन परिणामोंसे यह अभिन्न है, यह कारण है और यह परिणाम कार्य है।

अपूर्व विज्ञानके लिये ससमाधान उपयोग देनेकी आवश्यकता—किसी भी एक नये अपूर्व ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए धीरे धीरे उद्यम करना चाहिये। और उसमें धीरता रखना चाहिये। कदाचित् जीवनको ऐसा ही बनाया जाय कि जो सरल बातें हों उन्हींको पसंद करे तो यह विचार करो कि सरल नाम है किसका ? या तो व्यावहारिक मोटी बातें हों या किस्सा कहानियाँ आदिक हों पर रोज रोज उन्हीं सरल बातोंके सुनते सुनते फिर उन सरल बातोंका कुछ असर नहीं रहता। जैसे जो कबूतर रोज रोज किसी ठन ठनकी आवाजको सुनता रहता है उस कबूतरको उस ठन ठनकी आवाजका फिर कुछ भय नहीं रहता है, यों ही सरल बातोंको रोज सुनते सुनते फिर उनका कुछ असर नहीं रह जाता है। लोग थोड़ी सी कठिन बातको सुनकर अपने मनको पहिलेसे ही ढीला कर लेते, फिर अपने मनको व्यापारिक कार्योंमें लगा देते हैं तो उस विषयसे वे अत्यन्त दूर हो जाते हैं, तो वह विषय उनके लिए कठिन तो लगेगा ही। कितनी ही कठिन बात क्यों न हो, यदि ज्ञानसे काम लिया जाय तो वह बात थोड़े ही समयमें अत्यन्त सरल हो जायगी।

तत्त्वनिर्णयमें धीरताकी आवश्यकता—ज्ञानमें तो ऐसी अद्भुत लीला है कि यदि आप चाहें तो घरके अन्दरकी कोठरीमें रखे हुए तिजोड़ीके भीतर सन्दूकके अन्दर किसी पोटलीमें बँधे हुए स्वर्ण खण्डको आप यहाँ बैठे ही जान सकते हैं। इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानको वे दीवाल, दरवाजे तिजोड़ी आदि कोई रोक नहीं सकते । तो जिस ज्ञानमें इतनी शक्ति है उस ज्ञानमें थोड़ी भी कठिन बात समझमें न आये ऐसा हो नहीं सकता। हाँ कोई भी चीज हो वह धीरे धीरे समझमें आयगी। एकदमसे तो कोई चीज समझ में नहीं आ जाती। कोई चाहे कि हम इस सारे पर्वतको एक बारमें ही लाँघ जायें तो यह कैसे हो सकता है, धीरे धीरे ही उस पर्वतको पार किया जा सकता है । अथवा कोई चाहे कि मैं इस विद्याको एकदमसे ही सीख लूँ तो कैसे सीखा जा सकता है ? धीरे धीरे उसको सीखा जा सकता है । ठीक इसी प्रकार यदि आप लोग इन कठिन बातोंको भी धीरे धीरे समझनेका प्रयत्न करते रहेंगे तो कुछ समयके बादमें इनसे भी कठिन बातें सुगमतासे समझमें आ जायेंगी। तो यहाँ यह कहा जा रहा है कि प्रकृति तो नित्य है और उसके परिणमन बन रहे, उसमें गुण नजर आ रहे ऐसा माननेमें तो कोई दोष नहीं है। उत्तर है अभी दिया जायगा विस्तार सहित कि बात तुम्हारी ठीक है मगर यह अनेकान्तका आलम्बन होगा । इससे प्रकृति कथंचित नित्य है कथंचित् अनित्य है यह सिद्ध हुआ है।

एक नित्यवस्तुमें परिणामकी संभावनाकी आशङ्का और समाधान— की दिशा – इस समस्त लोककी रचना प्रकृतिकृत माननेपर यह पूछा गया था कि ये जितने जो कुछ परिणमन हैं वे परिणमन प्रकृतिमें भिन्नरूपसे हैं या अभिन्नरूपसे हैं ? प्रकृति चूँकि नित्य है तो नित्यमें परिणाम बन नहीं सकता। जो कूटस्थनित्य है उसमें कुछ अदल बदल नहीं हो सकती । अभिन्न है तब कार्य कारण भेद नहीं है, भिन्न है तब भी कार्यकारण भेद नहीं बन सकता। भिन्न तो अनेक पदार्थ हैं । जैसे यह चौकी है यह भींट है तो इसमें कार्य अथवा कारण क्यों नहीं बनता ? तो नित्य पदार्थमें परिणामोंकी सिद्धि नहीं। अगर कहो कि नित्यमें भी परिणाम मान लिया जाता है। एक सर्प है और वह कुण्डली आदिक अनेक अवस्थायें करता है तो नित्यमें भी तो परिणाम बना। उत्तर दिया गया है कि अनेकान्तका आश्रय लेनेपर ही वस्तुमें परिणाम बन सकता है।

स्याद्वादके आश्रयसे नित्य वस्तुमें परिणामकी संभावनाका समर्थन— एक वस्तुमें परिणाम स्याद्वाददृष्टिसे किस तरह बनेगा, अब इसकी चर्चा चलेगी, प्रकृति को भी कथंचित् नित्य माननेपर परिणाम बन सकता है । किस तरह ? अच्छा बतलावो – नित्य वस्तु है प्रकृति ! जो महान अहङ्कार आदिकरूप परिणामी है सो पूर्व अवस्थाका त्याग करनेसे परिणामी है या पूर्व अवस्थाके त्याग बिना परिणामी है? देखिये ! प्रश्न बहुत सरल है। मिट्टीके लौंधेसे जैसे घड़ा बनता है तो वहाँ भी इसी तरह पूछो कि उस मिट्टीमें जो घड़ारूप परिणमन बना है वह लौंधेरूप परिणामके त्यागसे बना है या लौंधेका त्याग भी नहीं हुआ और घड़ा बन गया ? अथवा और दृष्टान्त समझ लीजिये। यह अंगुली सीधी है, अब इसको टेढ़ा कर दिया तो अंगुलीमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो टेढ़ा परिणमन हुआ है वह सीधे परिणमनका त्याग करके हुआ है या सीधे परि-परिणमनका त्याग नहीं किया और अंगुली टेढ़ी हो गई ? ये दो प्रश्न किए गये प्रकृतिसे जो बुद्धि अहङ्कार विषयरूप यह विश्व उत्पन्न हुआ है सो ये सब जहाँ उत्पन्न हुए उसके पूर्वरूपका त्याग करके उत्पन्न हुए या पूर्वरूपका त्याग किए बिना उत्पन्न हुए ? और भी दृष्टान्त ले लो । एक मनुष्य है वह बालक अवस्थाके बाद जवानी अवस्थामें आया है तो हम वहाँ पूछ सकते हैं कि वह बालकपनकी अवस्थाका त्याग करके जवान बना या बालकपनकी अवस्थाका त्याग किए बिना ही जवान बना ? यहाँ अनेकान्तकी सर्वथा अनिवार्यताका दिग्दर्शन कराया जा रहा है। सभी दर्शनोंमें अनेकान्त स्याद्वादको न माननेपर कुछ भी कहने समझानेकी व्यवस्था नहीं बनती ।

स्याद्वादके बिना ज्ञानप्रकाशकी प्रगतिकी अशक्यता—स्याद्वाद और अहिंसा ये दो तत्त्व हितमय जीवन बनानेके लिये बहुत आधारभूत तत्त्व हैं । स्याद्वाद बिना ज्ञानविकाश नहीं फैलाया जा सकता और अहिंसाके बिना शान्ति नहीं प्राप्त की जा सकती । स्याद्वादका अर्थ है—किसी पदार्थकी अपेक्षासे उसकी कलायें बताना । जैसे यह चौकी है । कैसी है ? कोई कहेगा कि यह ५ फुट लम्बी है, कोई कहेगा कि डेढ़ फिट चौड़ी है, कोई कहेगा कि १ फुट ऊँची है, कोई कहेगा कि पीली है यों अनेक तरहके लोग अलग अलग उत्तर देंगे । तो वे सभी उत्तर अपेक्षा लगानेसे सही हैं, पर इस चौकीका जो वर्णन होगा, समझाना होगा वह स्याद्वादका सहारा लेकर होगा । किसी मनुष्यका परिचय देना है, यह कौन हैं साहब ? तो दिलावो परिचय ! तो परिचय आप अपेक्षा लगा लगाकर देते जायेंगे । यह अमुकका पुत्र है, अमुकका पिता है, अमुक ग्रामका प्रधान है, धर्मात्मा पुरुष है आदि । यों अपेक्षायें लगाकर उसका परिचय कराया जायगा । तो स्याद्वादके बिना कोई अपना प्रकाश नहीं कर सकता और तो क्या अपना जीवन भी नहीं चला सकता ।

अहिंसाके बिना शान्तिकी असंभवता—और देखो भैया ! अहिंसाके बिना शान्ति न मिलेगी । अहिंसा कहते किसे हैं ? अपने परिणाममें रागद्वेष मोह विकार भावोंको न उत्पन्न होने देना इसका नाम अहिंसा है । लोग तो किसीको मार डालना, पीड़ा देना अथवा पीटना आदि कार्योंको हिंसा कहते हैं । क्यों पड़ा उनका नाम हिंसा ? इस कारण पड़ा कि इस पुरुषने अपने मनमें रागद्वेष क्रोध कषाय उत्पन्न की तब वह दूसरेको मार सका । तो कषाय उत्पन्न की, यह है हिंसा । दूसरेकी पीठपर थप्पड़का संयोग हुआ तो यह सीधी हिंसा नहीं है । परिणाम हुए रागद्वेषके यह हिंसा है । इसी प्रकार झूठ बोलना, चोरी करना, कुशील सेवन करना, धनपर दृष्टि होना, वैभवके बड़े पुलावे बाँधना ये सब हिंसा है । केवल दूसरे जीवको मारने पीटने कष्ट देने आदिका ही नाम हिंसा नहीं है । अगर पुत्रसे राग है तो आप अपनी हिंसा कर रहे हैं न कि दूसरेकी, और यदि आप किसी दूसरेसे द्वेष कर रहे हैं तो उस समय भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आप अपनी हिंसा कर रहे हैं नकि दूसरेकी ! दूसरेकी हिंसा तो उसके खुदके राग-द्वेष मोहादि भावोंके कारण होती है। एक साधु पुरुषपर किसी सिंह पुरुषने वार कर दिया, किसी शत्रु पुरुषने मार डाला और साधुने समतापरिणाम ही किया। अपने ज्ञानभावमें ही वह स्थिर रहे, अथवा कर्मकलङ्कको काटकर मुक्ति भी प्राप्त करले तो इस प्रसङ्गमें हिंसा किसकी हुई ? हिंसा हुई उस मारने वालेकी। जो रागद्वेष करता है, जो कषाय करता है, जो धन वैभवमें ममता रखता है वह अपनी हिंसा बराबर किये चला जारहा है। तो हिंसाका परिणाम छुटे बिना शान्ति नहीं आ सकती।

अनेकान्तकी दिशामें प्रकृति परिणामके विषयमें पूर्व परिणामके त्याग व अत्यागके विकल्पोंकी ऊहा—यहाँ प्रकृत बात चल रही थी कि प्रकृतिसे इस सारे संसारका निर्माण हुआ है। तो यह बतलावो कि प्रकृतिने जैसे बुद्धि उत्पन्न की बुद्धिने अहंकार उत्पन्न किया तो प्रकृतिकी पहिले बुद्धि रूप अवस्था थी और अब अहंकाररूप अवस्था हुई तो उस प्रकृतिने पूर्वदशा का त्यागकर नवीन पर्याय ग्रहणकी या पूर्व पर्याय का त्याग नहीं किया और नवीन पर्याय पायी ? यदि कहो कि पूर्व अवस्थाका त्याग नहीं किया और नवीन अवस्था भी प्राप्त कर ली तब तो अवस्थामें संकरता हो गयी। जैसे एक मनुष्यने बाल वस्थाका त्याग नहीं किया और युवावस्था धारण कर लिया तो इसका अर्थ यह होना चाहिये कि बालक और जवान एक साथ हो जाय, पर क्या ऐसा हो सकता है ? नहीं। यदि कहो कि पूर्व अवस्थाको त्याग करके उत्तर अवस्था ग्रहण की प्रकृतिने तो देखिये ऐसा माननेमें दोष तो न आयगा कि किसी वस्तुने पूर्व पर्यायको त्यागकर नवीन पर्याय ग्रहण की, किन्तु वह वस्तु सर्वथा नित्य न कहलायगी क्योंकि स्वभावकी हानि हुई। जैसे अंगुलीने सीधी पर्यायको त्यागकर किया ना। तो अंगुली जो पहिले सीधस्वभावी होगयी थी सीधी प्रकृति बनी थी उसकी हानि हुई ना, अब टेढ़ी पर्यायमें आयी तो इसमें प्रकृतिके स्वभावकी हानि आती है।

पूर्वपरिणामके सर्वथा त्याग या कथंचित् त्यागके विकल्पोंकी ऊहा—अच्छा प्रकृत निर्णयमें आगे बढ़िये। मान लिया कि प्रकृतिने पूर्व अवस्थाका त्याग कर दिया और उत्तर पर्याय ग्रहण करली, थोड़ी देरको मान लीजिये और कोई उपालम्भ न दिया जाय तो अब हम यह पूछते हैं कि उस प्रकृतिने जो पूर्व अवस्थाका त्याग किया है वह सर्वरूपसे किया है या कथंचित् किया है, अर्थात् प्रकृतिने पूर्व-अवस्थाका त्याग द्रव्यरूपसे भी किया, पर्यायरूपसे भी किया, क्या दोनों ढङ्ग से कर दिया या कथंचित् किया ? इस प्रश्नको एक और दृष्टान्त लेकर समझिये। जैसे अंगुली ने सीधी पर्यायको त्यागकर टेढी पर्यायको ग्रहण किया तो वह माननेपर कि अंगुली ने पूर्वपर्यायको त्याग दिया तो जैसे यह पूछा जाय कि इस अंगुलीने पूर्व पर्यायको सर्व-रूपसे त्याग दिया या कथंचितरूपसे ? सर्वरूपसे त्यागा, इसमें बात यह पूछी गयी कि अंगुलीरूपसे भी त्याग हो गया, क्या दोनों प्रकारसे त्याग मानोगे तो इसका अर्थ यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ कि अंगुली भी न रही, असत् हो गयी इसी प्रकार प्रकृतिने अगर सर्वथा त्याग कर दिया तो प्रकृति न रही, जब प्रकृति ही न रही तब फिर उसका परिणाम ही क्या। जब अंगुली ही न रही तब टेढ़ा परिणमन किसका हुआ ? और, इस स्थितिमें चूंकि पूर्वरूपका सर्वरूपसे त्याग किया तो नई अपूर्व चीजकी उत्पत्ति हुई। तो इसका अर्थ हुआ कि नये-नये द्रव्य ही उत्पन्न हो जाते हैं। कोई एक चीज नहीं है जिसकी परम्परा बने और उसमें परिणमन चले। यदि कहो कि इस प्रकृतिने पूर्वरूपका सर्वथा त्याग नहीं किया किन्तु कथंचित् त्याग किया। जैसे कि दृष्टान्तमें कहा जाय कि अंगुलीने पूर्वरूपका याने सीधेपनेका सर्वथा त्याग नहीं किया कथंचित् मानो कि अंगुली पर्यायरूपसे सीधेपनका त्याग किया, द्रव्यरूपसे नहीं तो यह बात तो सही है इसमें क्या विरोधकी बात है क्योंकि एक ही अर्थ बना रहे और वह परिणामको प्राप्त करे तो पूर्व परिणामका त्याग करके उत्तर परिणाम प्राप्त करता है। जैसे अंगुली सीधीसे टेढ़ी बनती है तब पूर्व परिणामका त्याग किया और उत्तर पर्यायको प्राप्त किया। तो इसमें स्याद्वादका ही सहारा हुआ कि नहीं। वस्तु तो नित्यानित्यात्मक मानना पड़ा, तो प्रकृति सर्वथा नित्य है एकस्वभावी है यह बात कहाँ रही।

पूर्वरूपका एकदेश या सर्वदेशसे त्यागपर विचार—शङ्काकार कहता है कि प्रकृतिने पूर्वरूपका त्याग एक देशसे किया सर्वदेशसे नहीं किया। देखिये यह संवाद हमारा नया है सर्वथा और कथंचितके परिणमनके विकल्पसे सर्वदेश और एक देशके परिणमनके विकल्पका भाव जुदा है। सर्वथा और कथंचित्में तो द्रव्य और पर्याय दृष्टि की बात पूछी गयी थी। और यह प्रकृति जितनी लम्बी चौड़ी है जितने क्षेत्रमें फैली है उसके एक हिस्सेमें त्याग नहीं हुआ। यों क्षेत्रदृष्टिसे पूछा जा रहा है। समाधानमें कहा जा रहा है कि एक देशसे तो त्याग सम्भव नहीं, क्योंकि प्रकृतिको निरंश माना गया है। निरंशमें एक देश कैसे ठहरेगा। वह तो समग्र है। जैसे कोई पूछे कि परमाणु में जो पूर्वरूपका त्याग हुआ वह परमाणुके एक देशमें हुआ या सर्वदेशमें हुआ ? अब परमाणुका एक देश क्या ? परमाणु तो उतना ही है, एक प्रदेशी है, उसमें एक देश क्या। इस प्रकार चाहे व्यापी निरंश हो चाहे एक प्रदेशी निरंश हो, जो निरंश है उसमें एक देश तो सम्भव नहीं। अगर कहो कि प्रकृतिमें सर्वात्मकतासे सर्व प्रदेशोंसे सर्वदेशोंसे त्याग हुआ पूर्वरूपका, तो फिर प्रकृति ही नहीं रही, वस्तु ही न रही, वस्तु ही न रही, नित्यपना ही न रहा। ये बातें सब इस प्रकारसे समझिये कि जैसे कोई आदमी नरक तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदिक गतियोंमें जाता है तो उस आत्माकी पूर्व परिणतियोंका क्या सर्वथा त्याग हुआ अथवा कथंचित हुआ सर्वदेशसे हुआ या एक देश से ? उनका तो उत्तर है, क्योंकि कूटस्थ नित्य आत्मा नहीं है, पर कूटस्थ नित्य एकान्तमें वस्तुका मानकर फिर उसमें परिणामके त्याग उपादानकी बात लायें, कार्य कारणका भेद लायें तो सम्भव नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्मका धर्मीसे भिन्नत्व और अभिन्नत्वका विचार—अब कुछ अन्य बातें भी इसीसे सम्बंधित पूछी जा रही हैं। जैसे एक मनुष्य में बाल अवस्था तो गुजर गई जवानीकी अवस्था आयी तो उस मनुष्यमें दो धर्मोंकी चर्चा चली ना! कौनसे दो धर्म? बालपन और जवानी! तो जवानी है प्रवर्तमान और बालपन है निवर्तमान। निवर्तमान मायने जो हट गया, प्रवर्तमान मायने जो हो रहा। तो एक मनुष्यमें बाल्यावस्थाको त्यागकर जवानी अवस्था आई तो इसे क्या कहोगे? कि जवानी तो हुई प्रवर्तमान धर्म और बालपन हुआ निवर्तमान धर्म। तो यह बतलावो कि प्रवर्तमान और निवर्तमान मनुष्यसे भिन्न है या अभिन्न है? यह बात जैसे दृष्टान्तमें पूछी जा सकती है। इसी तरह इस प्रकरणमें पूछा जा रहा है कि प्रकृतिमें जैसे बुद्धि पर्यायकी निवृत्ति निवर्तमान और अहङ्कार प्रवर्तमान धर्म हुआ। तो प्रवर्तमान और निवर्तमान ये दोनों धर्म उस प्रकृतिसे भिन्न हैं अथवा अभिन्न है? यदि कहो कि ये भिन्न हैं जैसे दृष्टान्तमें कोई कहदे कि बचपन और जवानी ये दोनों अवस्थायें, प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्म मनुष्यसे जुदे हैं तो यह बात मानी जा सकती है क्या? अगर जुदा है मान लो बचपन और जवानी तो मनुष्य तो मनुष्य तो ज्योंका त्यों रहा, वह तो जवान न बन सका। वह अलग चीज है। इसी प्रकार यदि प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्म प्रकृतिसे निराला हो तो प्रकृति तो उस ही प्रकार रहा फिर परिणमन तो नहीं कहा जा सकता कि प्रकृति परिणत हो गयी। अगर बचपन और जवानी मनुष्यसे निराली मानी जाय तो यह तो नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य परिणमा है मनुष्य बदला है उसकी बदल तो नही कही जा सकती,, क्योंकि वे अवस्थायें तो भिन्न मान ली गयीं। जैसे कि किसी दूसरेकी बचपन जवानीके बदलेमें किसी दूसरे मनुष्यकी बदल तो नही कही जा सकती ऐसे ही किसी मनुष्यकी बदल नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि बचपन जवानी ये सब निराले हो गये। भिन्न पदार्थोंका उत्पादव्यय होनेपर किसी भिन्न नित्य वस्तुका परिणमन नहीं माना जा सकता और अगर मानोगे तो हम कहेंगे कि किसी अन्यमें भी परिणाम हो गया। भिन्न बुद्धि अहंकारके परिणामसे हम कहेंगे कि आत्मा परिणत हो गया। मनुष्यका बचपन बदलनेसे जवानी आनेसे जो कि भिन्न मान लिया, उस मनुष्यकी परिणति मानोगे तो हम कहेंगे कि नहीं, एक घोड़ा परिणत हुआ। भिन्न व्यवस्था क्या?

प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्मके सत्त्व और असत्त्वके विकल्पकी ऊहा—शंकाकार कहता है कि प्रकृतिसे सम्बन्ध रखते हैं वे दोनों धर्म, दोनों पर्यायें। एक पर्याय नष्ट हुई कि दूसरी पर्याय आयी सो वे दोनों ही प्रकृतिसे सम्बन्ध रखते हैं इस कारण उन दोनों धर्मोंके उत्पादव्ययसे फिर भी परिणमन मान लेंगे। यह भी बात भिन्न माननेपर सुन्दर नहीं जचती, क्योंकि जैसे बचपन व जवानी ये दोनों धर्म सद्भूत हैं या असद्भूत? बचपन और जवानीकी सत्ता है कि नहीं जिन्हें कि मनुष्यसे निराला माना है। अगर कहो कि सत्ता है तो जिसकी सत्ता होती है वह स्वतन्त्र हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है फिर वह दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखता । उसमें फिर सम्बन्ध नहीं बनता । मनुष्यकी तरह बचपन जवानी भी रहे तो वे भी काम करने वाले सत् बन गए। और, अगर कहो कि असत् हैं ये बचपन और जवानी, तो जो असत् है उसके बारेमें चर्चा ही क्यों करते ? इसी प्रकार प्रकृतिमें भी उत्तर ले लीजिये। प्रकृतिके दोनों धर्म प्रवर्तमान और निवर्तमान हुए, वे भिन्न हैं फिर भी कहते हो कि उनका इस प्रकृतिसे सम्बन्ध है तो बतलावो वे दोनों धर्म सत् है या नहीं ? यदि कहो कि सत् हैं तो प्रकृति की ही तरह वह भी स्वतंत्र पदार्थ हो गया। फिर सम्बन्ध ही क्या ? यदि कहो कि असत् है, उसका नाम ही नही है, तो फिर उसकी चर्चा ही क्या करते हो ?, फिर सम्बन्ध ही क्या जोड़ते हो ? जैसे खरगोशके सींग नहीं तो उसका सम्बन्ध तो नहीं जोड़ा जाता। इसी प्रकार यदि ये दोनों धर्म कुछ हैं ही नहीं तो फिर सम्बन्ध क्या जोड़ोगे ?

वस्तु व्यवस्था-- भैया ! सीधी बात तो यों है कि कोई भी वस्तु प्रवर्तमान निवर्तमान धर्मसे व्यतिरिक्त नजर नहीं आता है। मनुष्य क्या है ? अगर कोई जवान मनुष्य खड़ा है तो जवान पर्यायमें जो खड़ा है वह मनुष्य है और अगर कोई बालक पर्यायमें जो खड़ा है वह मनुष्य है । तो प्रवर्तमान और निवर्तमान को छोड़कर हम क्या बतावेंगे। वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक है । जिन दार्शनिकोंने यह कोशिश की है कि पर्याय न मानकर केवल एक द्रव्य स्वभाव ही मानते हैं तो उनका वह मंतव्य केवल एक कल्पना भरका रह गया है, उपयोगमें नहीं आ सकता. यत्नमें नहीं आ सकता, अर्थ क्रिया नही बन सकती। तो बात सीधी यों है कि जगतमें जितने परिणमन पाये जायें उतने तो पदार्थ हैं। यहाँ परिणमन कहकर एक अभेद परिणमनकी बात कही जा रही है। जितने बदलने वाले धर्म हैं. सत् हैं उतने ही तो पदार्थ हैं और ये सब धर्म एक दूसरेसे मिलते जुलते हैं। तो उस मिलने जुलनेकी दृष्टिसे जब हम इन पदार्थों का परिचय करते हैं तो ये समस्त पदार्थ लोकमें जितने जो कुछ हैं वे सब ६ जातियोंमें मिलेंगे। पदार्थ ६ नहीं हैं, पदार्थ तो अनन्तानन्त हैं पर उन पदार्थोंकी सदृशता विशदृशताकी दृष्टिसे निरखा जाय तो उनकी जातियाँ ६ हैं । कुछ द्रव्य जीव जातिके रहे कुछ पुद्गल जातिके रहे कोई एक अधर्म द्रव्यकी जातिके रहे. कोई एक धर्म द्रव्यकी जातिके रहे, कोई एक अधर्म द्रव्यकी जातिके रहे और कुछ काल जातिके रहे । ये अनन्तानन्त द्रव्य सब परिणमनशील हैं और इनकी पर्यायें प्रतिसमय होती रहती हैं, पर परिणमनमें साधारण अथवा असाधारण ये निमित्तोंसे भरा सारा संसार है ही। एक द्रव्यका परिणमन दूसरे द्रव्यके परिणमनमें निमित्त बनता है। तो इस प्रकार इस लोककी रचना निसर्गतः हो रही है।

प्रकृतिके कर्तृत्वका यथार्थ भाव—निसर्गतःका अर्थ है प्रकृतिसे, स्वभावसे, पर किसकी प्रकृतिसे हो रही है ? यह परिणमन बोलनेमें ही न देखा जाय और उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणमन वालेसे अलग प्रकृति मान ली जाय तो वहाँ विडम्बना है, अन्यथा समस्त पदार्थ परिणमनशील हैं, वे प्रकृत्या अपनी रचना करते रहते हैं इसमें क्या बिगाड़ है? और देख लो प्रकृति कर्ता हो गयो। प्रकृति कर्ता है इसका अर्थ है कि प्रत्येक पदार्थका जो निजी उपादान है, निजी प्रकृति है वह कर्ता है और वह प्रकृति अपने अपने अधिष्ठापक पदार्थका ही कर्ता है न कि अन्य पदार्थका कर्ता था। यों तो प्रकृति कर्ता माना जा सकता है पर प्रकृति कोई एक सर्वव्यापी एक स्वतंत्र वस्तु है और प्रकृतिको छोड़कर अन्य कोई वस्तु नहीं है यहाँ सृष्टिके प्रसङ्गमें केवल दो ही तत्त्व हैं पुरुष और प्रकृति। आत्मा और प्रधान और कुछ नहीं है। बाकी तो तीसरे चौथे आदिक जो कुछ होंगे वे सब प्रकृतिके परिणमन हैं। यह बात युक्त नही बैठती।

निर्मोह होनेके लिए परिणमनके निर्णयका महत्त्व -- यह एक परिणमन का निर्णय है। यह निर्णय करना कितना आवश्यक है इसकी महत्ता देखिये! जो मनुष्य परिणमनोंकाका यथार्थ निर्णय नहीं कर सकता उसका मोह कभी छूट नहीं सकता और मोह छूटे बिना शान्ति नहीं मिल सकती। जब यह विदित होगा कि जितने पदार्थ हैं उतने परिणमन हैं और उन पदार्थोंका वह परिणमन उन पदार्थों से ही आविर्भूत हुआ है, उसको करनेमें कोई दूसरा पदार्थ समर्थ नहीं है। ऐसा निर्णय यदि आया है, हृदयमें विश्वास जमा है तो वहाँ यह भेद नहीं बन सकता कि मैं अमुक पदार्थमें अमुक परिणति बनादूं, अथवा मेरे ही सहारे इस कुटुम्बका जीवन इनका पालन पोषण है, यह फिर दृष्टि न रहेगी। वह जानेगा कि इन परिवार जनों का यदि अनुकूल भाग्योदय है तो मैं क्या, कोई और निमित्त बनेगा और अगर उनका ही उदय अनुकूल नहीं है तो हम क्या, कोई दूसरा भी उनके लिए निमित्त न बनेगा। राजा सत्यन्धरकी रानीने अपने बालक जीवन्धरको श्मशानमें जन्म दिया उस समय कोई सहारा न था। रानीने सोचा कि यदि इसका भाग्य है तो हम जैसे लोग क्या, देव भी रक्षा करेंगे और यदि भाग्य नहीं है तो यह हमारी गोदमें रहकर भी विदा हो सकता है। रानी बच्चेको छोड़कर चल दी या छिप गई। होता क्या है कि उसी समय किसी सेठका बच्चा मर गया था उसे वह श्मशानमें ले गया था। उस बच्चेको तो श्मशानमें छोड़ा और दूसरा (जीवंधर) बच्चा उस सेठने पा लिया। उस सेठने उस बच्चेको लाकर अपनी पत्नीको दे दिया। उसने उस बच्चेकी रक्षा की। तो भाई यहाँ कौन किसकी रक्षा करता है? सभीकी अपने अपमें अनुकूल भाग्योदयसे रक्षा होती है, तो जिन्दगी शेष बची है उतनी ही जिन्दगीमें इस मोहको छोड़दें तो हम आपका भला हो जायगा।

धर्मको धर्मीसे अभिन्न माननेपर कार्यकारण भावकी असिद्धि -- शङ्काकार कहता है कि प्रकृतिमें प्रवर्तमान और निवर्तमान धर्म धर्मी प्रकृतिसे अभिन्न है, अनर्थान्तरभूत है। जो जिसका धर्म है वह वही एक अर्थ है अन्यथा अर्थात् धर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और धर्मीको अन्य अन्य अर्थ माननेपर वे धर्मीके धर्म ही नहीं कहला सकते हैं। अब इसपर विचार किया जाता है कि यदि धर्मोंको धर्मीसे अभिन्न माना जाय तो एक धर्मीस्वरूपसे अव्यतिरिक्तता होनेसे धर्म और धर्मीका एकत्व ही रहा फिर धर्मीका परिणाम ही कहाँ हुआ और धर्मोंका विनाश व उत्पादन ही कहाँ हुआ ? जैसे कि धर्मीके स्वरूपका उत्पादव्यय नही होता। अथवा धर्मोंकी तरह धर्मी भी अपूर्व अपूर्व उत्पन्न होगा व पूर्व पूर्व नष्ट होगा फिर तो किसीका कोई परिणाम ही सिद्ध नही होता इस प्रकार परिणामके वशसे भी व्यक्त और अव्यक्तमें कार्यकारण भाव सिद्ध नही होता है तब तो प्रकृतिसे बुद्धि, बुद्धिसे अहङ्कार फिर भौतिक पदार्थ आदि उत्पन्न मानना केवल कल्पना तक ही सीमित रहा।

सदकरणहेतुसे कारणमें उत्पत्तिसे भी पहिले कार्यकी सत्ता सिद्ध करनेका प्रयत्न – प्रकृतिकर्तृत्ववादमें अब यह बताया जा रहा है कि प्रकृतिमें सारे कार्य सदा मौजूद रहते हैं। उत्पत्तिकी जो बात कही जाती है उसका अर्थ आविर्भूति है, उत्पन्न होना नहीं। जैसे किसी जगह बहुत सी चीजें रखी हैं और उनपर पर्दा डाल दिया तो पर्दाके हटानेसे चीजें उत्पन्न नहीं होतीं किन्तु जो चीज पहिलेसे सत् थीं उनका उनका आविर्भाव हो जाता है। इसी तरह प्रत्येक पदार्थमें समस्त कार्य सदा रहते हैं, आवरण हटनेपर वह कार्य प्रकट हो जाता है। इसका भाव यों समझिये कि जैसे गेहूँके दानेमें गेहूँके पेड़ और उन पेड़ोंमें जो आगे दाने होंगे वे यों समझते जाइये, सारी की सारी चीजें एक गेहूँके दानेमें अब भी मौजूद हैं, सिर्फ खेती करके बीज डालकर केवल उन कार्योंका आविर्भाव किया जाता है। इसीके समर्थनमें एक हेतु दिया जा रहा है –'असद्करणात्'। पदार्थके सारे कार्य जो आगे होंगे वे अब भी सद्भूत हैं। यदि सदभूत न हों, असत हों तो जो असत् चीज है वह किसी भी प्रकारसे सत् नही की जा सकती है यह उनका हेतु है। यदि कारणात्मक पदार्थकी उत्पत्तिसे पहिले कार्य नही होता तो किसी भी समय किसीके भी द्वारा वह किया न जा सकता था। जो चीज है ही नहीं, असत् है वह चीज कभी किसीके द्वारा की भी जा सकती है क्या ? यदि असत् चीज भी सत् की जा सकती है तो गधेके सींग, आकाशके फूल, धुवेंकी छाया आदिक भी जो असत् चीजें हैं उन्हें सत्रूप बना लिया जाय। पर ऐसा होता तो नही देखा जाता। तो असत चीज किसीके द्वारा सत नहीं बनायी जा सकती। इससे यह सिद्ध है कि पदार्थमें ये सारे कार्य जो किए गये हैं वे सबके सब अब भी वहाँ सत हैं। सिर्फ युक्तिसे उनको प्रकट किया जाता है।

सत्कार्यवादके मन्तव्यका दृष्टान्तों द्वारा स्पष्टीकरण– जैसे समझलो, बताओ दूधमें सत है कि नहीं ? अगर दूधमें घी सद्भूत नहीं है तो फिर उस दूधमेंसे कभी घी निकाला ही नहीं जा सकता। शङ्काकारका यह मंतव्य है कि कारणात्मक पदार्थमें प्रकृतिमें वह साराका सारा विश्व, वे समस्त पर्यायें सदा सत हैं। देखो तेल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आदिकके द्वारा तेल कार्य उत्पन्न होता है। तिलसे तेल निकलता है तो तिलोंमें तेल पहिलेसे ही मौजूद है तब तो वह तेल निकलता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह तेल कहीं बाहरसे लाया गया हो। यही बात मनुष्योंमें ले लो। चाहे कोई सालभरका ही बच्चा क्यों न हो उसमें भी उसका बेटा मौजूद है, उसमें अगर उसका बेटा मौजूद नहीं है तो फिर वह बेटा हो कहाँसे जाता है? अगर उसमें उसका बेटा पहिलेसे मौजूद न हो तो बेटा उसके द्वारा कभी बनाया ही नहीं जा सकता। ऐसा एक मंतव्य है। इससे प्रकृतिमें वे सारीकी सारी चीजें मौजूद हैं तभी तो सारीकी सारी चीजें उस प्रकृतिमेंसे निकल रही हैं। जिस योग्य जो साधन है उस योग्य वैसी चीजें निकलती रहती हैं, वैसा प्रकृतिसे कार्य बन रहा है ऐसा माननेमें क्या दोष है?

उत्पत्तिसे पहिले कारणात्मक पदार्थमें कार्यके सत्वकी असिद्धि— अब सत्कार्यवादका समाधान करते हैं। तुम्हारी यह युक्ति कि पदार्थमें यदि कार्य नहीं होता तो वहाँसे कार्य निकला कैसे? अरे, किसी बिलमें घुसा है कोई खरगोश तब ही तो खरगोश वहाँसे निकल आयेगा और यदि वहाँ खरगोश है ही नहीं तो फिर कहाँसे खरगोश निकल आयगा? तो इसी तरह इन सब पदार्थोंमें जो उसका कार्य होनेको है वह उसमें पहिलेसे ही पड़ा हुआ है तभी तो निकलता है। यदि उसके अन्दर पहिलेसे ही वह कार्य पड़ा न हो तो वह कार्य किया नहीं जा सकता। इसके समाधान में यह कहा जा रहा है कि हम इसको इस हेतुसे उल्टा करके भी तो कह सकते हैं। पदार्थमें कार्य सत नहीं पड़ा है, कार्यका सत्त्व यदि है तो करनेकी जरूरत ही क्या रही? वह तो पूर्ण स्वतन्त्र सत है ही। फिर करें क्या? फिर और बतलाओ! यह कहा कि प्रत्येक पदार्थमें जो कार्य बननेको हैं वे सारे कार्य उस पदार्थमें इस समय भी मौजूद हैं। तो क्या वह कार्य सर्वथा असत है अथवा कथंचित सत है? बीजमें अंकुरा हैं अब भी हैं यह कहा है शङ्काकारने। गेहूँके दाने जिनको आप थालीमें रखकर बीनते हैं उन प्रत्येक दानोंमें पेड़ अभीसे ही बसे हुए हैं। एक गेहूँके दानेमें अनगिन तो पेड़ और अनगिनते दाने अब भी मौजूद हैं यह कहा है शङ्काकारने। उसकी युक्ति दी है कि वह असत हो, न हो तो किया कैसे जा सकता है? गधेके सींग हैं नहीं तो उन्हें पैदा भी किया जा सकता है क्या? इसका उत्तर सीधा यही है कि अगर हो तो फिर करनेकी क्या जरूरत? वह तो है ही। और यदि है तो यह बतलाओ कि वह सर्वथा है या कथंचित? गेहूँके दानोंमें यदि पेड़ हैं तो वे सर्वथा उसमें घुसे हैं या कथंचित? ये सब बातें हैं बड़ी सरल, कठिन कुछ नहीं है केवल ध्यानसे सुननेभरकी बात है। जीवनमें थोड़ासा यह भी जानना चाहिये कि पदार्थका स्वरूप क्या है? मेरा स्वरूप क्या है? कुछ एक यथार्थ ज्ञान करनेकी भी उत्सुकता होनी चाहिये। केवल एक परिग्रहके परिणामोंमें ही अगर इस अमूल्य मानव जीवनको गवां दिया तो उससे फिर लाभ क्या पाया? सब प्रकारसे विज्ञान सीखेंगे और उससे अपने आत्माका ज्ञान होगा, उसकी भावना बनेगी तो यह आगे लाभ भी देगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारणमें सर्वथा सत्त्वके विकल्पसे सत्कार्यवादका समाधान—यहां पूछा जा रहा है कि कारणात्मक पदार्थोंमें अर्थात बीजोंमें जो अंकुर पहिलेसे ही मौजूद हैं वे सर्वथा मौजूद हैं या कथंचित ? बटके पेड़में बीज तो सरसोंके दानेसे भी कईवां भाग छोटा होता है पर उस बीजमें जो करीब १ फर्लांगकी चौड़ाईको लिए हुए पेड़ खड़ा रह सकता है वह पेड़ उसमें पहिलेसे ही मौजूद है। तो बताओ उस बटके बीज में वह पेड़ सर्वथा मौजूद है या कथंचित ? अगर कहो कि सर्वथा मौजूद है तो जब सर्वथा मौजूद है, पूरे रूपमें है तो फिर उसमें युक्तियां लगानेकी क्या जरूरत ? और परिश्रम करनेकी क्या जरूरत ? वह तो सर्वथा मौजूद है। यदि उस बटके बीजमें वृक्ष सर्वथा मौजूद है तो फिर क्या है उसी बीजके नीचे बैठ जावो, छाया मिल जायेगी। है कहां छाया ? है कहां वृक्ष ? और फिर वृक्ष उगानेके लिए युक्ति क्यों की जा रही है ? यदि सर्वथा उस बीजमें वृक्ष पहिलेसे ही मौजूज है। दूधमें घी क्या सर्वथा सत् है या कथंचित् ? अगर दूधमें घी सर्वथा सत् है तब फिर दही बनाकर बिलोनेकी या कार्य करनेकी क्या जरूरत रही ? उसमें फिर उत्पाद क्या रहा ? फिर कारणोंके द्वारा वह उत्पत्ति क्यों की जा रही है ? जो सब प्रकारसे सत् है वह पदार्थ किसीके द्वारा भी पैदा नहीं किया जा सकता। जैसे प्रधान, प्रकृति और आत्मा ये जो दो तत्त्व माने गये हैं ये सर्वथा सत् हैं या कथंचित् ? यदि सर्वथा सत् हैं तो फिर इसमें कार्य करानेको, प्रयोग करनेकी जरूरत तो नहीं पड़ती। अब दूधमें दही सर्वथा सत मान लिया। प्रकृतिमें महान अहङ्कार आदिक सर्वथा सत मान लिया तो फिर कार्यपना क्या रहा ? जो सब प्रकारसे मौजूद है वह कार्य नही कहलाता। घड़ी भी पूरी मौजूद है चौकी भी पूरी मौजूद है तो यह कहेंगे क्या कि चौकी घड़ीका कार्य है या घड़ी चौकीका कार्य है ? इसमें कार्यकारणपना क्या ? जब सर्वथा स्वतन्त्ररूपसे सत है। इसी प्रकार जब कोई कार्य कहा जानेका हकदार नही है तो प्रकृति कारण कहे जानेकी भी हकदार नही है।

कारणमें कार्यके कथंचित् सत्त्वके विकल्पपर विचार—यदि कहो कि कथंचित् सत है सर्वथा सत नही तो इसका अर्थ यह हुआ कि शक्तिरूपसे सत है व्यक्त रूपसे नही। दूधमें दही घी शक्तिरूपसे है, बीजमें पेड़ शक्तिरूपसे है व्यक्तरूपसे नही, पर्यायरूपसे नहीं। उसमें ऐसी उपादान शक्ति है कि प्रयोग किये जानेपर उसमेंसे वहीं पेड़ उत्पन्न हो सकता है। तो भाई सही बात है। शक्ति मायने द्रव्य। तो शक्तिरूपसे सत है, द्रव्यरूपसे सत है और पर्यायरूपसे असत है। ऐसी हीं घट आदिककी उत्पत्ति मानी जाती है तो वह तो स्याद्वादका मंतव्य हुआ, एकान्तका तो नहीं रहा। एकान्त एकान्तसे नित्य माने तो कार्यकारण भाव तो नही बनता, एकान्त माने तो कार्यकारण भाव नहीं बनता। तब यही बात रही ना कि जैसे घी दूधमें शक्तिरूपसे सत है तो शक्तिरूपके मायने, वही पदार्थ स्वयं, उसीका नाम शक्ति है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारणमें शक्तिके भिन्नत्व व अभिन्नत्वके विकल्प—प्रकृतिमें शक्तिरूपसे परिणाम मान लेनेपर भी शक्तिका अभी निर्णय है। बताओ शक्ति पदार्थसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? थोड़ी देरको इस ढङ्गसे मान भी लो तुम तो बतलाओ यदि शक्ति भिन्न है तो शक्ति तो न्यारी हुई, कारण न्यारा हुआ। अब कार्यका सद्भाव कैसे होगा ? कार्यको छोड़कर शक्ति नामक अन्य पदार्थान्तरका सद्भाव मानना होगा। क्या कारण है कि शक्ति भिन्न है कारण भिन्न है, इससे फिर कार्य उत्पन्न हुआ ? अन्य शक्ति मानो तो यह कहना युक्त नहीं जचता न कोई सीधे मान सकता है कि प्रत्येक पदार्थमें कार्य पहिलेसे ही पड़ा हुआ है। बस उनका आविर्भाव होता है, उत्पत्ति नहीं। इसे कहते हैं सत्कार्यवाद। द्रव्यमें वे सब पर्यायें मौजूद हैं और वे क्रम क्रमसे प्रकट होती हैं, यही तो सत्कार्यवाद है।

कार्यके क्रमनियतपर विचार - जैन शासनमें भी एक मतभेद आजकल हो गया है एक पक्ष कहता है कि पदार्थमें पर्यायें क्रमबद्ध नहीं हैं क्रमनियत नहीं है और दूसरा पक्ष कहता है पर्यायें क्रमबद्ध हैं, क्रम नियत है। देखिये ! स्याद्वादकी कृपा पाये बिना कभी भ्रमके हिंडोलेस उतरकर शान्त नहीं बैठ सकते। ये विभाव परिणमन जो मलिन द्रव्योंमें उत्पन्न हो रहे हैं ये सारे परिणमन उस द्रव्यमें मौजूद हैं और उनकी उत्पत्ति नहीं होती है किन्तु उनका आविर्भाव होता है यह कार्यवादका सिद्धान्त है। तब उस कथनमें और इस कथनमें अन्तर क्या डाला जायगा ? द्रव्यको निहारो, चूँकि द्रव्य सदाकाल किसी न किसी पर्यायमें रहेगा। पर्यायमें रहेगा। पर्याय बिना द्रव्य नहीं रह सकता। तब द्रव्य कितना है ? अनन्त पर्यायोंका समूह द्रव्य है यह कथन है। इस कथनमें यह बात नहीं पड़ी हुई है कि इन इन क्रमोंसे वे पर्यायें होती हैं और उन पर्यायों का जो समूह है सो द्रव्य है। यद्यपि पदार्थमें पर्यायें होती हैं, और जब जिस विधिसे जो होने को होता है, वह होता है लेकिन द्रव्यकी ओरसे ऐसा क्रम माननेपर सत्कार्य वादका सिद्धान्त आता है और विधि विधान पूर्वक वे सब पर्यायें होती हैं, अब उन होने वाली पर्यायोंको एक ज्ञानके द्वारा जानकर, विशेष ज्ञानके द्वारा, केवलज्ञानके द्वारा जानकर फिर यह समझना अथवा बताना कि देखो अवधिज्ञानके अपनी सीमामे पदार्थों के बारेमें सर्व पर्यायें जानी हैं, वह उस समय वही होगी या नहीं ठीक है होगी, किन्तु यह तो देखना चाहिये कि द्रव्यकी ओरसे उन पर्यायोंका क्रम होनेका गुण पड़ा हुआ है या विधि विधान पूर्वक होती रहने वाली पर्यायोंका विशिष्ट ज्ञानियोंने ज्ञान किया है तो उस ज्ञानकी ओरसे क्रम जाना जाता है। तो इसका निर्णय रखना चाहिये। इसका निर्णय होनेपर यह विदित हो जायगा कि द्रव्यमें पर्यायें कथंचित् नियत है कथंचित् अनियत हैं। क्रमसे ही पर्यायें होती हैं ऐसा द्रव्यकी ओरसे एकान्त करना एकान्त है और पदार्थोंमें पर्यायें अटहट जब चाहे जो हो जायें ऐसा एकान्त मानना भी एकान्त है। वस्तु है, उस वस्तुको हम किसी दृष्टिसे देखते हैं तो हमें क्या विदित होता है यह समझनेकी बात है। विशिष्ट ज्ञानके द्वारा यह हम कहेंगे कि उस पदार्थ ओरसे वे बातें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होती हैं यह भी यथार्थ है। और द्रव्यकी ओरसे जब हम निहारते हैं कि द्रव्य तो सदा किसी भी समय एक पर्यायात्मक होता है। जब द्रव्य जिस पर्यायमें है तब द्रव्य उस पर्यायरूप है। उसमें योग्यता अवश्य है अन्य पर्याय करनेकी, क्योंकि उत्तर पर्यायके उत्पाद बिना द्रव्यकी सत्ता नहीं रह सकती। अब उस योग्य उपादानमें जिस प्रकार का एक सहज अनुकूल निमित्त सन्निधान मिला वहाँ उस प्रकारकी पर्यायें प्रकट होती हैं। इस तरहसे द्रव्यमें पर्यायें पहिलेसे उसमें नियत हैं और विधि विधानसे उसमें पर्यायें होती हैं यह कहना भी यथार्थ है। दृष्टि परखे बिना और उसको योग्य नय विभागसे लगाये बिना वह ज्ञान अस्पष्ट और कुज्ञान हो जाता है।

सत्कार्योंकी कारणमें अभिव्यक्तिके मन्तव्यपर विचार—यहाँ सत्कार्यवादमें यह चर्चा चल रही है कि पदार्थमें वे सब पर्यायें मौजूद हैं और उनका क्रम क्रमसे आविर्भाव होता है, उस ही बारेमें ये सब विकल्प किये जा रहे हैं और पूछा जा रहा है और इस प्रकरणमें यह सिद्ध किया जा रहा है कि कारणात्मक पदार्थमें कार्य मौजूद नही है। वह जिस अवस्थामें है केवल वही कार्य उसमें मौजूद है। आगे होने वाली पर्यायें कारणात्मक उपादानमें मौजूद नही हैं। यदि कहो कि उस कारणात्मक पदार्थमें कार्य तो सारे मौजूद हैं मगर उनकी अभिव्यक्ति नही है, उनका प्रकटपना नही है। सो उनको प्रकट करनेमें कारणोंके व्यापारकी जरूरत है। इसलिए कारण जुटाना व्यर्थकी बात नहीं है। जैसे कई चीजें एक चद्दरसे ढकी हुई हैं जो चद्दर बिना धुला है। अब शोध वाला कोई पुरुष उसके भीतरसे कोई चीज निकालना चाहे तो वह लाठी, डंडा या चिमटा आदिसे उस चद्दरको अलग करता है तो उसमेंसे चीज उत्पन्न की या अभिव्यक्ति की ? कहते हैं कि यह भी बात युक्त नही, वहाँ तो सब पदार्थ एक साथ स्वतन्त्र अपने अपने क्षेत्रमें है कारण कार्य होनेका प्रसङ्ग नही है। अरे वहाँ भिन्न-भिन्न पदार्थ तो मौजूद हैं उनको उत्पन्न कहाँ किया ? उसने वहांपर कोई चीज उत्पन्न नही की वल्कि चीजकी अभिव्यक्ति की। एक भी पदार्थमें कारणात्मक चद्दर उठाकर कार्य निकाल दे अर्थात किसी चीजको वह बनादे, तब तो हम उसकी तारीफ समझें।

कारणमें कार्यकी अभिव्यक्तिकी पहिले सत्ता व असत्ताके विकल्प—अच्छा थोड़ी देरको अभिव्यक्ति मान लो तो यह बतलाबो कि उस कारणात्मक पदार्थ में सत् जो अभिव्यक्ति हुई है वह आविर्भूति पहिले थी या नहीं ? यदि पहिले सत् थी तो लो अभिव्यक्ति भी पहिले थी, प्रकटपना भी पहिले था, अब कारणकी क्या जरूरत ? और अभिव्यक्ति भी पहिले हो और फिर भी कारण जुटाये जायें तब तो कारण सदा ही जुटासे रहना चाहिये, फिर कारणोंका विराम क्यों लेते ? जैसे दूधमें घी अभिव्यक्त रूपसे भी मौजूद हो तो फिर मथानी चलानेकी क्या जरूरत है फिर भी याने अभिव्यक्ति पहिलेसे होनेपर भी मथानी चलानेकी जरूरत समझी जाती है तो फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनन्त काल तक मथानी चलाते रहो, उसे फिर विश्राम करनेकी आवश्यकता क्यों है। यदि कहो कि वह अभिव्यक्ति कारणात्मक पदार्थोंमें पहिलेसे नहीं है, असत् है तो फिर जब असत् है तो आकाशका फूल जैसे असत् है तो वह तो किसी प्रकार किया नहीं जा सकता, इसी प्रकार अभिव्यक्ति भी असत् है तो किसी भी प्रकार कारणका बनना वह भी किया न जा सकेगा, क्योंकि तुमने तो यह माना है कि जो असत् है वह कभी भी किसी तरह किया नही जा सकता। तो अभिव्यक्ति भी जब असत् है तो अभिव्यक्ति भी न होना चाहिये।

स्वरूपत: पदार्थव्यवस्था भैया ! वस्तु व्यवस्था इस प्रकार है कि प्रत्येक पदार्थ जो अनन्त हैं, एक या दो नही हैं, केवल प्रकृति और आत्मा ये दो ही सदार्थ हों सो नही, किन्तु अनन्त चेतन हैं और अनन्त अचेतन हैं। वे सभीके सभी पदार्थ प्रति समय अपनी एक एक पर्यायमें रहा करते हैं। पदार्थमें एक ही समयमें अनन्त पर्याय मानना क्रमवर्ती पर्यायकी बात नही कहने, किन्तु जितने गुण माने गये हैं उतने ही पर्यायें एक पदार्थमें मानना जैसे एक किसी आत्मामें जानन भी है, देखन भी है, आनन्दानुभवन भी है, यों अनन्त पर्याय मानना भेददृष्टिसे है एक तीर्थ प्रवृत्तिके लिए हैं, समझनेके लिए है, कही किसी भी एक पदार्थमें अनन्त गुण नही पड़े हुए हैं ? सभी पदार्थ अपने अपनेमें एक स्वभावी है और एक समयमें वे एक परिणति करते हैं। हम उस एक परिणतिको समझें इसके लिए आचार्यदेवने कृपा करके उसमें गुण भेद और पर्याय भेदकी बात कही है। कहीं यह न समझना किसी भी पदार्थमें अनन्त गुण मौजूद रहा करते हैं। जैसे किसी थेलीमें हजार मुहरें रखी रहा करती हैं। यों आत्मामें अनन्त गुण भरे नही हैं, आत्मा एक स्वभावी है, उसका जिसे परिचय नही है उसको समझानेके लिए और क्या प्रयोग किया जाय ? उसे भेद करके ही सतझा जा सकता है और भेद भी वही किया जाता है जो पदार्थके अनुकूल पड़ता है। तो यों समझिये कि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय अपनी-अपनी पर्यायमें रहता है। अगले समयमें अपनी एक नवीन पर्याय धारण करता है। तो वह जैसी योग्यता वाला पदार्थ है और उसे जिस अनुकूल निमित्तका सन्निधान मिलता है उसके अनुकूल उसमेंसे पर्यायें उत्पन्न होती हैं।

सत्कार्यवादका स्रोत कुछ मन्तव्योंकी निकटता—उपादानसे कार्य प्रकट होते हैं इस ही चीजसे किस प्रकारसे धीरे-धीरे ज्ञानमें बदलकर सत्कार्यवाद बनेंगे इसका वृत्तान्त सुनने लायक है। यह तो सिद्धान्त है ही कि प्रत्येक योग्य उपादान अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर अपनी एक परिणतिको करता है। अब उसके बारेमें सोचो कि वे पदार्थ अनन्तकाल तक रहेंगेकि नहीं रहेंगे। जो सत है उसका कभी अभाव नहीं हुआ करता। तो अनन्त काल तक रहेंगे तो उसमें अनन्त समय हैं। तो उन अनन्त समयोंमें प्रतिसमय पर्याय रहेगी कि नहीं रहेगी और जिस विधिसे जो भी विधि होनेको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है उस समय वह पर्याय होगी कि नहीं ? होगी । अब धीरे-धीरे बढ़ते है अहा, तो फिर यह समझमें आया कि ऐसे क्रमसे उस समयकी जो जो पर्याय होती रहेंगी उन उन पर्यायोंका समूह ये पदार्थ हैं लेकिन और भी आगे बढ़े। उन पदार्थोंमें वे पर्यायें किसी के द्वारा उत्पन्न तो होती नहीं । कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थसे परिणमन कर सकता नहीं और उस पदार्थमें वे अनन्त पर्यायें होती हैं तब फिर वे कहाँसे होती हैं ? कहीं से नहीं होती हैं उत्पन्न नही होती हैं किन्तु उस द्रव्यमें वे पर्यायें भरी हुई हैं और उन पर्यायें भरी हुई हैं और उन पर्यायोंका आविर्भाव होता है । लेकिन चलती जाने दो । यों सत्कार्यवाद आ जाता है

प्रकृत प्रकरणका आद्य आधार यह प्रकरण किस लिए चल रहा था? मूलमें यह बात थी कि निरावरण आत्मा सर्वज्ञ होता है । प्रकृतिवादी कहते हैं कि आत्मा सर्वज्ञ नहीं होता है प्रकृति सर्वज्ञ होती है, प्रकृतिमें ही आवरण है और प्रकृतिमें ही आवरण का विनाश होता है सो प्रकृति सर्वज्ञ है । प्रकृति ही क्यों सर्वज्ञ है, यों सर्वज्ञ है कि प्रकृति विश्वकर्ता है। जो सारे विश्वका करने वाला होगा वही सारे विश्वका जानने वाला हो सकता है । इस तरह कर्तृत्ववादका प्रत्यक्षज्ञानके स्वरूपकी सिद्धिके प्रसंगमें प्रकृतिके मन्तव्यमें सत्कार्यावदका सहारा लेना पड़ा । इस विश्वकी रचना किस प्रकार होती है यह प्रकरण तो नहीं इस प्रसंग में । प्रकरण तो यह था कि जब सामग्री विशेषसे समस्त आवरणोंका विश्लेष हो जाता है तो जो ज्ञान प्रकट होता है वह पूर्ण विशद प्रत्यक्ष ज्ञान है, सर्वज्ञाता है इस प्रसंग में ईश्वरकर्तावादियों ने तो यह कहा था कि आवरणमें विनाश होनेपर सर्वज्ञता नहीं हुआ करती किन्तु अनादिमुक्त जो एक सदाशिव है, वही सदा सर्वज्ञ है उसके अतिरिक्त अन्य कोई सर्वज्ञ नहीं होता जीव कर्मों से लदे हुए हैं अनमें अनकोंके आवरणोंका क्षय होता तो है और आवरण विनाशसे मुक्ति हो जाती है, पर उनकी मुक्तिमें ज्ञानगुणका ही विनाश हो जाता है, सर्वज्ञता आये कहां से ? सो अदादिमुक्त सदाशिव ही समस्त अर्थ समूहकार ज्ञाता है और उसकी सर्वज्ञता सिद्ध करने में हेतु दिया था यह कि क्योंकि वह समस्त विश्वका कर्ता है । जो समस्त विश्वका करने वाला है वह ही समस्त विश्वकी बातों को जान सकता है । जब सम्वाद विसम्बाद चला उसके बादमें प्रकृतिकर्तृत्वादियोंने यह कहा कि यह बात ठीक है कि चेतन बुद्धिमान ईश्वर सदाशिव कोई सर्वज्ञ नही हो सकता क्योंकि सर्वज्ञता तो प्रकृति के ही हुआ करती है । प्रकृतिमें ही ज्ञानका आवरण पड़ा है और प्रकृतिमें ही आवरणका विनाश होता है तो प्रकृति सर्वज्ञ बनता है और उसमें भी यह हेतु दिया गया कि चूंकि प्रकृति विश्वका करने वाली है इस कारण प्रकृति सर्वज्ञाता है इसी बनाये गये प्रसंगमें इस समय यह चल रहा है कि प्रकृतिने इस सृष्टिको रचा। प्रकृतिसे बुद्धि उत्पन्न होती बुद्धि से अहकार होता अहंकारसे फिर यह सारा विश्व उत्पन्न होता है। तो यह कार्य कारण विभाग प्रकृति आदिकमें कैसे हुआ ? इसकी कुछ चर्चाओंके बाद इस बात पर आये कि प्रकृतिमें वे सब कार्य मौजूद हैं अतः प्रकृतिसे वे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार्य होते हैं सत्कार्यवादके सिद्धान्तका यह भाव है कि जितने पदार्थ होते हैं उन पदार्थों में जो कार्य प्रकट होता है वह कार्य बनाया नहीं जाता किया नहीं जाता किन्तु ये सब कार्य उस परपदार्थ में रहते हैं। सत्कार्यवाद की सिद्धिमें हेतु भी दिया गया है कि यदि कारणात्मक पदार्थोंमें कार्य सत् न हो तो जो असत् है वह कभी किया ही नहीं जा सकता जैसे खरगोश के सींग नहीं होते तो वे कभी किये ही नहीं जा सकते। इसी प्रकार पदार्थोंमें यदि कार्य असत है तो वे वहां उत्पन्न कैसे हो सकते हैं ? इस सम्बंधमें बहुत विस्तार से वर्णन करके यह सिद्ध किया कि कारणात्मक पदार्थमें कार्य सदा नहीं रहा करता है उनमें योग्यता है, शक्ति है।

१) उपादान ग्रहण हेतुसे सत्कार्यवादकी सिद्धि पर विचार —अब शंकाकार कहरहा है कि यदि पदार्थ में कार्य न हो तो उपादान का ग्रहण सम्भव नहीं है अर्थात् कारणमें कार्य मौजूद है तब तो वह कार्य उस कारणरूप उपादानको ग्रहण करता है यदि कार्य न होता तो उपादानका ग्रहण सम्भव न था। जैसे धान्यके बीज आदिकमें अंकुर असत हो तो फिर उनसे अंकुर पैदा ही नहीं किये जा सकते और फिर कोदोंके बो देनेसे धान क्यों नहीं पैदा हो जाता, धानके बीज उत्पन्न करनेके लिए धान ही क्यों बोते हैं ? यह जो व्यवस्था बनती है कि धानके बीजसे ही धानके अंकुर उत्पन्न होंगे तो यह व्यवस्थातय बनती है जब उन धानोंमें अंकुरे पहिले से हीं मौजूद है जिस कारणसे जिस कार्यका सत्व हुआ करता है उस कारणसे वही कार्य होता। इससे सिद्ध है कि कारणात्मक पदार्थ में कार्य पहिले से ही मौजूद हैं। यह सतकार्यवादीका दूसरा हेतु है। समाधान करते हैं कि यदि वह कार्यभूत पदार्थ सब प्रकारसे सत् है, तो फिर उनका कार्यपना क्या ? वे तो हैं ही। कार्य तो उसे कहते हैं कि न हो और किया जाय। जो कार्य सर्वप्रकारसे सत ही है तो वह कार्य क्या रहें। जब उनमें कार्यपना न रहा तो वह उपादानका ग्रहण भी क्या करे। यही सिद्ध होता है कि कार्य असत है। तब तो उपादान को ग्रहण करके वे उत्पन्न हुए हैं जो मौजूद ही हैं वे अब किसको ग्रहण करें, स्वतंत्र ही दोनों सत हो गये कारणात्मक पदार्थ और कार्यात्मक पदार्थ जब दोनों सत हो गये तो कौन किसको ग्रहण करे। यदि कारणमें कार्य न होता तो वे उपादानको ग्रहण न करते इस हेतु से तो उल्टी बात सिद्ध होती है कि चूंकि सत् कार्य नहीं हैं अतएव वे उपादानके ग्रहण करनेसे उत्पन्न हुए हैं।

२) सर्वसम्भवाभाव हेतुसे सत्यार्यवादकी सिद्धिपर विचार अब तीसरा हेतु देते हैं सत्कार्यवादी कि यदि असत् ही कार्य हो पदार्थमें वह कार्य नहीं मौजूद हैं तो सभी पदार्थोंसे चाहे तृण हों, पाषाण हों, कुछ हों सभीसे सब कार्य बन बैठे। सोना चाँदी आदिक भी कार्य बन बैठेंगे यदि कार्यको कारणमें असत् मानोगे। जब कार्यको सत् माना है तो जिस कारणमें जो कार्य है वह कार्य ही उस कारणसे अभिव्यक्त होता है, यह व्यवस्था बनती है, पर कार्यको असत् माननेपर तो जैसे धानके बीजमें धानका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पेड़ असत् है इसी प्रकार कोदों, गेहूँ आदिकके पेड़ भी उस बीजमें असत् हैं, अथवा मनुष्य जानवर ये भी असत् हैं। फिर एक धानके बीजसे सारे विश्वकी रचनायें क्यों नही बन जाती ? इससे सिद्ध है कि कार्य पहिलेसे ही मौजूद है। तब उस उस पदार्थसे उस उस कार्यकी उत्पत्ति होती है। उत्तरमें कहते हैं देखो ! जन्म कहते किसे हैं ? होनेका नाम जन्म है लेकिन जो सत् कार्यवादी हैं जो कार्यको कारणमें पहिलेसे ही सत् मान रहे हैं उनके यहाँ तो सभी कार्य एक कारणसे उत्पन्न हो जाने चाहियें। समस्त कार्य उत्पन्न न हो सकें यह बात तो कारण कार्य विभागका प्रतिनियम माननेवालोंके बन सकती हैं। जो कारण जैसी योग्यता रखता है, उसे जैसा अनुकूल निमित्त प्राप्त हुआ है वैसी ही उसमें रचना होती है। जो कार्योंको पहिलेसे ही सत् मान रहा है उसके यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि सभी कार्य क्यों नही इसमें हो जाते हैं ? उसमें क्या व्यवस्था बनायें कि एक धानके बीजमें धानका अंकुर ही है, उसमें भैंस बकरी, गाय आदि क्यों नही उत्पन्न हो जाते जब ये नही उत्पन्न होते हैं उस धान के बीज मेंतो यह ही इस बातको सिद्ध करता है कि वहां कार्य मौजूद नहीं है किन्तु उपादान निमित्त की जो पद्धति है उस पद्धतिपूर्वक कार्योंकी उत्पत्ति होती है।

३) **शक्तस्य शक्यकरण हेतुसे सत्कार्यवाद सिद्ध करनेका प्रयत्न** – शंकाकार कहता है कि वे सभी कार्य क्यों नही हो जाते एक कारण से यह तो दोष वहाँ ही सम्भव है जो कारणका प्रतिनियम नही मानते। यहां तो कारण माना जा रहा है। प्रतिनियम कार्यों के जो कारण हैं उनकी प्रतिनियत शक्ति होती है। कारणों की अपनी अपनी जुदी-जुदी शक्ति होती है और उस शक्तिके अनुसार उसमें कार्य उत्पन्न होता है। यह उपालम्भ देना कि किसी भी कारणसे सारे कार्य क्यों नही उत्पन्न हो जाते ? यदि असत् है कार्य है, तो यह उपालम्भ यों ठीक नही बैठता कि यद्यपि कार्य तो सब असत हैं, किसी भी कारणात्मक पदार्थमें लेकिन उनमें प्रतिनियत शक्ति है, उसके कारण वह किसी कार्यको करता है किसी को नही करता है। यदि कोई स्याद्वादी उत्तरमें कहे ऐसा तो शंकाकार कह रहा है कि भाई जो समर्थ भी हेतु है वह समर्थ हेतु भी उस कार्य को करता है जो शक्यक्रिय है। जिसकी क्रिया की जा सकती है। जिसकी क्रिया न की जा सके उसे समर्थ हेतु भी नही कर सकता और जब कार्य वहां सत हो तब यह बात वन सकती है कि उसकी क्रिया को यह समर्थ हेतु कर सकता है। सत् न हो तो उसकी क्रिया कर नही सकता। जैसे आकाश का फूल असत है तो उसकी क्रिया नही की जा सकती है। तो इससे सिद्ध है कि कार्य सत है। तब उसकी क्रिया शक्य है और समर्थ हेतु तब उस शक्य क्रियाको कर सकता है।

४) **शक्तस्य शक्यकरण हेतुसे सत्कार्यवादकी सिद्धिका अभाव** – शक्यकरण के सम्बन्धमें अब समाधान करते हैं कि यह भी प्रलाप मात्र है कि यह शक्य हेतु यह शक्य क्रिया। अरे, जहां यह बात मानी जाती है कि किसीके द्वारा कुछ निष्पादन हुआ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता है तो निष्पाद्यका, कार्यपना जो बने और जो कार्यका निष्पादक हो उसका कारणपना बने। सो कारण शक्ति और कार्य यह व्यवस्था तो वहां सम्भव है जहां किसीके द्वारा कुछ कार्य पहिलेसे ही सत् मान लिया गया वहां यह व्यवस्था ही कैसे सम्भव है ? जब सब कार्य पहिलेसे कारणमें मौजूद हैं तब फिर उसमें यह कैसे कहा जा सकता कि शक्त हेतु उसको करे। अरे वे तो किये ही रखे हैं फिर शक्तिकी आवश्यकता क्या है ? शक्तिका प्रयोग वहाँ होता है जहां बात कुछ न हो और की जाती हो। तो भाई शक्तिका प्रयोग करके क्रिया उत्पन्न कर ली गई मान लो, पर कार्य जब मौजूद ही है पदार्थमें तब उसकी शक्ति और अशक्तिका प्रश्न ही कहां आता है। यहीं सत्कार्यवादके मंतव्यसे उस दृष्टिकी तुलना करलें। जब एक पदार्थको ही निरखकर केवल यह देखा जाता है कि पदार्थ किसी न किसी पर्यायरूप रहेगा, सदा रहेगा, अनन्तकाल तक रहेगा उसमें अनन्त पर्यायें प्रकट होती हैं। उन अनन्त पर्यायोंका समूह द्रव्य है। इस प्रकार जो दृष्टि सत्कार्यवादसे तुलना करने लगती है, तब इस ही मतका एकान्त हो जाता है और कार्यकारण विधान ये सब गौण हो जाते हैं। तो यह बात कि शक्त हेतु शक्यको ही करे यह वहां ही सम्भव है जहां कार्य मौजूद नहीं है।

(६) **कारणभाव हेतुसे सत्कार्यवादकी सिद्धिपर विचार** शङ्काकार कहता है कि एक हमारा ५वां हेतु सुनो ! पदार्थोंके कार्य पहलेसे ही मौजूद हैं क्योंकि यदि कार्य न मौजूद हो तो वह कारण बन ही नहीं सकता। क्योंकि कार्य नहीं है तो किस का कारण बने ? ये बीज आदिकके कारणत्व जो आये हैं ये तब आये हैं जब उस बीजमें कार्य मौजूद है। उस बीजमें गधाके सींग तो नहीं मौजूद हैं तभी तो उसका कारण यह बीज नहीं बन पाता। यह बीज अंकुरका ही कारण बन पाता है। उस बीजमें अंकुरकार्य पहिलेसे ही सत् है इससे सिद्ध है कि उत्पत्तिसे पहिले कारणमें कार्य मौजूद होता है। अब इस आशङ्काका उत्तर देते हैं कि जब कार्यपना ही सिद्ध नही होता तब कारणभावकी बातें कहना अलाप है क्योंकि जब कार्य पहिलेसे ही मौजूद है तो है सब और सभी नित्य हैं। जगतमें अनन्त पदार्थ पड़े हैं, जितने अनन्त होंगे वे सब एक समयमें सत् हैं, तब उनमें कहनेकी बात क्या आयी ? तो कारणभेद बताना पदार्थमें नही घटित होता, क्योंकि कार्यपना कुछ बात है ही नही। सो जो ५ हेतु देकर यह सिद्ध किया जा रहा था कि कारणमें पदार्थमें सारे कार्य मौजूद हैं यह बात घटित नही होती।

हेतुओंसे असत् निश्चयकी सिद्धि अच्छा अब जरा एक दूसरे ढङ्गसे इसकी परीक्षा करें। इन हेतुओंको देकर तुम क्या करना चाहते ? जैसे ५ हेतु दिये कि असत् किया नहीं जा सकता इसलिए पदार्थ सत् है. पदार्थ सत् न हो तो उपादान का ग्रहण नहीं हो सकता। पदार्थ सत् न हो तो उससे किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। कार्य सत् न हो तो वह कभी किया ही नहीं जा सकता क्योंकि शक्य हेतु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शक्य क्रियको ही करता है। कार्य न हो तो पदार्थमें कारणपना कैसे आयगा ? इन हेतुवोंको देकर तुम क्या सिद्ध करना चाहते ? अर्थात् यह तुम्हारा हेतु क्या काम करता है ? देखिये ! साधन जो दिया जाता है हेतु जो दिया जाता है, वह इस उद्देश्यसे दिया जाता है—एक तो प्रमेयके विषयमें प्रवृत्ति किये जानेमें संशय विपर्यय ज्ञान आ जाय तो उन्हें दूर करदे। दूसरा काम क्या है उन साधनोंका कि साध्यके निश्चयको उत्पन्न करदे। हेतु दो काम किया करते हैं लेकिन यह बात सत्कार्यवादमें सम्भव ही नहीं है अर्थात् हेतु देकर साध्यको सिद्ध करनेकी बात भी सत्कार्यवादमें नहीं बन सकती क्योंकि तीन बातोंपर विचार करना है—संशय, विपर्यय और निश्चय हेतुवोंका एक काम तो यह है कि संशय और विपर्ययको दूर करें। बतलावो ये संशय, विपर्यय तुम्हारे मतमें चेतनात्मक हैं अथवा बुद्धि और मनके स्वभावरूप हैं ? याने संशय विपर्ययको या तो चैतन्यात्मक मानो या बुद्धि और मनके स्वभावरूप मानो ! बुद्धि और मन ये पदार्थ हैं और अचेतन हैं, किन्तु आत्मा चेतन है इस सिद्धान्तमें। संशय विपर्ययको किसी भी रूप मानो तो भी संशय विपर्ययकी निवृत्ति सम्भव नहीं है क्योंकि चेतन भी नित्य माने गए हैं बुद्धि भी नित्य मानी गयी है और मन भी नित्य माना गया है। तो जब ये तीन चीजें नित्य हैं और इनमेंसे किसीके स्वभावरूप हो संशय अथवा विपर्यय तो वह भी नित्य हो गया। तो संशय विपर्यय अविनाशी हैं, इनका कोई विनाश नही कर सकता तब फिर निवृत्ति कैसे सम्भव है ? निश्चयकी उत्पत्तिकी भी बात घटित नही होती क्योंकि निश्चय भी सदा सत् है। सत्कार्यवादमें सब चीजें सत् हैं। तो हेतु देकर किसी साध्यके निश्चय करनेकी बात यों सम्भव नही है कि वह निश्चय भी पहिलेसे सत् है. जो सिद्ध करना चाहते वह भी पहिलेसे सत् है, यों निश्चय पहिलेसे ही सत् हो गया तो साधन देना, युक्तियां देना ये सब व्यर्थकी बातें हो जाती हैं। तब फिर जो अनुमानका स्वरूप बनाना चाहते हों, साध्यकी सिद्धि बनाना चाहते हों, साधनप्रयोगकी सार्थकता चाहते हो उन्हें मानना पड़ेगा कि निश्चय असत् है, अभी उसकी उत्पत्ति करोना है, निश्चय उत्पन्न करना है उसके लिये ये युक्तियां दी जा रही हैं। तो यह सिद्ध हुआ ना कि निश्चय असत् है और उसे उत्पन्न करनेके लिए साधन बनाये जा रहे हैं, अनुमान बनाये जा रहे हैं, युक्तियां दी जा रही हैं। जब निश्चय असत् हो गया और साधनसे उत्पन्न किया गया तो तुम्हारे इस हेतुमें अनैकान्तिक दोष आ गया है। ५ हेतु तो इसलिये दिये थे कि यह सिद्ध करें कि सब कुछ कार्य सत् ही होते हैं और यहां क्या बात अब सिद्ध हो रही है कि निश्चय असत् है तब इन हेतुवोंसे असत् निश्चयकी उत्पत्ति की जा रही है। तो जब यह असत् निश्चय हेतुवोंके द्वारा कराया जा रहा है तब यह बात नहीं रही कि सत् न हो तो वह किसी के द्वारा कराया नही जा सकता है।

सत्कार्यवादके पांचों साधनोंकी अनैकान्तिकता—और, देखिये ! ये पांचोंकी पांचों बातें उस निश्चयके साथ विरुद्ध बैठती हैं। असत् निश्चयकी उत्पत्ति ना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन हेतुओंमें तो यह बात तो न रही कि जो सत् है उसको ही किया जाता है, असत्को नहीं किया जाता है। तो जैसे असत् निश्चयका कारण मान लिया ऐसे ही असत् कार्य भी कारणके द्वारा किये गये मान लिया जाना चाहिये। उस असत् निश्चयके लिए जो साधन देकर निश्चय करानेका यत्न किया जा रहा है वह निश्चय असत् है और साधनसे उस निश्चयकी उत्पत्ति करा रहे तो जैसे असत् निश्चयकी उत्पत्तिके लिये विशिष्ट साधन जुटाये, हेतु बनाये इसी तरह असत कार्यकी उत्पत्ति करनेके लिये उपादानका ग्रहण होता है और जैसे तुम्हारा यह निश्चय इन हेतुओंसे जो हुआ यह निश्चय उन हेतुवोंसे क्यों हुआ ? हेत्वाभासोंसे क्यों नहीं हुआ ? साधनाभासोंसे निश्चयकी उत्पत्ति नहीं हुई। जैसे यह बात मानी है इसी प्रकार प्रकृतिमें भी मान लो कि कार्यकी उत्पत्ति प्रतिनियत कारणोंसे होती है। यों ही अटपट जिस चाहे कारणसे नही होती और, जैसे निश्चय असत है, असत होनेपर भी यह समर्थ हेतुवोंके द्वारा किया गया है इसी प्रकार यह कार्य असत होकर भी समर्थ कारणोके द्वारा किया गया है इसमें भी कौनसी विपत्ति आयी ? तथा जैसे तुमने इन ५ हेतुवोंकी कारणता मानी है अपने अभीष्ट साध्य निश्चयकी उत्पत्तिमें इसी प्रकार जो कार्य उत्पन्न होता है उसकी कारणता उस प्रतिनियत पदार्थमें होती है, यह सिद्ध हो गया।

परिणमन व्यवस्था—सीधी बात यहाँ यह सिद्ध हुई कि जगतमें ये समस्त अनन्त पदार्थ हैं। जैसे अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल, एक धर्म, एक अधर्म, एक आकाश, असंख्यात काल ये सभीके सभी पदार्थ प्रतिसमय परिणमनशील हैं। परिणमनशीलता न हो तो इन पदार्थोंकी सत्ता ही नहीं रह सकती। सत्ता है क्योंकि निरन्तर परिणमते रहते हैं। जिसका कोई रूप नही जिसकी कोई मुद्रा नहीं, जिसकी कुछ भी अवस्था नहीं वह तो किया जाता है। उसको कैसे माना जाय ? कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं जो परिणमता न हो और हो, चाहे सदृश परिणमन हो जिसके परिणमनमें परिवर्तन ज्ञात न हो, चाहे किसी भी प्रकारका सूक्ष्मपरिणमन हो परिणमन बिना पदार्थं परिणमनशील है। और जो पदार्थ जिस पर्यायमें है उस उपादानके अनुकूल उस योग्यताके अनुकूल उसमें आगे परिणमनों की बात हुआ करती हैं। इसे कहते हैं योग्यता। सो ऐसे योग्य उपादान अनुकूल साधन पाकर अपने में एक कार्य परिणमनको उत्पन्न कर लेता है। तो ऐसी व्यवस्थातो लोकमें है, पर इस समस्त विश्वको कोई एक अनादिमुक्त सदाशिव कार्य बनाये इसी प्रकार सारे विश्वको प्रकृति रचे यह कल्पनामात्र है।

वस्तुव्यवस्थाके अनुसार प्रकृतिका अर्थ—प्रकृतिका अर्थ यदि साधारण तया ऐसा लेते हो कि प्रकृति जो पदार्थ परिणमता है उस पदार्थमें जिसे परिणमनकी आदत हो, प्रकृति हो, स्वभाव हो, योग्यता हो वह प्रकृति कार्य करती हैं तो इससे बात इतनी निभ जायगी कि पदार्थमें जैसी प्रकृति पड़ी है जैसी योग्यता पड़ी है, जैसा स्वभाव पड़ा है उसके अनुकूल पदार्थमें सृष्टि हो जाती है लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकृति सर्वव्यापी एक है और वह एक प्रकृति समस्त विश्वकी अधिष्ठायकता करती है। किन्तु अणु-अणु प्रत्येक जीव उन सबमें अपनी-अपनी प्रकृति मौजूद है और उनकी ही योग्यता, उनकी ही प्रकृति उनमें कार्य करती जाती है अनुकूल साधन पाकर प्रत्येक पदार्थ अपना कार्य बना रहे हैं और उनको ही प्रकृति कहलो। तो यों प्रकृति की बात बात सम्भव है, दूसरे इस तरह की प्रकृति को कर्ता कहा जा सकता है जिसको कर्ता सिद्ध कर रहे हैं वहसब है यहांका यह जीवलोक और दृश्य मान पुद्गल। इसीमें तो कार्यत्वकी बात बतायी जारही है सो देखिये जितना यह जीवलोक है इन समस्त जीवों के साथ प्रकृति लगी हुई है। कोई लोग कहते कि योग्यता है, कोई लोग तकदीर कहते हैं, कोई लोग कर्म कहते हैं। तो कर्मका ही दूसरा नाम प्रकृति है. चाहे आप कर्म कहो चाहे आप मूल प्रकृति कहो मूल प्रकृतियाँ ८ कहीं है और उत्तर प्रकृतियाँ १४८ कही उन प्रकृतियोंका जैसा विभाव होता है उसके अनुकूल यह जीवलोक की रचना चल रही है। जैसे कहीं पहाड़पर कहीं नदीपर किसी पुलवाड़ीमें फूल शोभायमान हो रहे हों तो कहते हैं कि वाह कितना सुन्दर प्रकृतिका यह खेल है। तो प्रकृति के मायने यहां प्रकृतिरचना, उसका अर्थ यह है कि वह सब है जीवकार्य, जितना जो कुछ भी दिख रहा है कोई तो हैं वे जीवव्यक्तवकाय और कोई हैं संजीवकाय, किन्तु जो नजर आ रहे हैं वे सब जीवके द्वारा ग्रहण किये हुए थे। तो चाहे वह अजीब पुद्गलकी सुन्दरता हो चाहे शरीरधारी जीवों के इन शरीरोंकी सुन्दरता हो, वह समस्त सुन्दरता वह समस्त रचना प्रकृतिकृत है अर्थात् प्रकृति के उदयका निमित्त पाकर ऐसी काय बनी थी और जब वहां जीव सत था तब वह सजीवकाय था जीव चला गया तो अब वह निर्जीवकाय रह गया, मगर उनकी जो मूलमें रचना बनी वह एक जीवके सम्बन्धसे बनी और और वह प्रकृतिके उदयसे बनी। तो यों जो कुछ दिख रहा है चेतन अथवा अचेतन अर्थ समूह, वह सब प्रकृति का खेल है इसमें कोई संदेहकी बात नहीं. लेकिन प्रति अर्थ प्रतिनियत प्रकृति है और वह इन समस्त कार्योंको रचती है यह बात यहा सिद्ध नहीं होती, क्योंकि जातिमें अर्थक्रिया नहीं होती। अर्थक्रिया व्यक्तिगत हुआ करती है। आवान्तर सतमें अर्थक्रिया होती है। जाति तो आवान्तर सत्ताके सदृश स्वरूपको देख कर एक कही जाती है। तो यों प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी प्रकृतिसे है और उनमें अनुकूल साधन मिलनेपर वैसी वैसी रचनायें होती जाती हैं। तो प्रकृति न विश्वकर्त्री है न सर्वज्ञ है किन्तु ज्ञानका स्वभाव आत्मामें है। उस ज्ञानपर आवरण पड़ा हुआ था और युक्तिसे जब आवरणका विनाश होता है तो वह ही आत्मा सर्वज्ञ हो जाता है। और आत्मा सर्वज्ञ हुआ ज्ञान सर्वज्ञ हुआ कुछ भी कहो, बस उस ज्ञानका नाम प्रत्यक्ष ज्ञान है।

व्यवहार्य समागमोंके स्वरूपनिर्णयका कर्तव्य—जिन पदार्थोंमें हमारा रहना होता है, जिनसे व्यवहार बन रहा है ऐसे पदार्थोंका कैसे निर्माण हुआ, उसमें क्या सम्बन्ध है आदिक बातोंका निर्णय करना एक सत्य सुख वालेका प्रथम कर्तव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है क्योंकि क्लेशका कारण है केवल मोह। सो मोह दूर हो यह उपाय सभी दार्शनिकोंने बताया है, उन्ही उपायोंका यहाँ निर्णय करते हैं कि वास्तविक उपाय कौनसा है। ये दार्शनिकोंके बताये हुए उपाय जो कि अपने-अपने भिन्न मत भिन्न विषयोंको लिए हुये है परस्पर विरोधी हैं, अगर उनका परस्पर विरोध है तो वे सब उपाय आत्म-हितके नहीं रह सकते। उनमेंसे यह छटनी होगी कि कौनसा उपाय सत्य है। और यदि उनका परस्परमें विरोध नहीं है तो हमें वह एक प्रकाश अपनेमें करना होगा जिस प्रकाशमें हमको दार्शनिकोके उन सब उपायों का प्रयोजन और मर्म ज्ञात हो जाय और उस ही एक उद्देश्यपर आजाय कि इन दार्शनिकोंने क्या किया था इस सत्य उद्देश्यके लिए प्रयास किन्तु थोड़ा सा नय विभाग की सावधानी न होनेसे धीरे-धीरे और और भक्तोंने, अन्य-अन्य लेखकोंने उसका रूप ऐसा बना लिया जिससे यह जचता है कि इन सबके बताये गए शान्तिके उपायोंमें परस्पर विरोध है।

सत्कार्यवादके विचारका प्रसङ्ग—इस प्रकरणमें यह विषय चल रहा है कि ये सब जाल रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द और ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश और चलते-फिरते लोग कर्म इन्द्रिय और ज्ञान करने वाले थे, और इन सबसे कुछ सूक्ष्म किन्तु स्थूल ये ज्ञान इन्द्रिय यह सब जाल कैसे बना है कैसे उत्पन्न हुआ है। तो सत्कार्यवादी यहां यह कह रहे हैं कि लोकमें केवल दो ही तत्त्व हैं पुरुष और प्रकृति, आत्मा और प्रधान। जिसमें पुरुष अर्थात् आत्मा तो अपरिणामी है केवल चितस्वरूप-मात्र है, उसमें कोई तरंग नहीं ज्ञान ही नहीं। जानेगा तो हिलेगा, तरंग होगी कुछ एक नवीनता सी मालूम पड़ेगी, कुछ समझा है तो सत्कार्यवादमें आत्माके ज्ञान तक भी नही किन्तु आत्मा केवल एक चेतन है, ऐसा तो आत्माका स्वरूप है। तो प्रकृतिसे ये कैसे उत्पन्न हुए इस सम्बन्धमें सम्वाद चल रहा था। सम्वाद चलते-चलते यह कहना पड़ा कि चूंकि प्रकृति कारणमें ये सारी जाल रचनायें अब भी मौजूद हैं। जितने जो कुछ भी कार्य होंगे वे सब कारणभूत प्रकृतिमें अब भी मौजूद हैं इसलिए उसमें से प्रकट होते रहते हैं। यदि न मौजूद होते तो उसमेंसे किसी भी प्रकारकी उत्पत्ति न हो सकती थी। और ऐसा सिद्ध करनेमें ५ हेतु दिये थे। यदि पदार्थमें कार्य अब भी मौजूद नहीं हैं तो वह कभी किया ही नहीं जा सकता यदि पदार्थोंमें कार्य नही मौजूद है तो वह उस उपादानको ही क्यों ग्रहण करे। यदि पदार्थमें कार्य नही है तो फिर एक पदार्थसे सभी कार्य क्यों नहीं उत्पन्न हो जाते। वही कार्य क्यों होता यदि पदार्थमें कार्य नहीं है तो वह कहीं भी किया ही नहीं जा सकता शक्य हेतु शक्यक्रिय को ही कर सकता है और पदार्थमें कार्य नहीं है तो पदार्थको कारण शब्दसे कह भी नहीं सकते। यह बीज अंकुर का कारण है यह तब कहा जा सकता है जब बीज में अंकुर मौजूद हैं। तभी उसका कारण बताया जाता है अन्यथा किसीको भी कारण कह सकते। इन हेतुवोंको देकर यह निश्चय किया कि प्रत्येक कारणमें कार्य मौजूद है तो इसी प्रसंगमें यह पूछा गया था कि इन हेतुवोंसे तुम कुछ निश्चय कर रहे हो तो यह बतलावो कि हेतु बोलनेसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पहिले यहां निश्चय पड़ा हुआ है। वह तो पड़ा ही है। अगर निश्चय असत् है तो इन हेतुवोंको देकर भी निश्चय किया ही नहीं जा सकता क्योंकि जो असत् है वह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं किया जा सकता देखिये पदार्थके करनेकी बाततो चल रही थी किन्तु हेतुको देकर यह स्वयं अपने आप फंस गया। अब यह पड़ रही है कि अनुमान प्रयोगमें साधनोंको बताकर साध्यका निश्चय किया जाता है यह कैसे सिद्ध करें। साध्यका निश्चय करना है और निश्चय है पहिलेसे ही सत् तो साधन करे क्या ? साध्यका निश्चय अगर असत है तो साधन कोई उसे कर ही नही सकता।

साधन द्वारा साध्यनिश्चयाभिव्यक्तिके सम्बन्धमें तीन विकल्प—शंकाकार कहता है कि भाई साधनका प्रयोग करनेसे पहिले निश्चय सत् ही है, पर उसपर साधनके प्रयोग करनेकी व्यर्थता नहीं हो सकती क्योंकि हेतुका प्रयोग करना केवल उस निश्चयकी अभिव्यक्तिके लिए है। जैसे पदार्थमें कार्य पड़ा हुआ है पर कारण कुट जो जुड़ा जाता है वह कारणोंकी अभिव्यक्तिके लिए है न कि उत्पत्तिके लिए। इसी प्रकार अनुमान प्रयोगमें जो साधन डाला जाता है वह निश्चयकी अभिव्यक्तिके लिए है न कि उत्पत्ति करनेके लिए/सब चीजें सत् हैं निश्चय भी वहां सत् है तो समाधानके लिये पूछते हैं कि अभिव्यक्तिका क्या अर्थ है ? अनुमानमें हेतु प्रयोग करके साध्यके निश्चयकी अभिव्यक्ति करना इसमें अभिव्वक्तिका क्या भाव है। क्या इसका यह अर्थ हैं कि निश्चयमें स्वभावातिशय उत्पन्न कर देना, अथवा यह अर्थ है कि निश्चयके विषयका ज्ञान करना, निश्चयका ज्ञान करना अथवा निश्चयको ढांकने वाले जो आवरण हैं उनको हटाना ? साधन प्रयोगके द्वारा जो साध्यके निश्चयकी अभिव्यक्ति बताये उसके सम्बन्धमें ये तीन विकल्प उठाये गये।

सत्कार्यवादमें स्वभावातिशयोत्पत्तिरूप अभिव्यक्तिकी असिद्धि—यदि कहो कि स्वभावातिशय पैदा करनेका नाम अभिव्यक्ति है अर्थात् साधन का प्रयोग करके उस साध्यके निश्चयमें एक अतिशय बढ़ा दिया जाता है तो यह बतलायो कि वह अतिशय, स्वभावातिशय निश्चयके स्वरूपसे भिन्न है या अभिन्न ? यदि कहो कि अभिन्न है तो जैसे निश्चयका स्वरूप सत् है इसीप्रकार स्वभावातिशय भी सत् है, फिर उत्पत्ति क्यो करना ? यदि कहो कि भिन्न है तो यह स्वभावातिशय इस निश्चयका है यह सम्बन्ध कैसे जोड़ा जा सकता है ? देखिये प्रकृत प्रसंगको समझनेके लिये एक सरल दृष्टान्त लेकर एक अनुमान बनायें कि पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे, तो इस प्रसंगमें सत्कार्यवादियोंसे यह पूछा जा सकता है कि अग्निके ज्ञानका निश्चय इसमें पहिलेसे था या नहीं ? यदि वे यह कहदें कि निश्चय असत् था ना और साधनके द्वारा असत् पैदा किया गया तब यह टेक तो न रही कि जगतमें सब सत् हैं। असत भी पैदा हो गये, तो तुम्हारे ही हेतुसे तुम्हारे ही बचनसे विरोध हो जायगा यदि यह कहो कि निश्चय पहिलेसे ही सत था किन्तु उस साधनभूत धूमके द्वारा उस निश्चयकी, अभिव्यक्ति की, तो इसका उत्तर भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

थोड़ी देरमें सुन लीजिए। इस समय जरा शङ्काकारकी मदद करें। थोड़ा सोचो — जिसे अग्निका धूमका बहुत परिज्ञान है, खूब जानता है — जहाँ धुवां होता है वहाँ अग्नि होती है, कई बार जाना, अनुमानसे भी जाना, प्रत्यक्ष भी जाना तो अनुमानकी जानकारी तुम्हारेमें है ना, तब तो कोई धुवां देखता है तो जो जानकारी हमारे अंदर बनी हुई है, समझते हैं उसकी अभिव्यक्ति होगी। इस तरहके भावोंको लेकर यह शङ्का लगाई जा सकती है। अब उत्तरमें चलिये ! तो क्या किया उस समाधानके प्रयोगने ? क्या उस निश्चयके स्वभावमें अतिशय किया ? यदि वह अतिशय अभिन्न है तो भी नहीं बनता, भिन्न है तो सम्बन्ध नहीं बनता।

भिन्न अथवा अभिन्न अतिशयका सम्बन्ध होनेका कारण – सम्बन्ध दो तरहके होते हैं—एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ जो सम्बन्ध होता है वह दो प्रकार का है –आधार आधेय सम्बन्ध और जन्य जनक सम्बन्ध। जैसे डब्बामें घी रखा है, यह सम्बन्ध आधार आधेय है। और, दहीमें घी है यह सम्बन्ध है जन्य जनक सम्बन्ध, तो निश्चयमें और स्वभावातिशयमें क्या आधार आधेय सम्बन्ध है ? आधार आधेय सम्बन्ध तो यों नहीं बन सकता कि वे दोनों सत हैं, स्वतन्त्र हैं एक दूसरेके अनुपकारी हैं इसलिए सम्बन्धकी बात क्या ? और मानो कि उपकार किया तो वह उपकार वहां भिन्न है तो उसके लिए फिर अन्य उपकार मानो। यों अनवस्था दोष है। यदि कहो कि वह उपकार उनसे अभिन्न है वह अतिशयका स्वभावातिशयका उनसे अभेद है तो साधनका प्रयोग करना व्यर्थ रहा। एक बात और सोचो ! आधार आधेय सम्बन्धका अर्थ क्या है कि आधेय पदार्थका नीचे जाना हो रहा था और एक पदार्थने उसके नीचे जानेकी गतिको रोक दिया, इसीके मायने आधार है। जैसे डब्बामें घी डाला तो घी नीचेको जा रहा था, उसके नीचे जानेकी गतिको उस डब्बाने रोक दिया तो गमनको रोकने वाले पदार्थका नाम कहलाता है आधार। तो यहाँ बतलावो कि स्वभावातिशय नीचेको जा रहा था और फिर निश्चय उसे थामले उसकी अधोगतिको रोकदे, ऐसा क्या कुछ विदित होता है ? कोई बुद्धिमान क्या इसे स्वीकार करेगा ? अरे, स्वभावातिशय तो अमूर्तिक है। उसमें रूप, रस गंध, स्पर्श कहाँ है ? तो उसके अधोगमनकी बात बनती ही नहीं है। उस स्वभावातिशयमें अमूर्त होनेके कारण अधोगमन नहीं होता। अधोगमन करे और अतिशयवान हो ये दोनों परस्पर विरुद्ध बातें हैं। एक तो उचता और एक नीचे जाना, ये दोनों बातें कैसे हो सकती हैं ? उससे निश्चयमें और स्वभावातिशयके आधार आधेय सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। अगर कहो कि इसमें जन्य जनक सम्बन्ध है तो निश्चय तो सदा ही सत है तब निश्चयके द्वारा उत्पन्न किया गया स्वभावातिशय भी सदा सन्निहित रहा तो उसका कार्य स्वभावातिशय होना ही चाहिये। इससे इन हेतुवोंके द्वारा इन साधनोंके द्वारा साध्यका निश्चय किया गया यह भी सिद्ध नहीं हो सकता तो तुम सत्कार्यवादको कैसे सिद्ध कर सकते हो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निश्चयकी अभिव्यक्तिके लिये सत् अथवा असत् अतिशय किये जाने की असिद्धि— अच्छा और बात जाने दो, तुम्हारे कहनेका प्रसङ्ग यह है कि निश्चय में स्वभावातिशयकी अभिव्यक्ति है तो वह स्वभावाति सद्भूत है या असद्भूत ? वह अतिशय यदि सद्भूत है तो साधनका प्रयोग करना व्यर्थ है। निश्चय भी सत है अभिव्यक्ति भी सत है फिर साधन जुटानेकी क्या आवश्यकता है ? यदि कहो कि असत् है वह अतिशय तो देखो. असत अतिशय कर दिया गया साधनके द्वारा तब यह हेतु न रहा कि जो असत होता है वह किसीके द्वारा किया नहीं जा सकता। तुम्हारे ही हेतुका तुम्हारे ही वचनोंसे विरोध आता है। इसलिए अभिव्यक्तिका यह अर्थ नहीं बनता कि निश्चयके स्वभावमें अतिशय हो जाना अर्थात साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहा सो अनुमानमें साधनसे साध्यके निश्चयकी उत्पत्ति करते हो तो वहां साध्यज्ञान पहिले ही मौजूद है, साधनोंने उस ज्ञानकी अभिव्यक्ति क्या की है। यों अभिव्यक्तिके ३ विकल्पोंमें से प्रथम विकल्प माननेकी बात न बनी।

निश्चयविषयके ज्ञानरूप निश्चयाभिव्यक्तिकी असिद्धि—यदि कहो कि अभिव्यक्तिका अर्थ यह है कि निश्चयविषयक ज्ञान होना, ज्ञानविषयक ज्ञान होना। ज्ञान तो पहिलेसे ही मौजूद है पर साधनोंसे व्यवहारसे ज्ञानका ज्ञान किया जा रहा है। ज्ञानका ज्ञान करना ही अभिव्यक्ति कहलाता है। शङ्काकारके भावोंसे यों बात समझायी गयी कि जहां अनुमानको साध्य साधनके अविनाभावत्वका दृढ़ निश्चय होनेसे साधनज्ञान तो उसके मौजूद ही था अब साधन देखकर उस साध्यके ज्ञानकी अभिव्यक्ति की जा रही है। तो इस प्रकार निश्चयके ज्ञानका नाम निश्चयकी अभिव्यक्ति है, यह बात ठीक नहीं बैठती, क्योंकि जो सत्कार्यवादी हैं उनके मतमें निश्चय भी सर्वथा सत् है क्योंकि ज्ञान एक माना गया है। जैसे प्रकृति एक है, पुरुष एक है और प्रकृतिसे बुद्धिकी सृष्टि होती है, मगर एक बुद्धिकी सृष्टि होती है, नाना बुद्धियाँ नहीं रची जाती हैं और उस बुद्धिसे अहङ्कार होता है और अहङ्कारसे ये विषय उत्पन्न होते हैं। तो जब बुद्धि एक है तो दूसरा ज्ञान कहांसे आयगा कि ज्ञानका ज्ञान करना, ज्ञान तो मौजूद था अब ज्ञानका ज्ञान करना इसका नाम है निश्चयकी अभिव्यक्ति, यों कहा जाने लगा सो यह बात नहीं बनती।

निश्चयोपलम्भावरणके अपगम्यरूप अभिव्यक्तिकी असिद्धि—अगर तृतीय विकल्पसे उत्तर करेंगे कि निश्चयकी अभिव्यक्तिका अर्थ यह है कि निश्चयकी उपाधिका आवरण करने वाला जो कुछ भी है उसको विनाश किया गया, तो उत्तर दिया जा रहा है कि निश्चयमें आवरण ही सम्भव नहीं है क्योंकि निश्चय नित्य है। यदि कहो कि है निश्चय पहिलेसे ही सत्—मगर उसका तिरोभाव हो गया यही आवरण है तो भला यह बतलावो कि व्यक्तपर आवरणकी बात आप कह रहे हैं। प्रकृति तो है अव्यक्त। बुद्धि अहङ्कार विषय ये सब हैं व्यक्त। तो व्यक्तपर अर्थात्

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यक्तका तिरोभाव किया तो व्यक्त अव्यक्त बन गया यह अर्थ हुआ। व्यक्तका तिरोभाव मायने खुले हुए ही स्पष्ट झलक रहेकी अस्पष्टता हो गई। सो यहां भी क्या अर्थ हुआ कि वह अस्पष्ट हो गया है, इस प्रकारसे आवरण हो गया है याने ये सब व्यक्त पदार्थ हैं इनमें तिरोभाव हो तो इसके मायने अव्यक्त हो गया, मगर व्यक्तको तुमने अव्यक्तपना कभी नहीं माना। अव्यक्त अव्यक्त ही है, व्यक्त व्यक्त ही है, इस कारण ज्ञानका तिरोभाव सम्भव नहीं। दूसरी बात यह है कि जब प्रकृति बुद्धि दूसरी कोई बात ही न मानकर एक अद्वैतवादसे चल रहे हों तो दूसरे आवरण कहांसे आयेंगे? इससे उस निश्चयपर आवरण सम्भव नहीं है जिससे कि आवरण मिटाया जाय और उस आवरणके मिटनेसे निश्चयकी अभिव्यक्ति कहो जाय। खैर, तुम्हारे जो ५ हेतु हैं जिनसे यह सिद्ध करना चाहा था कि प्रत्येक कारणात्मक पदार्थमें कार्य पहिलेसे ही मौजूद है, उसकी अभिव्यक्ति की जाती है यह सिद्ध नहीं होता।

सत्कार्यवादमें बन्ध और मोक्षके अभावका प्रसङ्ग—अब जरा और कुछ अन्य बात देखो! इस मान्यतामें कि कारण आदिक पदार्थोंमें कार्य सदा सत रहता है, बंध और मोक्ष बन ही नहीं सकता है क्योंकि बन्ध होता है मिथ्याज्ञानसे और मिथ्याज्ञान सदा है सो बन्ध भी सदा है तब उनको मोक्ष कैसे होगा? यदि यह कहो कि प्रकृति और पुरुषमें उनको अपने-अपने स्वरूपकी उपलब्धिका तत्त्वज्ञान बनता है उससे मोक्ष होता है। बात तो सही बतायी जा रही है कि यथार्थ ज्ञान से मोक्ष होता है। आत्माका क्या स्वरूप है? केवलका और प्रकृतिका क्या स्वरूप है केवलका? उनके उस कैवल्य स्वरूपका ज्ञान होनेसे मोक्ष होता है। जिसे कुछ उदाहरणके रूपमें यों समझिये कि जैसे प्रकृति और आत्मा। आत्माका निश्चयस्वरूप क्या है और कर्म का प्रकृतिका इनका निजी स्वरूप क्या है अथवा स्वभाव और विभावमें स्वभावका लक्षण क्या है. इन दोनोंका बोध होनेपर उन उनके कैवल्यकी उन उनके अपने आपके लक्षणकी उपलब्धि करे, वहाँ ही उपयोग रखे इससे मोक्ष होता है। समाधान में कहते हैं कि भाई कही तो है भेद विज्ञानकी बात लेकिन सत्य यों नहीं हो पाता कि वह तत्त्वज्ञान भी सदा अवस्थित है। सत्कार्यवादमें सब चीजें सत रहती हैं तो फिर सब चीजें सदा हैं तब फिर बध कैसे हो सकता तब न? फिर बन्ध सिद्ध हो सका न मोक्ष।

पदार्थोंकी योग्यतासे पदार्थोंकी व्यवस्था—भैया! बात तो यही सीधी माननी चाहिये कि ये सब पदार्थ हैं और वे सदा प्रतिसमय एक एक परिणमनको लिए हुए हैं, वे एक कार्यसे अविच्छिन्न हैं। वह पूर्व कार्यमें सम्पन्न पदार्थ वर्तमान अवस्थासे संयुक्त द्रव्य अपनी योग्यता शक्तिके अनुकूल और अन्य अनुकूल कारण पाकर अपनेमें एक नवीन कार्य उत्पन्न करते हैं। यों विश्वकी व्यवस्था बनी हुई है। पर सारे कार्य उन पदार्थोंमें हैं और वे कार्य समय-समय पर उत्पन्न होते रहते हैं, इस सत्कार्यवादके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माने जानेपर समस्त व्यवहारका उच्छेद हो जाएगा।

शंकोक्त हेतुओंसे भी असत्यकार्यवादकी सिद्धि - अब एक और सीधीसी बात कही जा रही है कि शंकाकारका यह कहना कि जो असत् है वह किसीके द्वारा भी नहीं किया जा सकता। यह बात असंगत है। पहिले तो यह बता दो कि तुम्हारे ये हेतु असत निर्णयको उत्पन्न कर रहे हैं, दूसरी बात–जितने हेतु तुम इसके सिद्ध करने में देते हो कि कार्य सत है तभी यह किया जा रहा है तो उन्ही हेतुओंसे यह सिद्ध हो जाता है कि यह सब असत् हैं तभी यह किया जा रहा है। सत् हो उसका करना क्या, सत् हो वह उपादानके पास जाएगा क्या? तो इन हेतुओंसे असत्का उत्पाद सिद्ध होता है क्योंकि कारणमें ऐसी शक्तियां हैं। समस्त कारणोंकी शक्तियोंका ऐसा प्रतिनियम है कि उनमें यह बात प्रसिद्ध है कि जो जिस प्रकारकी शक्तिवाला कारण है उससे उस प्रकारका ही असत् कार्य किया जाता हैं। अब आकाशके फूलका तो कोई कारण ही नहीं इसलिए नहीं किया जाता। यह कहकर उपालम्ब देते कि असत् यदि उत्पन्न होने लगे तो आकाशके फूल भी उत्पन्न होने लगें, वह क्रोधका वेग ही है। कारणोंमें ऐसी शक्ति है, उनका ऐसा नियम है कि जिन कारणोंसे जिस प्रकारके कार्य उत्पन्न हो सकते हैं वैसे ही कार्य उत्पन्न होते हैं। सब चीजें सबका कारण न बन जायेंगी।

उत्पत्तिसे पहिले कार्यका कारणमें कथंचित् असत्त्व - दूसरी बात यह है कि हम यह व्याप्ति नहीं बना रहे कि जो असत् है वह किया ही जाता है। इस व्याप्तिमें तो दोष आएगा। आकाशका फूल असत है तो वह किया जाता है यह सिद्ध हो जाएगा पर हम यह नहीं कह रहे कि जो जो असत है वह किया ही जाता है, किन्तु क्या कह रहे? जो किया जाता है वह उत्पत्तिसे पहले कथंचित् असत ही है। यदि वह सर्वथा असत् बन जाय तो बात नहीं बनती। लेकिन कहा तो यह जा रहा है कि जो जो भी कार्य उत्पन्न होते हैं वे कार्य उत्पन्न होनेसे पहिले कारणभूत पदार्थोंमें उपादानमें कथंचित असत है। कथंचितका अर्थ है–पर्यायरूपसे असत है, शक्तिरूपसे सत है पर शक्तिरूपसे सत है उसका अर्थ क्या है कि उस कारणकी ऐसी शक्ति है, ऐसी योग्यता है कि जिसके प्रतापसे असत कार्य उत्पन्न हो जाते हैं। जो नही है वह उत्पन्न हो जाता है। और यह उपालम्भ देना कि अगर असत कार्य उत्पन्न किया जाता है तो असत सत तो सब है। आकाशका फूल, खरगोशके सींग, ये सब उत्पन्न किये जाना चाहिए और फिर असत कार्यका अगर यह वर्तमान पदार्थ कारण है तो असतकी दृष्टिसे तो सारे कार्य असत हैं। सभी कार्य एक कारणमें क्यों नही उत्पन्न हो जाते? यह उपालम्भ तो तुम्हारे सत्कार्यमें लगाया जा सकता है कि यदि कारणमें कार्य सत है तो वे सभी सत हैं पर एक कारणके द्वारा सभी कार्य क्यों नहीं व्यक्त हो जाते? तो यहां भी कारणकी शक्तिको प्रतिनियम मानना पड़ेगा कि कारणभूत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थके अन्दर भी शक्तिका प्रतिनियम है कि सब सत होनेपर भी एक कारणमें सब नहीं उत्पन्न होते। पर यह प्रतिनियम असत्कार्यवादमें ही सम्भव है। सर्वथा यदि कार्य सत है तो उनमें कार्यपना सभव नहीं है इस कारण सत्कार्यवाद युक्त नहीं है। कथंचित कार्य मानो तो उसमें उपादानका ग्रहण करना आदि लागू हो सकता है। इस तरह उत्पत्तिके पहिले कारणमें कार्यका सद्भाव नहीं है। तब यह कहना कि प्रकृतिसे बुद्धि हुई, बुद्धि से अहंकार हुआ. न तो अभिव्यक्तिमें बात बनती है और न उत्पत्ति में बात बनती है। तब फिर प्रकृति विश्वका कर्ता नहीं रहा। और सर्वका ज्ञाता भी नही है।

आवरणापायसे सर्वज्ञताकी उद्भूतिका प्रकरण—जब कोई आत्मा कर्म बद्ध अपनी युक्तिसे, तत्त्वज्ञानसे अपनेमें अतिशय बनाता है तो ये आवरण दूर होते हैं, और आवरण नष्ट होनेसे उसका ज्ञान सर्वज्ञान बन जाता है। तो यों इसमें आत्मा निरावरण हो तब वह सर्वज्ञाता बनता है। यों प्रत्यक्ष ज्ञान निरावरण होनेपर ही सम्भव है। यह ग्रन्थ प्रमाणके स्वरूपका निर्णय करने वाला है। तो प्रमाणके परोक्ष और प्रत्यक्ष इन दो भेदोंमेंसे सबसे पहिले प्रत्यक्ष ज्ञानकी मीमांसा चल रही थी। वे प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकारके हैं। सांव्यवहारिक और पारमार्थिक। यद्यपि सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष वस्तुतः परोक्ष है, पर वादविवादमें उपयोगी होनेसे एक देश वैशद्यके कारण इस सांव्यवहारिक प्रत्यक्षको प्रत्यक्षकी कोटिमें रखा है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका वर्णन करनेके बाद यह पारमार्थिक प्रत्यक्षका वर्णन चल रहा है।

भेदानां परिमाणात् इस हेतु द्वारा विश्वको प्रधानकारणात्मक सिद्ध करनेका प्रयास—अब शङ्काकार अन्य ५ हेतुवोंके द्वारा यह सिद्ध कर रहा है कि समस्त सृष्टिका, समस्त कार्योंका कारण प्रधान ही है। इसमें प्रथम हेतु है कि इन सब कार्योंमें भेद परिमाण देखा जा रहा है। परिमाणका अर्थ है नियत संख्या। जैसे प्रकृतिसे महान् उत्पन्न हुआ याने बुद्धि उत्पन्न हुई, वह बुद्धि एक है, उससे अहङ्कार उत्पन्न हुआ वह भी एक है। उससे ५ तन्मात्रायें हुई वे ५ हैं, इन्द्रियाँ ११ हैं, भूत ५ है। इस प्रकार जहां कार्यका भेदका परिमाण देखा जाता है वहां उसका एक कोई कारण होता है। लोकमें भी जिसका कर्ता होता है उसका परिमाण देखा गया है। जैसे परिमित मिट्टीके पिण्डसे परिमित घट बनता है तो उस घटमें परिमाण देखा गया और कितने घट बनाये गये आज ऐसी संख्या भी है। तो जो परिमाण वाली चीज हैं उसका कोई कर्ता अवश्य होता है। करने वाले यहां जिन जिन कार्योंको करते हैं उन सबका परिमाण देखा गया। जुलाहाने कपड़ा बुना तो कपड़ेका परिमाण है। जो पुरुष जो चीज बनाता है उसके आकारसे भी परिमाण है, संख्यासे भी परिमाण है। १० बने, २० बने; तो इस प्रकार भेदका परिमाण देखा जानेके कारण यह सिद्ध है कि इन सबका कारण प्रधान है और प्रधान ही परिमित व्यक्त तत्त्वोंका उत्पादक है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भेदानां परिमाणात् इस हेतुसे विश्वकी प्रधानकारणात्मकताकी असिद्धि—इसके समाधानमें कहते हैं कि भेदका याने कार्यका परिमाण है, वह हेतु देकर एककारणपूर्वकत्व सिद्ध नहीं होता अर्थात् जिन जिन चीजोंमें भेदका परिमाण देखा जाता है उन उन चीजोंका कोई एक कर्ता होता है। इस व्याप्तिमें कार्यका, भेदका परिमाण यह तो बनाया हेतु और एककारणपूर्वक है यह बनाया साध्य, लेकिन हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव सिद्ध नहीं है, क्योंकि भेदका परिमाण भी होता और वे अनेक कारणपूर्वक भी होते। कार्यके परिमाणके साथ अनेक कारण पूर्वकताका विरोध नहीं है। हां भेदके याने कार्यके परिमाणका कारणमात्र पूर्वकताके साथ यदि अविनाभाव बनाया जाय तो वह सही है। भेद परिमाण देखा जा रहा है, इससे यही तो सिद्ध किया जा सकता कि ये किसी कारणमात्र पूर्वक हुए इनका कुछ न कुछ कारण है। और, इस तरह सिद्ध करना मान लोगे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं। प्रत्येक पदार्थ जो भेद परिमाण वाले हैं, जो दृश्य हैं वे तो हैं ही, सब कारणपूर्वक। यदि कोई मनुष्य आदिकके द्वारा किया जाने योग्य पदार्थ नहीं है तो वह भी पदार्थ किसी न किसी कारणपूर्वक है, स्वयं है, वह तो उपादान है और कुछ नहीं है, यदि वे शुद्ध पदार्थ हैं तो काल कारण है और जो अशुद्ध पदार्थ हैं, पर्वत पृथ्वी आदिक बड़े बड़े पदार्थ, जिनका करने वाला मनुष्य सामान्य सम्भव नहीं है, वे पदार्थ भी कारणपूर्वक तो हैं ही, हां किसी एक कारणपूर्वक नहीं है, उनमें अनेक वर्गणाओंका मिलन हुआ है और परस्पर इस मिलनसे एक दूसरेके कारण बन रहे हैं और उनमें जो कुछ परिणमन हो रहा है वह उनका कार्य चल रहा है। तो भेद परिमाणसे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि वह प्रधानकारणपूर्वक है, अर्थात् लोककी रचने वाली प्रकृति है।

भेदानां समन्वयात् इस हेतुसे विश्वको प्रधानकारणात्मक सिद्ध करने का प्रयास—अब शंकाकार दूसरा हेतु देकर प्रधानको ही कारण सिद्ध कर रहे हैं। हेतु है कि इन सब भेदोंका याने कार्योंका समन्वय देखा जा रहा है। जो जिस जातिसे युक्त होता हुआ पाया जाता है वह उस उस तत्त्वसे तन्मय कारणसे उत्पन्न हुआ कहलाता है। जैसे घट कटोरा मटका आदिकमें भेद हैं, ये मिट्टी जातिसे समन्वित है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये सबके सब घट आदिक पदार्थ मृदात्मक कारणसे उत्पन्न हुए हैं तो जैसे यहां भी यह सिद्ध हो जाता है कि मृदात्मक कारणसे ये घट आदिक उत्पन्न हुए तो वे मृदात्मक कारणसे हुए हैं क्योंकि मृद् जातिसे वे समन्वित हैं, इसी प्रकार ये समस्त व्यक्त, बुद्धि अहंकार आदिक सत्व, रज, तम इन जातियोंसे समन्वित हैं। इससे सिद्ध है कि सत्व रज तमो गुण वाले प्रधानसे उनका अन्वय है। वे प्रधानकी जातिमें हैं, प्रकृतिमें वे सत्त्व, रज, तमो गुण हैं और जितनी भी सृष्टियां हैं जितने भी कार्य हैं इन सबमें भी सत्त्व रज तमो गुण हैं। जैसे कि सत्त्वका कार्य है प्रसन्नता आना, निर्भार अनुभव होना, रजो गुणका कार्य है संताप होना, शोक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होना, उद्वेग आदिक होना। और तमो गुणका कार्य है, दीनता, भयंकरता, अहंकार घमंड आदिक आना। और, इससे समन्वित ये सब नजर आते हैं बुद्धि अहंकार आदिकमें भी ये गुण नजर आते हैं। तो जब इन महान अहंकार आदिकमें ये प्रसन्नता दीनता संताप आदिक कार्य पाये जाते हैं तो इससे सिद्ध है कि महान आदिक समस्त व्यक्त पदार्थ प्रकृतिसे अन्वित हैं।

भेदानां समन्वयात् इस हेतुसे विश्वकी प्रधानकारणात्मकताकी सिद्धिका अभाव—अब भेदसमन्वितत्वसे लोकको प्रधानकारणपूर्वकताके प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि ये समस्त पदार्थ, ये सब सृष्टियाँ, रूपादिक तन्मात्र, पृथ्व्यादिक भूत ये सबके सब सुखदुख मोहसे युक्त हैं, यह बात प्रमाणसे सिद्ध नहीं है। देखो शब्द व्यक्त ही तो है, तन्मात्रका ही तो है, पर अचेतन होनेसे उसमें सुख आदिक गुण नहीं पाये जा सकते। तो यह कहना कि जितने भी व्यक्त हैं उन सबमें सत्व, रज, तम आदिक गुण पाये जाते हैं सो सत्वगुण रजोगुण तमोगुणसे युक्त प्रधानके परिणाम हैं, विकारी हैं, यह बात युक्त नहीं है। जो जो चेतनरहित होते हैं वे वे सब सुख दुख आदिकसे युक्त नहीं होते। जैसे आकाशका फूल चैतन्यरहित है तो सुख दुखके रहित नहीं है। जिनमें चेतना नहीं है ऐसे पदार्थ अनुभवमें भी आते कि वे सुख दुख आदिकसे संयुक्त नहीं हैं। शब्द चैतन्यरहित ही तो हैं वे सुख दुःख आदिकसे युक्त नहीं हो सकते। इस पर बीचमें थोड़ा शंकाकार कहता है कि चैतन्यके साथ सुख आदिककी समन्वय व्याप्ति यदि प्रसिद्ध हो तो ही वह निवर्तमान कर सकेगा अर्थात् सुख आदिकका समन्वय उन शब्द आदिकमें तब न कहलायेगा जबकि चैतन्यके साथ ही सुखादिकके रहनेकी व्याप्ति प्रमाणसिद्ध हो, पर ऐसी व्याप्ति किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है। देखो ! पुरुष चेतन है तो भी सुख आदिकका उसमें समन्वय नहीं पाया जाता। चैतन्यके साथ सुख दुःख आदिक ही व्याप्ति है यह बात गलत है। यह चेतन स्वयं पुरुष है, उसमें सुख दुख नहीं है। आत्माका केवल चैतन्य ही स्वरूप तो है, इसपर समाधानमें इस समय इतना ही कहा जा रहा है कि यह तो सब स्वसम्वेदनसिद्ध है। हर एक कोई अपनी अक्लसे भी यह समझ सकता है कि सुख वहां हो सकता है जहां पर चेतना हो, और जहां चेतना नहीं है वहाँ सुख दुख आदिक नहीं हो सकते। आत्मा ही सुख दुःख आदिक स्वभाव वाला हो सकता है। आत्मामें ही सुख दुखके विकार हो सकते हैं अन्यमें नहीं।

प्रसादसंतापादिककी प्रधानमें अन्वितताकी असिद्धि—जो कहोगे कि प्रसन्नता, संताप आदिक कार्य जो देखे जाते हैं उससे यह सिद्ध है कि वे सब व्यक्त तत्त्व प्रधानसे अन्वित हैं, प्रधानके ही कार्य हैं, प्रधान रूप हैं, यह बात युक्त नहीं है क्योंकि हेतु अनेकांतिक है। देखो ! जब कोई सन्यासी योगी पुरुष तत्वको प्रकृतिसे निराला भाते हैं, यह मैं पुरुष तत्व यह मैं चैतन्यमात्र आत्मतत्व प्रकृतिसे जुदा हूं, इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकार जब भावना करते हैं तो उस पुरुषतत्त्वका आलम्बन लेकर अभ्यस्त योगियोंके प्रसन्नता उत्पन्न होती है और प्रीति उत्पन्न होती है, अर्थात् यह कहना कि प्रसन्नता होना, उद्वेग होना, मोह होना ये सब प्रधानके कार्य हैं सो बात नहीं। ये स्पष्टतया आत्मा में उत्पन्न हुए समझमें आते हैं। उसीके उदाहरणमें कह रहे हैं कि जिन योगियोंने उस भेदकी भावना की उनके पुरुष तत्वका आलम्बन ले करके शुद्ध प्रीति होती है और चाहते तो हैं कोई ऋषिजन ऐसा कि प्रकृतिसे निराला आत्मतत्त्व शीघ्र समझमें आए, पर बहुत ही जल्दी उस आत्मतत्वको नही देख पाते हैं तो उनके उद्वेग उत्पन्न होता है, और जो जड़बुद्धि लोग हैं उनके अपने आप मोह बना रहता है, अज्ञान बना रहता है तो यह मोह होना, उद्वेग होना, प्रीति होना, प्रसन्नता होना ये आत्मामें पाए जाते हैं यह कहना कि प्रीत्यादिक प्रधानमें पाये जाते हैं, यह कोई विवेकी नही मान सकता।

संकल्पसे भी प्रीत्यादिककी प्रधानमें अन्वितताकी असिद्धि - यदि यह कहो कि संकल्पसे मनसे प्रीति आदिककी उत्पत्ति हुई है, आत्मासे प्रीति आदिक नहीं उत्पन्न हुए अर्थात जो आत्माकी भावनामें लग रहा और मनमें उसे प्रसन्नता उत्पन्न हुई है सो मनसे ही वह प्रसाद हुआ, कही आत्माको नही हुआ। ऐसा यदि कहते हो तो यह बात हम शब्द आदिकमें भी कह सकते हैं। संकल्पसे ही शब्द आदिक प्रीति आदिकके कारण हुए हैं जैसे कि दोष दूर करनेके लिए शंकाकारने कहा कि संकल्पसे पुरुषका आलम्बन, आलम्बनका ध्यान प्रीति उत्पन्न होनेका कारण बनता है तो संकल्प होसे तो शब्दआदिकका ध्यान प्रीति आदिककी उत्पत्तिका कारण बनता है और यदि आलम्बनकी बात छोड़कर केवल यह मानोगे कि संकल्पमात्रके होने पर प्रीति आदिकमें आत्मरूपता प्रसिद्ध होती है तो ठीक है, वह संकल्प है ज्ञानरूप और ज्ञान होता है आत्मासे अभिन्न। तब यही तो सिद्ध हुआ कि आत्मामें प्रीति आदिक उत्पन्न होते हैं ये प्रीति आदिक कोई सत्त्व आदिक गुण के कार्य नहीं हैं, प्रधानके कार्य नहीं हैं, इसप्रकार सीधी बात यह मानना चाहिये कि आत्माका विस्तार तो चैतन्य परिणामके साथ है और अचेतन अनन्त पदार्थोंका विस्तार उनके अचेतन परिणामोंके साथ है।

प्रधानमें कार्यधर्ममयताके प्रसंगसे व्यक्तकी अव्यक्तमयताकी असिद्धि— अथवा मान भी लिया जाय कि प्रीति आदिकका समन्वय व्यक्तमें पाया जाता है लेकिन इतनेपर भी तो प्रधानतत्त्वकी सिद्धी नहीं होती क्योंकि समन्वयदर्शन इस साधनका अन्वय नहीं पाया जाता याने भेदका समन्वय देखा जाने से प्रधानकी अन्वितता नही देखी जाती क्योंकि पदार्थमें जिस प्रकारका सत्व रज तमो गुणसे तन्मय एक नित्य व्यापी इस व्यक्तका कारण सिद्ध करना चाहते हो, उस प्रकारसे किसी भी दृष्टांतमें हेतुका अविनाभाव नही बनता। केवल एक कल्पना भरकी बात है। जिस प्रकारकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कल्पनाएँ करना हो करते जायें, और यह भी नही कि जिस रूपमें कार्य पाया जाता है कारण भी अवश्य उस रूप होना चाहिये। यद्यपि बात ऐसी है कि कार्य जिस रूप हो उस रूप कारण होता है उपादान लेकिन प्रकृतिमें तो यह बात इनकी सिद्ध नही हो पाती क्योंकि महान् (बुद्धि) अहंकार तन्मात्रा आदिक हेतुमान हैं, अनित्य हैं, अव्यापी हैं, तो इसके मायने यह हो जायगा कि प्रधान भी हेतुमान हो जायगा, अनित्य हो जायगा, अव्यापी हो जायगा। तो शंकाकारके खुदके सिद्धान्तसे यह विरुद्ध बात है।

धर्मसमन्वयसे विश्वको प्रकृत्यात्मक माननेसे अनिष्ट प्रसङ्ग - व्यक्त को अव्यक्तमय सिद्ध करनेके लिए दृष्टांत देना भी असगत है जैसे कि घट सकोरा आदिक मिट्टीकी जातिसे युक्त है तो वे सब मिट्टीमय हैं। यह बात यों अयुक्त है कि यह अनुमान साध्य साधन दोनोंसे विकल है। मिट्टीपना, सुवर्णपना आदिक जाति नित्य एक रूप प्रमाणसे सिद्ध नही है। कोई मिट्टी निरंश हो, एकरूप हो जैसा कि जातिका लक्षण बनाया है शंकाकारके सिद्धांतने ऐसी कोई जाति प्रमाणसे सिद्धि ही नही होती. फिर तद्रूप कारणसे उत्पन्न हुआ है या तद्रूप कारणसे युक्त है यह कार्य, यह बात कहांसे सिद्ध हो, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिमें, अलग अलग प्रतिभास भेद है उससे भेद सिद्ध है। देखो मिट्टी मिट्टी रूप रहती है, स्वर्णत्व स्वर्ण रूपमें रहता है। जाति एक कहाँ है? तो एक जातिपना ही सिद्ध नही होता। जातिका समन्वयभाव है ऐसा हेतु कहना तो विरुद्ध है इसमें तो अनेकांतिक दोष आता है क्योंकि चेतनता, भोक्तापन आदिक धर्मोंके द्वारा पुरुषमें भी समन्वितता है और नित्यत्व आदिक धर्मोंका पुरुष व प्रकृति दोनोंमें समन्वय है सो धर्मोंका समन्वय होनेसे पदार्थ प्रधानपूर्वक माना जाय तो आत्मा भी प्रधानपूर्वक बन बैठेगा अथवा प्रकृतिमें भी नित्यत्व धर्म है और आत्मामें भी नित्यत्व धर्म है। तो उन धर्मोंसे युक्त होनेपर भी वे दोनों एक कारण पूर्वक शंकाकारके द्वारा नही माने गये क्योंकि प्रधान स्वतन्त्र तत्त्व है और पुरुष स्वतंत्र तत्त्व है इसलिए भेदानां समन्वयदर्शनात् इस हेतुसे विश्वको एक कारणपूर्वक नही कहा जा सकता।

शक्तितः प्रवृत्ते इस हेतुसे विश्वको प्रकृतिकारणपूर्वक सिद्ध करनेका प्रयास - शंकाकार अब यहां प्रधानके अस्तित्वमें एक और कारण उपस्थित करके कहता है कि प्रधानका अस्तित्व इस कारण भी है कि कार्योंकी शक्तिसे प्रवृत्ति होती है जैसे कि लोकमें घट कपड़ा आदिक जितने भी कार्य बन रहे हैं वे स्पष्ट विदित होते हैं कि किसी शक्ति प्रेरणासे बन रहे हैं। जैसे कि घट आदिक कुम्हारकी शक्तिसे बन रहे हैं अथवा कपड़ा जुलाहाकी शक्तिसे बन रहे हैं या जिन परमाणुओंसे बना है उन स्कधोंमें जो हलन चलन है, प्रेरणा हो रही है उस शक्तिसे बन रहे हैं। तो जितना भी यह सारा लोक है सृष्टि है वह सब किसी शक्तिसे उत्पन्न हो रहा है और शक्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निराधार नहीं होती। शक्तिका जो आधार है वही तो प्रधान है। प्रधानका ही नाम प्रकृति है। तो प्रकृतिकी शक्तिसे यह सारी सृष्टि चल रही है। तो शक्तिसे परिणति होनेकेकारण भी एक कारणकी सिद्धि है और वह कारण है प्रकृति।

शक्तित: प्रवृत्ते इस हेतुसे विश्वको प्रकृतिकारणपूर्वक सिद्ध कर सकनेकी अशक्यता समाधानमें कहते हैं इस अनुमानमें इस सारे संसारका कारण कोई एक तत्त्व है और वह है प्रकृति, क्योंकि सभी कार्योंकी शक्तिसे परिणति हो रही है। तो शक्तिसे परिणति हो रही इस कारणसे कोई प्रकृति है। इस अनुमानमें तो अनेकांतिक दोष आता है। और यह सिद्ध नहीं हो सकता कि ये सब कारणपूर्वक होते हैं। उसीको विस्तारसे सुनो–यह जो हेतु दिया है कि शक्तिसे प्रवृत्ति होती है अत: वह कारणपूर्वक है तो इस हेतुसे क्या किसी बुद्धिमान कारणसे ये सब उत्पन्न हुए हैं यह सिद्ध कर रहे हो या कारणमात्रसे ये सब व्यक्त कार्य होते हैं यह सिद्ध करना चाहते हो ? यदि यह विकल्प लोगे कि किसी बुद्धिमान कारणसे यह सारी सृष्टि हुई है तो इसमें अनेकांतिक दोष है क्योंकि बुद्धिमान कर्ताके बिना भी अपने कारणोंकी सामर्थ्यके नियमसे प्रतिनियत कार्योंकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है। शंकाकार के सिद्धान्तका यह आशय है कि जितनी सृष्टियां हैं वे सब प्रकृतिसे हुई हैं क्योंकि शक्तिसे प्रवृत्ति होनेपर ही कार्य होते हैं। जैसे घड़ा बना तो किसी शक्तिकी प्रेरणा पाकर बना इसी प्रकार जितनी भी ये चीजें देखी जाती हैं पृथ्वी पर्वत आदिक इन सबमें कुछ शक्तिकी प्रेरणा जरूर रहती है और वह शक्ति है प्रधानकी। तो इस हेतु से तुम क्या कोई बुद्धिमान कारणसे यह सृष्टि हुई है यह कह रहे हो तो यह बात यों युक्त नही कि अनेक पदार्थ ऐसे देखे जाते हैं कि बुद्धिमान कर्ताके बिना भी अपने ही पदार्थके कारण की सामर्थ्यसे होते रहते हैं। और प्रधानको बुद्धिमान मान नही सकते क्योंकि वह अचेतन है। बुद्धि तो चेतनाकी पर्याय है प्रकृति है अचेतन। यदि कहो कि हम कारणमात्र सिद्ध करते हैं कि समस्त पदार्थोंका कोई न कोई कारण जरूर होता है। कहते हैं कि यह बात तो ठीक है, इसको कोई इंकार नहीं कर सकता। हम लोग भी कारणके बिना कार्यका उत्पाद नही मानते और उस ही कारणमात्रका यदि प्रधान नाम धर दो तो हमें कोई आपत्ति नही। नामसे क्या है, भाव समझना चाहिए। जितने भी पदार्थ हैं इन सब पदार्थोंमें जो कुछ भी जब कार्य होता है तो कुछ न कुछ कारण इसमें होते हैं। एक उपादान कारण होता है और अनेक निमित्त कारण होते हैं। उपादान और निमित्त कारणके सम्बन्धसे ये सब कार्य देखे जाते हैं। अब यह कहना कि नही, इन सब कारणोंका कार्य एक ही है और वह है प्रकृति तो यह बात नही बनती है। कारणमात्रकी बात तो युक्त है।

शक्तिमें भिन्न अथवा अभिन्नके विकल्पसे शक्तित: प्रवृत्तेः इस हेतुकी असिद्ध साध्यता– और भी देखिये ! जो यह कहा है कि शक्तिसे प्रवृत्ति होनेसे इन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थोंका कोई एक कारण होता है, तो यहाँ जो शक्तिका नाम लिया है उससे कथंचित् अभिन्न शक्तिवाले कारणको सिद्ध करना चाहते हो तो कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ है, उनकी अपनी अपनी शक्ति है और उसी शक्तिसे याने उपादान कारणसे कार्यकी उत्पत्ति होती ही है। यदि विभिन्न शक्तिसे युक्त कोई एक नित्य कारणको सिद्ध करते हो तो इसमें हेतु सदोष है क्योंकि ऐसी शक्ति वालेसे अन्वय सिद्ध नहीं है कि एक है दुनियाभरमें और नित्य है ऐसा कोई कारण है सब पदार्थोंके कार्य बननेका, यह सिद्ध नहीं होता। और दूसरी बात यह है कि अभिन्न शक्तिकी प्रेरणासे किसी भी कारणकी शक्तिसे कहीं भी कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती। शक्ति सबकी अपनी अपनी स्वात्मभूत है। जैसे मिट्टीसे घड़ा बना तो घड़ा बननेमें मिट्टीकी शक्तिने काम किया। तो वह शक्ति मिट्टीसे भिन्न नहीं है, वह मिट्टीरूप ही है। शक्ति कोई एक है, नित्य है, व्यापी है, ऐसी बात नहीं। जितने पदार्थ हैं उतनी ही शक्तियाँ हैं, इससे 'शक्तितः प्रवृत्तेः' इस हेतुको देकर भी यह सिद्ध नहीं कर सकते कि जगतके समस्त व्यक्त पदार्थोंका कारण कोई एक प्रधान है।

कार्यकारणविभागसे विश्वको प्रकृतिकृत माननेपर विचार – अब शङ्काकार कहता है कि इस हेतुसे तो प्रकृतिका कारणपना सिद्ध हो जायगा। कौनसा हेतु ? दुनियाके इन पदार्थोंमें कार्यकारणका विभाग देखा जा रहा है। जिसमें कार्य-कारणका विभाग देखा जाता है वहाँ यह सिद्ध अवश्य होता है कि इसका कर्ता कोई स्वतन्त्र पदार्थ है। जैसे मिट्टीका पिण्ड कारण है और घड़ा कार्य है तो मृत्पिण्डसे भिन्न स्वभाव रखनेवाला घड़ा जो काम कर सकता है वह मृत्पिण्ड तो नहीं कर सकता। मिट्टीका लौंधा कारण है ना और घड़ा कार्य है। तो जितना काम कार्य कर सकता है क्या वही काम कारण कर देगा ? घड़ा तो पानी भर लेता है, मिट्टी का लौंधा क्या पानी भर देगा ? नहीं ! तो इसमें विभक्त स्वभाव रहा। कारणका स्वभाव और है कार्यका स्वभाव और है। तो हमारे सिद्धान्तमें भी कारण तो है प्रकृति और कार्य है ये रूप रस गंध आदिक ये भौतिक सभी पदार्थ। अब इस भौतिक पदार्थका स्वभाव और है और प्रकृतिका स्वभाव और है। कार्यका कारण तो प्रकृति ही है। तो बुद्धि अहङ्कार विषय इन्द्रिय इन सब कार्योंको देखकर हम यह सिद्ध करते हैं कि प्रधान है, अन्यथा ये बुद्धि अहंकार आदिक कार्य नहीं बन सकते थे ? उत्तरमें कहते हैं कि कार्यकारण जो विभाग बन रहा है सो तो सही है, पर जितने कार्य हो रहे हैं उन सब कार्योंका कारण कोई एक ही है। यह बात युक्त नहीं बैठती, किन्तु वैज्ञानिक पद्धतिमें भी प्रत्येक कारणभूत पदार्थके साथ कार्यका जुदा-जुदा अन्वय पाया जाता है। कोई एक ही कारणसे सारे कार्य यहां नहीं देखे जाते। जितने पदार्थ हैं उतने ही कारण होते हैं।

विश्वको एकप्रकृतिकारणात्मक सिद्ध करनेके लिये दत्त हेतुओंमेंसे ४

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हेतुओंका पुन: प्रदर्शन प्रकृतिको कर्ता मानने वाले ये ५ हेतु दे रहे हैं कि इन सब पदार्थोंमें इन सब भेदोंका प्रमाण पाया जाता है । जैसे बुद्धि एक अहंकार एक, तन्मात्रायें ५ आदिक । तो जिन जिन चीजोंकी संख्या होती है उन सबका कोई एक कारण जरूर होता है । जैसे घड़ा, सकोरा, मटका आदिक भेद पाये जाते तो इनका कोई कारण एक है अथवा ये सब पदार्थ किसी एक जातिमें बँधे हुए हैं उनका कोई एक कारण होता है । जैसे घड़ा सकोरा आदिक एक मिट्टी जातिमें बँधे हैं तो इनका करने वाला कुम्हार है । इसी तरह उन सब पदार्थोंकी जातियां हैं वे उनमें बँधे हैं । तो उनका भी करने वाला कोई एक है । तीसरा हेतु दिया है कि सब पदार्थोंके बनने में शक्तिकी प्रेरणा जरूर रहती है । जैसे घड़ा कपड़ा बनानेमें कुम्हार जुलाहा आदि की शक्तिकी प्रेरणा है तो इन सब पदार्थोंके बननेमें किसी शक्तिकी प्रेरणा है । शक्ति निराधार नहीं होती सो इस शक्तिका जो आधार है वह प्रधान है । चौथा हेतु है कि इन पदार्थोंमें कार्यकारण विभाग पाया जाता है जिसके कारण कार्य हो उसका कर्ता जरूर होता है । जैसे मिट्टीका लौंदा कारण है, घड़ा कार्य है तो इसका कर्ता कुम्हार है । तो कार्यकारण होनेके कारण कोई एक कर्ता है । इन हेतुवोंके विरोधमें अभी बताया गया है कि ये सब हेतु एक कारणके बिना होने वाले कार्य देखे जानेसे सदोष हैं । अगर कार्यका याने भेदका परिमाण देखा जा रहा है तो इससे एककारण सिद्ध नहीं होता, जितनी तरहके भेद हैं उतने कारण सिद्ध होते हैं । यदि जातिसे समन्वित है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई एक ही कारणसे विभिन्न जाति वाले कार्य हो जायें । तो यह हेतु एक कारणको सिद्ध नहीं कर सकता । इसी प्रकार शक्तित: प्रवृत्ते: व कार्यकारण विभागसे भी एक कारणको सिद्ध नहीं कर सकते ।

"वैश्वरूप्याविभागात्" हेतुसे विश्वको प्रकृतिकारणात्मक सिद्ध करने का प्रयास—अब ५वाँ हेतु शंकाकार यह दे रहा है कि चूंकि यह सारा जगत प्रलय कालमें विभागरहित हो जाता है । इससे सिद्ध है कि कोई एक प्रधान कारण है सारे विश्वके मायने तीन लोक—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक । सो यह सारा संसार प्रलयके समय किसी एक जगह अविभाग हो जाता है । जैसे कि ५ जो भूत हैं पृथ्वी जल, अग्नि, वायु आकाश । इनका ५ तन्मात्राओंमें लय हो जाता है । ५ तन्मात्रायें अहंकारमें लीन हो जाती हैं । अहंकार बुद्धिमें लीन हो जाता है बुद्धि प्रकृतिमें लीन हो जाती है । इसीके मायने प्रलय है । प्रकृष्ट रूपसे लीन हो जाना इसका नाम है प्रलय । प्रलय कहो या अविवेक कहो या अविभाग कहो—इन सबका एक ही अर्थ है । प्रलयके मायने विनाश यों प्रसिद्ध हो गया कि वहां फिर ये चीजें दिखती नहीं हैं, यथार्थत: ये सब लीन होती गयी और तब दो ही तत्व रह जाते हैं प्रकृति और पुरुष । जैसे दूधकी अवस्थामें यह तो अन्य दूध है और यह दधि अन्य है यह विवेक नहीं किया जा सकता अर्थात् जैसे दूधमें दहीकी शक्ति है और वह दही दूधमें लीन पड़ा हुआ है पर वहां विभाग नहीं किया जाता है कि लो यह दूध है और यह जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जुदा पदार्थ है यह दही है, इसी प्रकार प्रलयके कालमें यह भेद नहीं किया जा सकता कि यह व्यक्त है और यह अव्यक्त है। प्रकृतिका नाम अव्यक्त है और प्रकृतिसे जो कार्यकी रचना चलती है बुद्धि अहंकार ५ विषय इन्द्रियां ये सब व्यक्त हैं तो प्रलय कालमें यह भेद नहीं रह पाता कि यह व्यक्त है और यह अव्यक्त। इससे मालूम होता है कि एक प्रधान कारण अवश्य है जहाँ ये बुद्धि अहंकार आदिक अभागको प्राप्त हो जाते हैं। तो विश्वरूप जगतका प्रलोभीकरण हो जानेसे यह सिद्ध होता है कि कोई प्रधान है जिसमें ये सब पदार्थ लीन हो जाते हैं।

"वैश्वरूप्याविभागात्" हेतुसे विश्वको एकप्रकृतिकारणात्मक सिद्ध करनेकी अशक्यता - अब वैश्वरूप्याविभागके उत्तरमें कह रहे हैं कि प्रलयकाल ही पहिले सिद्ध नहीं है। और सिद्ध भी हो जाय तो बुद्धि अहंकार आदिकका जो लय बताया है, इनकी लीनता पूर्व कारणोंमें हो होकर अन्तमें प्रकृतिमें लीनता होती है तो यह बतलाओ कि जो लीन होता है वह अपने पूर्व स्वभावको छोड़नेपर लीन होता है अर्थात् जो व्यक्त रूप है वह अपने व्यक्त स्वभावको छोड़कर अव्यक्तमें लीन होता है या व्यक्त स्वभावको रखता हुआ अव्यक्त प्रकृतिमें लीन हुआ है। जैसे कहते ना कि ५ विषय—रूप, रस गंध, स्पर्श और शब्द ये अहंकारमें लीन हुए—अहंकार बुद्धिमें, बुद्धि प्रकृतिमें तो ये विषय जो लीन हुए तो पहले यह व्यक्त रूप था, स्पष्ट इन्द्रिय गम्य सब कोई जान ले तो ये सभी लीन हुए तो लीन होनेपर भी इसने अपना व्यक्त स्वभाव छोड़ा या नहीं? अगर व्यक्त स्वभाव छोड़करके लीन हुआ तो इसके मायने है कि व्यक्त तत्वका विनाश हो गया, व्यक्त स्वभावका नाश हो गया याने स्वभाव भी नष्ट हो जाया करता है यह सिद्ध हुआ। जब स्वभाव नष्ट हुआ तो फिर कुछ चीज ही नही रही। व्यक्त अगर व्यक्तताको छोड़दे व्यक्तका फिर विनाश ही हुआ, लीन क्यों कहते हो? यदि कहो कि अपने स्वभावको न छोड़कर लीन होता है तो फिर लीन हो ही नहीं सकता है क्योंकि इसका स्वभाव है व्यक्त और व्यक्त स्वभावको छोड़े नहीं तो व्यक्त लीन कैसे कहलाया। सम्पूर्ण रूपसे अपने स्वरूपका अनुभव भी करे कोई और किसीमें लीन हो गया यों बताये तो यह युक्त नहीं हैं। जब ये विषय अहंकार आदिक अपने व्यक्त स्वभावको नही छोड़ रहे तो लीनता क्या कहलाएगी? उसका लय नही बन सकता, क्योंकि यह परस्पर विरुद्ध बात है कि विश्वरूपता रहे और उसका अविभाग रहे, लीनता रहे। अगर है सब कुछ और अपने स्वभावको छोड़ नही रहे तो वह लीन नही कहलाता है। विश्वरूपता प्रधानपूर्वक होनेपर तो उत्पन्न होती ही नहीं, क्योंकि प्रधानके कारणसे यह सारा विचित्र जगजाल कैसे बनेगा? कार्यकारणके अनुरूप हुआ करता, और कारण है एक, तो सारा कार्य एक रहेगा। कारण अगर एक माना जाय तो विश्वरूपता बन ही नहीं सकती। ये जितने विश्व-रूपता बने, भिन्न भिन्न पदार्थ बने उन पदार्थोंका अपना-अपना करके उपादान जुदा जुदा है तब विश्वरूपता बनी। एक ही तत्व कारण हो और अनेक रूप बन जाय,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक समयमें अनेक अनुभव वाला, अनेक प्रदेश वाला बन जाये यह सम्भव नही है। इससे भी प्रधान समस्त विश्वका करने वाला है यह सिद्ध नही होता। और जब प्रकृति सृष्ठिकर्ता सिद्ध नही होती तो यह भी नही कहा जा सकता कि प्रकृति सर्वज्ञ हुआ करती है।

कर्तृत्ववादके प्रसंगमें मूल प्रकरण व वर्तमान प्रकरणका उपसंहार— इस प्रकरणमें प्रकृति कर्ताका विरोध करनेका कोई प्रसंग न था, प्रसंग तो यह था कि प्रमाण दो तरहके होते हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष प्रमाण उसे कहते हैं जो स्पष्ट है। यदि एक देश विशद है तो वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है और सम्पूर्णतः विशद है तो वह पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। वही है केवल ज्ञान। वह प्रत्यक्ष ज्ञान समस्त आवरणोंका क्षय होनेसे प्रकट होता है। इस प्रकरणमें पहिले तो यह आपत्ति किसीने दी कि आवरणके क्षय होनेसे सर्वज्ञान प्रकट नही होता क्योंकि जिसके सर्वज्ञान है वह अनादिमुक्त सदा शिव रहा करता है। जो आवरणसे मुक्त होता है वह ज्ञानशून्य रहा करता है। वह सर्वज्ञ नही कहलाता। इसके समाधानमें अनादिमुक्त सदाशिवको जगत कर्ता कहना पड़ा कि वह जगतका कर्ता है तभी वह सबको जानता है। जो जगतको न बनाए उसे सर्वके ज्ञानसे क्या प्रयोजन ? इसपर प्रकृतिवादीने यह कहा कि कोई अनादि मुक्त सदाशिव सर्वज्ञ तो नही है किन्तु प्रकृति सर्वज्ञ है और उस प्रकृतिकी सर्वज्ञताको सिद्ध करनेके लिए यह कहना पड़ा कि प्रकृति सृष्टिकर्ता है। लेकिन इतने स्थलों तक न प्रकृति सृष्टिकर्ता सिद्ध हुई और न प्रकृति सर्वज्ञ सिद्ध हुई। न कोई अनादिमुक्त एक बुद्धिमान सृष्टिकर्ता सिद्ध है और न ऐसा कोई सर्वज्ञ सिद्ध है जो अनादिमुक्त हो निरावरण अनादिसे हो। किन्तु जैसे आजकलके ये अनेक संसारी जीव आवरणसहित पाये जाते हैं इसी प्रकार ये सिद्ध प्रभु मुक्त जीव आवरण सहित थे और योग्य उपादानसे योग्य प्रयोगसे उनके आवरण दूर हुए और जब सर्व आवरण दूर हुए तो वे सर्वज्ञ कहलाये। इस तरह प्रत्यक्षज्ञान आत्माका गुण है और आत्मामें आत्माकी ही शक्तिसे प्रकट होता है। जो उपाधि लगी थी वह दूर होती है, इसकी शक्तिका विकास हुआ और वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाया। यहाँ तक प्रकृतिकर्तृत्ववादका वर्णन चला।

सेश्वरप्रकृतिकर्तृत्ववादका सिद्धान्त—अब जो लोग प्रकृतिकी सहायता लेकर ईश्वर जगतको रचता है ऐसा सिद्धान्त मानते हैं वे शंकाकार कहते हैं कि प्रधानसे ही वे कार्यभेद नहीं प्रकट होते हैं। जैसे बुद्धि अहंकार विषय भौतिक पदार्थ आदिक जो भी कार्य हैं वे सब कार्य केवल प्रधानसे ही नहीं सम्भव हैं क्योंकि प्रधान तो अचेतन है। अचेतन पदार्थ किसी प्रेरकके बिना कार्यको उत्पन्न करता हुआ नहीं देखा गया है। जैसे कि मिट्टीसे घड़ा बनता है तो कोई चेतन कुम्हार जब प्रेरणा करता है तब मिट्टीमें घड़ा बनता है इसी तरह जितने भी ये अचेतन हैं वे सब किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चेतनकी प्रेरणासे ही होते हैं। ऐसा भी नहीं है कि कोई संसारी आत्मा इन कार्योंमें प्रेरणा करता हो अर्थात् किसी संसारी जीवोंके द्वारा ही ये बुद्धि अहंकार विषय आदिक रच दिये जाते हों ऐसा भी नहीं है, क्योंकि जितने भी संसारी आत्मा हैं ये सब सृष्टिके समयमें ज्ञानरहित थे। आत्माका स्वरूप चेतन तो है पर ज्ञान सहित इसका स्वरूप नहीं है। तो ज्ञानरहित तो वैसा ही स्वरूप है और ज्ञानका सम्बन्ध भी सृष्टिके समयमें न हो सका इसलिये वहाँ तो ज्ञानके सम्बन्धसे भी रहित होते हैं। तो सृष्टिके समयमें आत्मा अज्ञ होता है और जो अज्ञ है वह कार्योंको क्या प्रेरणा कर सकता है। सिद्धान्त तो यह है कि बुद्धिके द्वारा निश्चित किए गए पदार्थोंको ही आत्मा चेतता है। तो आत्मा किसी भी पदार्थको चेतनेका काम तब करता है जब बुद्धिके द्वारा वह सौंप दिया जाता है, निश्चित कर दिया जाता है। तो बुद्धिका सम्बन्ध हो तब तो यह आत्मा ज्ञानी बनता है। किन्तु, सृष्टिके कालमें अर्थात् जब सृष्टि होने लगी, बुद्धिका अहंकार आदिक कार्य उत्पन्न होने लगें तब ही तो बुद्धिका सम्बन्ध किया जा सकता था। सो बुद्धिके सम्बन्धसे पहिले यह आत्मा अज्ञानी ही था, और जो अज्ञानी हो वह किसी पदार्थको करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तो आत्मा बुद्धिके सम्बन्धसे पहिले कुछ जानता ही न था तो जब किसी पदार्थको जानता ही न था तो अज्ञात पदार्थको यह कैसे कर सकता है ? इस कारण संसारी आत्मा तो इन सृष्टियोंका करने वाला है नहीं तब फिर यही सिद्ध होता है कि ईश्वर ही प्रकृति की अपेक्षा रखकर इन सब कार्यभेदोंको करने वाला है। जितना जो कुछ दृश्य–अदृश्य, ज्ञात-अज्ञात अर्थ समूह है वह सब प्रधानका सहयोग लेकर ईश्वरके द्वारा किया गया है। केवल ईश्वरकर्ता नहीं और न केवल प्रकृति ही कर सकता है किन्तु प्रकृति की अपेक्षा रखकर ईश्वर कर्ता है। जैसे लोकमें देखा जाता कि कोई देवदत्त आदिक पुरुष अथवा कोई कुम्हार घटको यों ही उत्पन्न नहीं कर देता, जब दंड चक्र आदिक का सहयोग मिलता है तब वह घटको उत्पन्न करता है। इसी प्रकार ईश्वर भी प्रधान की अपेक्षा रखकर इन समस्त दृष्ट अदृष्ट पदार्थोंकी रचना करता है।

सेश्वरप्रकृतिकर्तृत्वकी असंभवता – उक्त शंकाके समाधानमें इतना ही कह देना पर्याप्त है कि जब प्रकृतिके कर्तृत्वकी असंभवता और ईश्वरके कर्तृत्वकी भी असंभवता दिखा दी गई तो जब ये दोनों प्रकृति और ईश्वर कर्ता सिद्ध न हो सके तो मिल करके भी कर्ता नहीं हो सकते हैं। जितने भी दोष प्रत्येकके कर्तृत्वके विषयमें दिए गए थे वे सभी दोष यहां प्राप्त होते हैं। किस तरह कर्ता है ? जिन्हें किया गया है उनका उपादान क्या है ? आदि जो जो भी प्रश्न करके उन दोनोंके कर्तृत्वका असम्भवपना दिखाया है वे सभी दोष यहां समझ लेना चाहिए। तो जब वह अकेला कर्ता नहीं हो सकता, उस अकेलेमें कर्तृत्वकी शक्ति न थी तो वे दोनों मिलकर भी सृष्टिके कर्ता नहीं हो सकते।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यदि वे दोनों अलग अलग सृष्टिके कर्ता नहीं होसकते ईश्वरमें भी केवलमें कर्तृत्व असम्भव है और प्रकृतिमें भी केवलमें कर्तृत्व असम्भव है तो रहा आये लेकिन वे दोनों मिल करके सृष्टि न करदें इसमें कौनसी आपत्ति है ? लोकमें भी तो देखा जाता है कि जैसे रूप आदिक पदार्थका ज्ञान हुआ तो एक प्रकाश आदिकके सहयोगसे हुआ । यहां भी केवल एक चक्षुसे या केवल आलोकसे न जान सकें तो इसके मायने यह तो न हो जायगा कि आलोक और आंख दोनों मिल करके भी न जान सकें । तो जैसे यहां केवल चक्षु जाननेमें असमर्थ रहा, केवल प्रलोकरूप आदिकके ज्ञान उत्पन्न करनेमें असमर्थ रहा तो रहा आये लेकिन ये दोनों जब मिल जाते हैं तो मिलकरके तो रूपादिकका ज्ञान उत्पन्न कर ही लिया जाता है इसी प्रकार ईश्वर और प्रकृति भला ही अकेला-अकेला कर्ता न बन सके किन्तु दोनों मिलकरके तो कर्ता हो सकते हैं ।

प्रकृतिसहितत्वके भावके दो विकल्प—प्रकृति सहित ईश्वर लोकको रचता है यह भी केवल कथनमात्र है, क्योंकि साहित्यके मायने क्या अर्थात् मिल जुल जाय; अर्थ तो यही है कि परस्परमें एक दूसरेका सहकारी बन जाना । अर्थात् सहकारीपाना सो सहकारीपना या तो इस रूपसे होता है कि वह परस्परमें एक दूसरेमें कुछ अतिशय उत्पन्न कर दे या फिर सहकारीपना इस तरहसे होता है कि वे दोनों मिलकर किसी एक पदार्थको कर दें । जैसे कि कुछ दवाईयां अलग-अलग काम नहीं कर सकती हैं और जब वे मिल जाती हैं तो वे रोगविनाशका कार्य करने लग जाती हैं । तो मिल करके उन्होंने किया क्या कि एक औषधिने दूसरी औषधिमें अतिशय उत्पन्न कर दिया जैसे कपूर पिपरमेंट अजवाईनका फूल ये जुदे जुदे रहकर एक औषधि रूप नहीं रह पाते, उनकी कोई धारा नहीं बन पाती और जब वे मिल जाती हैं तो स्पष्ट समझमें आता है कि वे एक दूसरेमें अतिशय उत्पन्न कर रहो हैं । तब तीन चीजें मिलकर एक रस धारा बन जायगी और वे अनेक रोगोंको नष्ट करनेमें समर्थ हो जाती हैं तो एक तो सहकारिता परस्परमें अतिशयाधानकी होती है और दूसरी सहकारिता है कि जैसे एक वजनदार वस्तुको ४ आदमी मिलकर उठाते हैं तो उस पदार्थके उठानेरूपको ४ आदमियोंने मिलकर किया तो यह भी सहकारिता देखी जाती है कि मिलजुल करके एक ही पदार्थको करे तो बतलावो कि इन दोनों प्रकारकी सहकारितत्वोंमेंसे ईश्वर और प्रकृतिमें किस प्रकारकी सहकारिता है ?

सर्वथा नित्य तत्त्वोंमें अतिशयाधानकी असंभवता—यदि कहो कि एक दूसरेमें अतिशय उत्पन्न करता है इस प्रकारकी सहकारिता है तो यह भी कल्पनामात्र है । इसका कारण यह है कि ईश्वर भी नित्य है और प्रकृति भी नित्य है । जो नित्य पदार्थ होते हैं उनमें विकार नहीं हुआ करता । विकार हो जाय तब फिर नित्यता क्या रही ? तो जब नित्य होनेके कारण प्रकृतिमें और ईश्वरमें कभी विकार ही संभव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है तो वे परस्परमें एक दूसरेमें अतिशय क्या उत्पन्न कर सकते हैं। तो परस्पर अतिशय उत्पन्न करनेरूप सहकारिता तो इसमें सम्भव नहीं। यदि कहो कि एक पदार्थको ये दोनों मिलकर करते हैं ऐसी सहकारिता है तो समस्त कार्य एक साथ उत्पन्न हो जाने चाहिएँ। इसका कारण यह होगा कि ईश्वर भी पूर्ण सामर्थ्यवाला है और प्रकृति भी पूर्ण सामर्थ्यवाली है जिसकी सामर्थ्यको कोई दबा नहीं सकता, क्योंकि वे दोनों नित्य हैं नित्य होनेसे, इनकी सामर्थ्य किसीके द्वारा हटाई नहीं जा सकती। और ये दोनों रहते हैं सदा, तो जब पूरा कारण मौजूद है, पूरी शक्ति है इन दोनोंमें, और सदाकाल उपस्थित रहते हैं तो उसका समस्त कारणपना मिल गया तो सारे कार्य एक साथ उत्पन्न हो जाने चाहिएँ। ऐसा नियम है कि जो जिस समय अविकल कारण होता है अर्थात् समस्त कारणपना जब आता है तो उस समय वह उत्पन्न होता ही है। जैसे अन्तिम समयमें पायी गयी सामग्रीसे अंकुर उत्पन्न होता ही है। बीजोंमें अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्ति है किन्तु अभी सामग्रीकारण नहीं मिली है। खाद मिले, पृथ्वीका सम्बन्ध मिले, कुछ गर्मी भी बने, कुछ पानी भी मिले तो जब सारी सामग्री मिलकर आखिरी सामग्रीसे युक्त हो जाता है तो वहाँ अंकुर नियमसे उत्पन्न होते हैं। तो इस प्रकरणमें ये प्रकृति और ईश्वर दोनों पूर्ण सामर्थ्य वाले हैं और सदा रहते हैं, नित्य हैं। तो जब अविकल कारण मौजूद है तो समस्त कारणों को उत्पन्न कर देवे एक साथ सो ऐसा देखा नहीं जाता। इससे प्रकृतिकी अपेक्षा लेकर ईश्वर इन समस्त कार्यभेदोंको करता है यह बात भी सम्भव न हो सकी।

सत्त्व रजः तमः गुणका क्रमसे सहयोग होनेके कारण ईश्वर द्वारा सृष्टिक्रम होनेका प्रस्ताव— शंकाकार कहता है कि यद्यपि यह बात ठीक है कि प्रकृति और ईश्वर दोनों कारण नित्य हैं और सदा रहते हैं इतने पर भी ये सब कार्य भेद क्रमसे प्रवर्तित होंगे। इसका कारण यह है कि ईश्वरको सहयोग मिला है सृष्टिके रचनेमें वह प्रकृतिमें पाए गए सत्व रज तम इन तीन गुणोंसे मिला है अर्थात् सृष्टिकी रचनामें ईश्वरके सहकारी ये तीन गुण हैं जो कि प्रधानके गुण कहलाते हैं। सो ये सब गुण क्रमसे होते हैं। तो जब जिस गुणका सहयोग मिला तब ईश्वरने उस गुणके अनुरूप सृष्टि की। इसका खुलासा यह है कि प्रधान जिस समय रजोगुणसे युक्त होता है, जब रजोगुणकी वृत्ति उत्पन्न होती है, रजोगुण अपने प्रभावमें प्रकाशमें आता है उस समय रजोगुणसे युक्त होता हुआ यह ईश्वर प्रजाकी रचनाका कारण बनता है। विश्वरचनाके प्रसङ्गमें तीन बातें आया करती हैं—एक तो विश्वको उत्पन्न करना, दूसरे विश्वको वैसा बनाये रखना और तीसरी विश्वका प्रलय कर देना। ये तीन बातें हुआ करती हैं सृष्टिके विषयमें। सो रचनामें अर्थात् निर्माणमें सृष्टिके बनानेमें तो रजोगुणकी मुख्यता होती है। जब रजोगुण प्रत्यक्ष प्रकट होता है जब रजोगुण प्रचंड होता है उसका प्रकाश प्रसार होता है तब उस रजोगुणसे सहित होकर यह ईश्वर प्रजाजनोंका निर्माण करनेका कारण बनता है क्योंकि रजोगुणका प्रसव कार्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। रजोगुणसे उत्पत्ति चलती है और जब सत्वगुणकी वृत्ति प्रकट होती है, तो जिस का प्रसार हुआ ऐसे सत्वका जब ईश्वर आश्रय लेता है तब वह इस लोककी स्थितिका कारण बनता है, क्योंकि वह सत्व जो है वह स्थितिका हेतु हुआ करता है। इसी प्रकार जब उद्भूत शक्ति वाले तमोगुणसे युक्त होता है ईश्वर, उस समय वह समस्त जगतका प्रलय करता है, क्योंकि तमोगुण प्रलयका कारणभूत है। ये तीन गुण प्रधान के गुण हैं इसलिए सहयोग भी प्रधानका कहलाया, पर प्रधानके इन गुणोंमें जब जिस गुणका प्रकाश प्रसार प्रचार होता है तब उसके माफिक ईश्वर उस प्रकारका कार्य करता है। तो इन तीन गुणोंसे पहिले रजोगुणकी उद्भूति हुई। तो ईश्वरने इस संसारको रच डाला। फिर सत्व गुणका प्रकाश रहता है तब इस विश्वको यह बनाये रहता है. यह रचना चलती रहती है और जब तमोगुणका प्रभाव बढ़ता है तब इन सब रचनाओंका प्रलय होता है। ईश्वर इन सबको क्रमसे विलीन कर करके सब सृष्टिको प्रकृतिमें विलीन कर देता है। उस समय फिर ये केवल दो ही तत्व रह जाते हैं ईश्वर और प्रकृति। फिर जब उस प्रकृतिमें रजोगुण प्रचंड बनता है इसका प्रचार होता है तब फिर यह ईश्वर सृष्टिकर्ता होता है और इसके बाद सत्व गुणके प्रकाशमें इस लोकालोकको बनाये रखता है और तमोगुणके प्रचारमें प्रसारमें यह फिर प्रलय कर देता है। इस तरह यद्यपि प्रधान और प्रकृति दोनों नित्य तत्व हैं और सदा सन्निहित हैं, मौजूद रहते हैं तो भी उन गुणोंकी अपेक्षा होनेसे क्रमसे ईश्वर इन कार्यों को करता है। यद्यपि सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इनका प्रभाव प्रति पदार्थमें सन्निहित एक ही दिनमें कई बार हो जाता है सो वह एक आवान्तर उत्पादव्यय ध्रौव्य है। जो मुख्य उत्पाद है रचना है वह तो प्रलयके बाद एक बार होती है। और फिर इसके बाद ये सब पदार्थ रहे जायें, परिणमते रहें इस प्रकारका जो अवस्थित-पना रहता है वह सत्व गुणका काम है और फिर अन्तमें सभी अपने अपने कारणमें विलीन हो जायें यह तमोगुणका कार्य है। तो यों ईश्वर प्रधानके इन गुणोंकी अपेक्षा लेकर इस क्रमसे उत्पन्न हुए प्रकाशमें आये हुए गुणोंके कारण सब कार्योंको एक साथ नहीं करता किन्तु उस उस तरहसे क्रमसे करता है।

एककार्यकालमें प्रकृति और ईश्वरके अन्य कार्यसामर्थ्य माननेपर सर्वकार्यका युगपत् प्रसङ्ग – अब उक्त आशङ्काके समाधानमें कहते हैं कि प्रकृति और ईश्वर इन दोनोंने मिलकर जो लोककी रचना की, लोकको बनाये रखा और लोकका प्रलय किया तो काम ये तीन किये प्रकृति और ईश्वरने मिलकर तो यह बतलाओ कि इन तीन कामोंमें जब जो काम किया जा रहा है उसके कार्यके समयमें उस कामसे भिन्न जो और कार्य हैं उनको उत्पन्न करनेकी इसमें सामर्थ्य है या नहीं? अर्थात् प्रकृति और ईश्वर मिलकर जब लोककी सृष्टि कर रहे हैं तो उस समय प्रकृति और ईश्वरमें लोककी स्थिति और लोकप्रलय करनेका सामर्थ्य है या नहीं? इसी प्रकार जब प्रकृति और ईश्वर मिलकर इस लोकका प्रलय करते हैं तो उस समय इन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दोनोंमें सृष्टि और स्थिति करनेका सामर्थ्य है या नही ? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि कहो कि सामर्थ्य है प्रथम विकल्प मानो तो सृष्टिके समयमें ही स्थिति और प्रलय होनेका प्रसङ्ग आ जायगा, क्योंकि इन दोनोंमें सृष्टि करनेकी तरह स्थिति और प्रलय करनेकी भी पूरी सामर्थ्य है और दोनों नित्य होनेसे सदा हैं तब फिर समस्त कार्य एक साथ ही होना चाहिए। इसी प्रकार जिस समय ये दोनों मिलकर इस लोककी स्थिति कर रहे हैं, उस कालमें सृष्टि और प्रलय ये दोनों हो जाने चाहियें ? इसी प्रकार जिस समय ये दोनों मिलकर प्रलय कर रहे हैं, विनाश कर रहे हैं उस समयमें स्थिति और उत्पाद भी हो जाना चाहिए। पर यह तो युक्त है नही, क्योंकि इन तीनोंका लक्षण जुदा है। उत्पाद मायने किसी चीजकी उत्पत्ति करना, विनाश मायने नाश करना और स्थिति मायने वह बना रहे। तो परस्पर परिहाररूपसे रह सकने वाले उत्पाद, विनाश और स्थिति इन तीन धर्मोंका एक धर्मीमें एक लोकमें एक जामें एक साथ सद्भाव कैसे बन सकता है ? कदाचित् यह कहो कि स्याद्वाद दर्शनमें भी तो एक साथ उत्पाद व्यय ध्रौव्य माना है लेकिन यह उपालम्भ देना यों ठीक नहीं हो सकता कि स्याद्वादमें तो उस ही एकका अपेक्षासे उत्पादव्ययत्रय माना है। जैसे मिट्टीके लौंदेसे घड़ा बना तो घड़के रूपसे उत्पाद है तो लौंदेके रूपसे विनाश है मिट्टीके रूपसे स्थिति है उस ही का उत्पाद और उस हीका विनाश तो नहीं माना गया। किन्तु यहां लोकरचनामें तो उस एक ही लोकका इस समस्त अर्थसमूहका तो सृजन होता है और फिर अनेक कल्पकाल व्यतीत होनेके बाद फिर उसका प्रलय करना, तो यहां सृष्टिमें और प्रलयके लक्षणमें तो भिन्नता है इससे सृष्टि प्रलय और अवस्थिति ये तीनों धर्म एक साथ ही इस लोकमें लागू नहीं हो सकते। तब यहाँ तो यह कहना ठीक नहीं रहा कि प्रकृति और ईश्वरमें किसी एक कार्य करते समय भी शेष अन्य दो कार्योंका भी सामर्थ्य है।

एककार्यकालमें प्रकृति और ईश्वरके अन्य कार्यसामर्थ्य न माननेपर विडम्बनाका दर्शन –अब यदि यह पक्ष लोगे कि प्रकृति और ईश्वर मिलकर उत्पाद स्थिति और प्रलय इन तीनमेंसे कुछ भी एक काम कर रहे हैं उस समय शेष दो कार्यों के करनेका सामर्थ्य नहीं है। तब तो एक ही कोई कार्य उत्पाद स्थिति प्रलयमेंसे सदा होते रहना चाहिये क्योंकि प्रकृति और ईश्वर उस एक कार्यको करनेमें तो समर्थ हैं और शेष दो कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं। तो किन्हीं भी दो कार्योंके करनेका जब सामर्थ्य नहीं है तो वे दो कार्य कभी हो ही नहीं सकते। सृष्टि करनेमें लगा है तो सृष्टि ही सृष्टि निरन्तर शाश्वत अनन्त काल तक हो क्योंकि शेष दो कार्योंके करनेका उनमें सामर्थ्य ही नहीं है। अथवा मानो स्थितिका कार्य कर रहा है तो सदा स्थिति ही रहो, सर्ग प्रलय कभी होंगे ही नहीं। अथवा प्रलयका ही कार्य कर रहे हैं दोनों, तो प्रलय ही प्रलय रहे, कभी रचना और अवस्थिति सम्भव ही नही हो सकते क्योंकि अन्य दो कार्योंके उत्पन्न करनेमें उसके सदा ही सामर्थ्यका अभाव है। वे दोनों हैं नित्य सो नित्य पदार्थमें जो बात है वही सदा रहेगी, उसमें कोई नई बात आ जाय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह नित्यमें सम्भव नही। नित्य अविकारी होता है। अविकारी हैं प्रकृति और ईश्वर दोनों तो इस दुनियामें कोई नई सामर्थ्यकी फिरसे उत्पत्ति हो जाय यह सम्भव नहीं हो सकता। इन दोनोंमें जो सामर्थ्य है सो ही सामर्थ्य है, कोई नई सामर्थ्य नहीं हो सकती। तो जब ये दोनों मिलकर सृष्टिका कार्य कर रहे हैं तब वही सामर्थ्य है। सृष्टिके खिलाफ स्थिति विषयक प्रलय विषयक कोई भी सामर्थ्य नहीं आ सकती। अविकारी पदार्थमें ऐसा नही होता कि अभी तो यह पदार्थ न था अब यह पदार्थ आ गया। यदि ऐसा होने लगे तो इसका अर्थ है कि विकार हो गया। विकार होनेसे वह नित्य नहीं हो सकता। अन्यथा जो नित्यस्वभाव प्रकृति और ईश्वरका माना है उस स्वभावका घात हो जायगा और जिस पदार्थके स्वभावका घात होता है उसका अर्थ यह हुआ कि वह पदार्थ ही नहीं रहा। यदि प्रकृति और ईश्वरके अपरिणामित्व स्वभावका नाश हो तो प्रकृति और ईश्वरका भी अभाव हो गया। जैसे अग्निका स्वभाव उष्णता है तो यदि उष्णताका विनाश होता है तो इसका अर्थ यह है कि अग्निका विनाश हो गया। तो जब प्रकृति और ईश्वर ही नहीं रहे तो फिर उनके बारेमें रचना होना, स्थिति होना, प्रलय करना आदिक कल्पनाजाल बनाना व्यर्थ है। तो प्रधानकी अपेक्षा लेकर वह ईश्वर इस लोककी सृष्टि करनेमें और स्थिति रखनेमें तथा लोकका प्रलय करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकता।

सत्व रज: तम: गुणकी उद्‌भूतवृत्तिताके कारण ईश्वरकृत कार्यकी व्यवस्था सिद्ध करनेका प्रयास शङ्काकारका यह मंतव्य है कि न तो केवल प्रकृति सृष्टि बनाती है और न केवल ईश्वर बनाता है किन्तु ईश्वर प्रकृतिका सहयोग पाकर सृष्टि बनाता है। सृष्टि बनानेका कर्ता तो ईश्वर है पर सहयोग प्रकृतिका है। प्रकृति मुख्य कर्ता नहीं है क्योंकि वह अचेतन है। तो इस सम्बन्धमें तब यह आपत्ति बताई गई कि प्रकृति भी सदा है और ईश्वर भी सदा है तो सदैव लगातार सृष्टि स्थिति प्रलय सभी कार्य एक साथ क्यों नही हो जाते ? तो इस शङ्काका निवारण शङ्काकारने यों किया कि प्रकृतिमें तीन गुण हैं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। सो जिस समय उस प्रकृतिमेंसे रजोगुणकी वृत्ति प्रकट होती है उस समय तो ईश्वर सृष्टिकर्ता है क्योंकि रजोगुणका धर्म है उत्पन्न करना। और जब यह प्रकृति सत्वगुण से प्रकट होती है तब इसकी वृत्ति सत्त्वगुणमें होती है उस समय ईश्वर इस सृष्टिकी स्थिति बनाये रहता है और जब प्रधानमें तमोगुणकी वृत्ति प्रकट होती है तो ईश्वर फिर इस विश्वका प्रलय करता है। इसमें भी आपत्ति दिखाई गई थी कि जिस समय मानो रजोगुणकी वृत्ति प्रकट है उस समय प्रकृति और ईश्वरमें स्थिति और प्रलय करनेकी सामर्थ्य है या नहीं ! यदि सामर्थ्य है तो सब बातें एक साथ हो जानी चाहिएँ और अगर उन दो कार्योंकी शक्ति नहीं है तो फिर कभी भी वह कार्य किया नही जा सकता। उसके समाधानके रूपमें शंकाकार कह रहा है कि यद्यपि प्रकृतिमें नित्यत्वका स्वभाव है। स्वभावका घात नहीं है, लेकिन प्रधानमें प्रकृतिमें सत्वादिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणोंके बीचमेंसे जो ही गुण अपनी वृत्तिको प्रकट करता है बस वही गुण उस कार्यमें कारण बनता है। आपत्ति यह दी गई थी कि प्रकृति और ईश्वरमें सृष्टिके समय स्थिति और प्रलय करनेकी सामर्थ्य तो नहीं है फिर सामर्थ्य आती है। जबकि तमो गुण और सत्त्वगुण प्रकट होते हैं तो इस तरह प्रकृति भी अनित्य हो गयी और ईश्वर भी अनित्य हो गया क्योंकि पहिले तो सामर्थ्य न थी और अब सामर्थ्य आगई, कोई बदल होनेका ही नाम अनित्यपना है। उसके उत्तरमें शंकाकार यह कह रहा है कि प्रकृतिका और ईश्वरका दोनोंका स्वभाव तो वही है नित्य, एक लेकिन प्रकृतिमें तो उन तीन गुणोंमेंसे जिस ही गुणकी वृत्ति प्रकट होती है बस वही गुण कारणपने को प्राप्त होता है, अन्य कुछ कारण नहीं बनता। प्रकृतिमें ३ गुण हैं पर तीन गुण कारण नहीं बनते कार्यके लिए। जिस समय जो गुण प्रकट हुआ उस गुणके माफिक कार्य बनता है। इस कारणसे सृष्टि, स्थिति और प्रलय ये सब एक साथ पड़े ऐसा प्रसङ्ग नहीं आता।

सत्त्व रज: तम: गुणकी उद्भूतवृत्तिताका नित्य व अनित्य विकल्पोंसे निरसन—उक्त शंकाका समाधान देते हैं कि अच्छा यह बतलाओ कि प्रकृतिमें जो सत्त्व, रज: तमोगुणकी वृत्ति प्रकट हुई है तो उन गुणोंकी वृत्ति प्रकट होना यह चीज नित्य है या अनित्य ? प्रधानमें किसी गुणकी वृत्ति उखड़ती है प्रचण्ड होती है तो ऐसी वृत्ति उखाड़नेका प्रकाशमें आनेका जो काम है वह नित्य है या अनित्य ? यदि कहो कि नित्य है तो यह बात यों नहीं बनती कि जो नित्य होता है वह शाश्वत रहता है पर ये वृत्तियाँ तो कभी कभी उत्पन्न होती हैं। यदि नित्य मानोगे तो वही दोष फिर आयगा कि तीनों बातें एक साथ होना चाहिए। सभी गुण हैं प्रकृतिमें और उनमें वृत्ति उनकी बनती है, प्रकट होती है और वह सबका सब नित्य मानता है। तो जब सदा उनकी वृत्ति उद्भूत है तो सभी कार्य एक साथ हो जाना चाहिये। इससे प्रधानमें रहने वाले इन ३ गुणोंकी वृत्तियोंका प्रकट होना नित्य तो कहा नहीं जा सकता और अनित्य मानोगे तो तुम्हारे ही पक्षका उसमें विरोध है। यदि कहो कि अनित्य है प्रधानमें जो सत्त्व गुण प्रकट हुआ था रजोगुण हुआ या तमोगुण हुआ। जब जो गुण प्रकट हुआ उसकी वृत्ति प्रचण्ड हुई सो यह वृत्ति अनित्य है तो अनित्य की कहाँसे उत्पत्ति होती है ? यह बतलाओ कि उन गुणोंके उद्भूत वृत्तिपनेका प्रादु-र्भाव कहाँ हुआ ? प्रधानमें ये तीन गुण जो वेगके साथ उखड़े इसकी उत्पत्ति किसने की ? क्या प्रकृति ईश्वरसे उत्पत्ति हुई, इन गुणोंका प्रसार किसी ईश्वरसे बना या अन्य हेतुसे ? अथवा यह स्वतन्त्र ही चीज है ?

सत्त्व रज: तम: गुणकी उद्भूतवृत्तिताकी प्रादुर्भूति प्रकृति और ईश्वरसे या अन्यसे माननेपर आपत्ति—यदि कहो कि गुणोंका वह उखड़ना प्रकृति और ईश्वरसे बना है तो गुणोंकी उद्भूतवृत्तिता सदा रहना चाहिये क्योंकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकृति और ईश्वर तो हेतु हुए उन गुणोंके प्रकट होनेके और प्रकृति और ईश्वर हैं नित्य तो इन गुणोंका उखड़ना भी नित्य हो गया क्योंकि प्रकृति ईश्वर सदा मौजूद हैं। तो जब कारण सदा मौजूद है और अविकल कारण है तो सदा कार्य होना चाहिये। जिस समय समग्र कारण मौजूद होते हैं जो अन्तिम क्षणमें हुआ करते हैं, उस समय कार्य न हो, यह हो ही नहीं सकता। तो जब प्रकृति भी है ईश्वर भी है गुणका उद्भूत वृत्तिपना भी है तब फिर सभी कार्य सदा होने ही चाहियें, सो होते नहीं। इससे प्रकृति और ईश्वरसे उन ३ गुणोंकी उद्भूति हुई है, यह बात न मानी जायगी। यदि कहो कि किसी अन्य कारणसे ही प्रकृतिमें उन गुणोंकी वृत्ति प्रकट होती है तो इससे एक तो तीसरी बात सिद्ध हो जायगी प्रकृति और ईश्वरके अलावा भी कोई तीसरा जबरदस्त तत्त्व है कि जिसके बिना भी यह विश्वकी रचना रुक जाती है तब तो एक तीसरा तत्त्व मानना होगा। फिर जो यह कहा कि दो ही तत्त्व हैं मूलमें प्रकृति और पुरुष, इस सिद्धान्तका घात है, सो तुमने माना ही नहीं कि प्रकृति और ईश्वरको छोड़कर कोई तृतीय तत्त्व हो। तो अन्यसे भी प्रकृतिमें सत्त्व रजो तमोगुणकी वृत्ति प्रकट नहीं हो पाती।

सत्त्व रज: तम गुणकी उद्भूतवृत्तिताकी प्रादुर्भूति स्वतन्त्र माननेपर आपत्ति— अब यदि तृतीय पक्ष लोगे कि प्रकृतिमें जो सत्त्व गुण, रजोगुण, तमोगुण उखड़ते हैं वे स्वतंत्र हैं। जब स्वतंत्र हैं ये वृत्तियाँ फिर ये अनित्य नहीं रह सकतीं। कभी हो कभी न हो ऐसा नहीं हो सकता। जब कादाचित्क न रहे तो सदा ही प्रलय स्थिति आदिक एक साथ हो जाने चाहिये। जहाँ स्वतंत्र रूपसे होना हो उसके होनेमें देश कालका नियम नहीं बन सकता। जब उसमें देश कालका नियम नहीं बना तो यह व्यवस्था कैसे बन सकती कि ईश्वर किसी दिन सृष्टि को और कल्पकालतक उस सृष्टि को बनाये रखे और फिर इस समय उसका प्रलय करे जब यह स्वतंत्र है इन तीन गुणों का प्रकट होना तो अटपट जब प्रकट हो गए तब साराकाम बनजाय या बिगड़जाय क्योंकि इन गुणोंका यह प्रकाश कादाचित्कन रहा। कादाचित्क तो वह परिणाम होता है जो किसी अन्य कारणके आधीन अपना स्वरूप बना पाते हैं। जैसे आत्मामें रागद्वेष मोहभाव होते हैं स्याद्वाद सिद्धान्तमें तो ये रागद्वेषमोह भाव स्वभावान्तरके आधीन हैं अर्थात् प्रकृतिकर्म इनका उदय होनेपर होता है इनका उदय न होनेपर नहीं होता है। तो जितने भी कादाचित्क भाव होते हैं वे सब किसी अन्य कारणके आधीन अपना स्वरूप रख पाते हैं क्योंकि कादाचित्कका तो यही लक्षण है। कार्यका सत्त्व कारणके सद्भाव होनेपर होता है कार्यका असत्त्व, विनाश कारणके अभाव होनेपर होता है। तो कारणके सद्भाव और अभावके साथ कार्यके सत्त्व और असत्त्वका सम्बंध होता है। अब इन ३ गुणोंका प्रकट होना स्वतंत्र मान लिया गया। कोई कारण तो रहा नहीं तब ये कादाचित्क नहीं रह सकते क्योंकि कादाचित्क होनेमें अब अपेक्षामयी क्या तत्त्व रहा जब स्वतंत्र हो गया। किसीका न आश्रय है न निमित्त है न अपेक्षा है तब फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कादाचित्क क्यों होगा ? उसमें कोई नियम नहीं बन सकता है। इससे यह बात कहकर कि प्रधानमें जो तीन गुण हैं सत्वगुण रजोगुण, तमोगुण, उसमेंसे जिस समय जिस गुणकी वृति प्रकट होती है उस समय उस गुणके अनुरूप ईश्वर कार्य करता है। यह बात नहीं बन सकती।

पदार्थोंमें त्रिगुणात्मकताका दर्शन—देखो सीधा पदार्थों को देखा जाय तो इसमें कोई विरोध नहीं आता कि प्रत्येक पदार्थ जग सत है सब है, उसका कभी विनाश नहीं हो सकता और जो है वह कभी एक स्वरूप नहीं रह सकता अर्थात् अपरिणामी नहीं रह सकता उनमें परिणमन चलेगा चाहे सदृश परिणमन चले अथवा विसदृश परिणमन चले, तो ये लोकमें जितने पदार्थ स्थित हैं वे सब एक दूसरेके यथायोग्य परिणमन में निमित्त होते हैं, तो सृष्टि है, रचना है पर इसका कोई कारण मात्र है कोई भो कारण जिस किसीका बनता है जिसका जो बनता है वह कारण उनका है, पर सम अर्थ समूहका कोई एक बुद्धिमान कर्ता हो अथवा कोई एक अचेतन ही कोई कर्ता हो यह बात सम्भव नहीं है क्योंकि पदार्थ जितने हैं वे सब अपने पूरे अस्तित्वको लिए हुए हैं, उनमें उनके प्रदेश उनके गुण पर्याय, उनकी परिणति उनके भाव उनका सब कुछ सत्त्व उनमें ही पाये जाते हैं तो वे सब समर्थ हैं और अनुकूल साधन पाकर निरन्तर परिणमते रहते है। इन पदार्थसमूहका करने वाला कोई ईश्वर माने अथवा प्रकृति माने या अन्य कुछ माने तो ऐसा कोई एक नहीं माना जा सकता। सब हैं और हैं होने के कारण निरन्तर परिणमते रहते हैं। इसीका नाम सृष्टि है। सदा सृष्टि होती है सदा प्रलय होता हैं और सदा बने रहते हैं। पदार्थोंका उत्पाद सर्ग अथवा सृष्टि प्रति समय होती रहती है और जब नवीन पर्यायका सर्ग हुआ तो निकट समय पहिलेकी पर्यायका प्रलय हो जाता है और ऐसा सर्ग प्रलय होने पर भी जो आधारभूत है वह तो वहीका वही सत् है इस तरह सृष्टि प्रक्षय और स्थिति प्रत्येक पदार्थमें निरन्तर चलते रहते हैं। जब कभी कोई विचित्र परिणमन हुआ तो उसे लोग सृष्टि कहने लगते हैं और जब कोई विचित्र विनाश होता, प्रलय होता तो उसे लोग प्रलय कहते हैं, मगर वस्तुका न सर्वथा प्रलय है, न सर्ग है, न ध्रौव्य है। प्रत्येक पदार्थमें ये तीन बातें एक साथ पायी जाती है। जैसे जब मृत्पिण्डसे घट बना, पहिले समयमें जो मृतपिण्डकी अवस्था थी तो घट बननेके समय घट पर्यायका तो सर्ग हुआ और मृत्पिण्ड पर्यायका प्रलय हुआ और मृत्तिका रूपसे स्थिति रही एक बात, दूसरे यह भी देखो कि जिसपर निगाह रखकर हम बात कर रहे हैं वही तो सृष्टि है, वही प्रलय है सौर वही स्थिति है। तो यों त्रिगुणात्मक प्रत्येक पदार्थ हैं उत्पादव्यय ध्रौव्यमय सभी पदार्थ प्रतिसमय अपने योग्य अनुकूल साधन मिलने पर परिणमन करते रहते हैं।

सेश्वर प्रकृतिकर्तत्वमें अनिष्पन्न या निष्पन्न कार्यों द्वारा स्वरूपलाभ कहनेकी असंगतता—अब अन्तिम एक प्रश्न और किया जा रहा है शंकाकारसे कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आपका कहना है कि इन सब पदार्थों को कार्योंको ईश्वर प्रकृतिकी मदद लेकर उत्पन्न करता है तब इस कार्यकी ओरसे इस विषयको जाना जाय तो यह कहा जायगा ना कि यह कार्य उस ईश्वरकी प्रेरणा से अपने स्वरूपका लाभ ले लेता है। तो यह कार्य निष्पन्न होकर अपने स्वरूपकी प्राप्ति करता है अपने स्वरूपको उत्पन्न करता है, यह कार्य सर्वसम्पन्न होकर अपने स्वरूपको उत्पन्न करता है अर्थात् प्रकृतिके सहयोग को पाकर ईश्वरने जो कुछभी चेष्टा की जिस चेष्टामें ये कार्य उत्पन्न हो गयेतो इन कार्यों ने जो आत्म स्वरूपका लाभ पाया है अपने ही स्वरूपकी प्राप्ति कर पायी है तो इन कार्योंने निष्पन्न होकर अपने स्वरूपकी प्राप्ति की या अनिष्पन्न कार्योंने अपने स्वरूपकी प्राप्ति की यदि कहो कि निष्पन्न होते हुये इन कार्योंने अपने स्वरूपको पाया तो निष्पन्न हो गया था ही पहिले। जब निष्पन्न कार्योंने स्वरूपकको पैदा किया तो निष्पन्न था ना, उसके स्वरूपको क्या पैदा किया ? निष्पन्न होनेके नाते ही निष्पन्नरूपसे अभिन्न होनेके कारण स्वरूपसे निष्पन्न ही रहा तो किया क्या पैदा ? अपना कार्य था अपना स्वरूप और अलगसे कौन था जिसे पा लिया ? जब वह कार्य स्वयं था तो है' के साथ स्वरूप भी बना रहता है तो फिर स्वरूपको उत्पन्न करनेकी बात ही कहाँ रही, यदि कहो कि यह कार्य अनिष्पन्न था और इस अनिष्पन्नने अपने स्वरूपको पाया, तो जब जिन कार्योंने स्वरूप पाया तो वे असत् हो गये। जैसे आकाशका फूल, अब यह क्या अपना स्वरूप लाभ करेगा ? जो चीज ही नही है उसका स्वरूप, उसका सत्त्व, उसका विनाश किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता, इससे किसी भी तरह यह सिद्ध नही होता कि प्रकृति कर्ता है अथवा ईश्वर कर्ता है, अथवा प्रकृतिका सहयोग लेकर ईश्वर कर्ता है और इसी कारण ईश्वर सर्वज्ञ है, प्रकृति सर्वज्ञ है।

सृष्टिवादके प्रसङ्गमें मूल मुख्य प्ररण – मुख्य प्रकरण यहाँ कर्तृत्ववाद का न था प्रकरण तो केवल यह था कि एक प्रत्यक्षज्ञान होता है पारमार्थिक सकल प्रत्यक्ष, जो समस्त लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जानता है। इसकी सिद्धिका विचार चल रहा था, और इस ही प्रकरणमेंसे सम्बन्धित आवरणोंकी सत्ता बताई जा रही थी कि इस ज्ञानपर आवरण लगा हुआ है अन्यथा यह सबको क्यों न जान लेता ? और यह आवरण पौद्गलिक है क्योंकि सजातीय सजातीयका आवरण नही कर सकता। ज्ञान है ज्ञानात्मक, तो ज्ञानपर जो आवरण करे वह होना चाहिये अज्ञानात्मक। ज्ञानादिक गुण भी क्या आवरण कर सकते हैं ? जैसे दीपक किसी दूसरे दीपकका आवरण तो नही कर सकता। हाँ भींट है या अन्य कोई चीज है, वह दीपक का आवरण कर सकती है। तो ज्ञानपर आवरण करने वाले जो कुछ भी हो सकते हैं वे अज्ञानरूप हीं हो सकते हैं और वे हैं कर्म। अर्थात् पौद्गलिक हैं। तो पौद्गलिक कर्म आवरण हैं और उनका विनाश किया जा सकता है। क्योंकि जिस आवरणमें कमी बेशी पायी जाती है वह अब और कम हो गया। तो यह सिद्ध है कि यह आवरण कहीं बिल्कुल भी नष्ट हो जाता है। तो जहां आवरण पूर्णतया नष्ट हो जाता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वहां ज्ञान पूर्ण प्रकट हो जाता है, उसीको ही एक मुक्त अवस्था कहते हैं। उस समय में यह पूर्ण हुआ सकल ज्ञान, समस्त लोकालोकको जानता है।

सर्वज्ञताके प्रकरणमें अनादिमुक्त चेतनकी सर्वज्ञताकी उत्थापना – यहाँ प्रकरणमें सीधी बात यह चल रही थी इसपर छेड़ दिया ईश्वर कर्तृत्ववादियोंने कि आत्मा सर्वज्ञ नही होता किन्तु जिनपर आवरण लगे रहते हैं ऐसे जीवोंका आवरण तो दूर होता है, कर्मोंका क्षय तो होता है. पर कर्मोंका क्षय होनेके साथ ही उसका गुण भी नष्ट हो जाता है। ज्ञानगुण फिर उस आत्मामें नही रहता तब वह सर्वज्ञ ही क्या रहेगा ? तो जिसपर कभी आवरण लगा ही न था ऐसा अनादिमुक्त एक ईश्वर है, वह सर्वज्ञ है, उसके अलावा और कोई सर्वज्ञ नही हो सकता, ऐसी शंकाकारने छेड़ाछाड़ी की और उस ईश्वरको सर्वज्ञ मनानेके लिए यह हेतु रखा कि चूँकि वह समस्त विश्वका करने वाला है इसलिए वह सर्वज्ञ है। कोई अजानकार आदमी किसी कामको नही कर सकता। कोई कुम्हार जिसे घड़ा बनानेका ज्ञान ही नही है वह घड़ा क्या बनायेगा ? कोई पुरुष जिसे भोजन बनानेका ज्ञान ही नही है, वह भोजन क्या बनायेगा ? तो ईश्वर चूँकि सारे विश्वका करने वाला है. स्वयंसिद्ध है, सारे विश्वका ज्ञाता है यह विषय चला था। इसके निराकरणमें युक्तियां दीं।

सर्वज्ञताके प्रकरणमें प्रकृतिवाद एवं सेश्वरवादकी उपासना—अनादिमुक्तताकी बात जब निराकृत हुई तो झट प्रकृतिवादी कह उठे कि यह बात सही है, आवरणके विनाशसे सर्वज्ञ बनता है लेकिन वह आवरण आत्मापर नही है किन्तु प्रकृतिपर है और प्रकृतिपर छाया हुआ आवरण नष्ट होता है तो प्रकृति सर्वज्ञ बनता है। इस विषयको समयसारमें भी शंकाकारकी ओरसे बताया गया कि कर्म ही अज्ञानी बनाता है कर्म ही ज्ञानी बनाता है। स्याद्वाद शासनका प्रमाण देकर यह सिद्ध होता कि देखो जब ज्ञानावरण कर्मका उदय होता है तब जीव अज्ञानी बनता है और जब ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता तब जीव ज्ञानी बनता है, तो कर्म ही ज्ञान कराता कर्म ही ज्ञान मिटाता और कर्म ही सुख दुःख देता। जब साता वेदनीय का उदय होता तो जीव सुखी हो गया और जब असाता वेदनीयका उदय होता तो जीव दुखी हो गया। तो ये सब सृष्टि करने वाले कर्म ही तो हैं, प्रकृति ही तो हैं। ज्ञानको भी प्रकृतिने पैदा किया और अज्ञानको भी प्रकृतिने पैदा किया। जो कुछ भी पुण्य पाप सुख दुख तरङ्ग आदिक हैं वे सब प्रकृतिका काम है। तो आवरण प्रकृति पर है, उसआवरणका विनाश होता है तो प्रकृति सर्वज्ञ बनता है और प्रकृति सर्वज्ञ है वह सिद्ध करनेके लिये फिर प्रकृतिको कर्ता बताना पड़ा। सर्वज्ञ है प्रकृति। चूँकि यह सारे विश्वकी रचना करता है, अजानकार कुछ बता नहीं सकता तो प्रकृति चूँकि सारे विश्वका निर्माण करने वाली है सो प्रकृति ही सर्वज्ञ है। इस सम्बन्धमें बहुत विवाद चला और इसका निराकरण किया। तीसरी बात यह रखी गई कि न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केवल प्रकृति करने वाली है, न केवल ईश्वर करने वाला है, किन्तु प्रकृतिका सहयोग लेकर ईश्वर सृष्टि करता है, उसका भी निराकरण किया गया कि कर्तृत्वके साधनसे किसीकी सर्वज्ञता सिद्ध नहीं होती। अन्य युक्तियाँ बनाकर कि यह कर्ता है, ईश्वर सर्वज्ञ है कर्तृत्वका ज्ञानके साथ अविनाभाव नही है। देखो इन अचेतन पदार्थों में अग्निने पानीको गर्म कर दिया तो ज्ञान न होनेपर भी कर्तृत्व तो आ गया और ज्ञान होनेपर भी कोई योगी सन्यासी समता परिणाममें विराजा है तो वह कर्ता नही बन रहा तो कर्तृत्वका ज्ञानके साथ अविनाभाव नही है। कर्ता होनेसे ही ज्ञाता कहलाये यह बात नही है।

निरावरण प्रभुमें अनन्त ज्ञान दर्शन आनन्दकी सिद्धि— ज्ञानका काम काम जानना है। ज्ञानपर जब तक आवरण छाया है तब तक उसका ज्ञान रुद्ध है और आवरण दूर हुआ कि समस्त पदार्थ समूहका जाननहार वह ज्ञान बन जाता है, और ज्ञान आत्मामें ही है ऐसी परीक्षा करने वाले बड़े बड़े विद्वानोंने मान लिया है और वह ज्ञान आत्माका ही स्वभाव है। जैसे कि अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य ये आत्माके स्वभाव हैं तो अनन्त ज्ञान इन तीन गुणोंका अविनाभावी हो है। न हो अनन्त ज्ञान तो अनन्त दर्शनका क्या स्वरूप बना? क्योंकि दर्शन कहते हैं जाननहार आत्माको प्रतिभासमें लेना। तो जब अनन्त ज्ञानसे जाननहार हो और उस अनन्त ज्ञानस्वरूपको अवलोकनमें ले तब ना अनन्त दर्शन कहलाया। और जब निज स्वरूप दर्शनमें ज्ञानमें रहे, तब आकुलताएँ दूर हों और तब अनन्त सुख प्रकट हो। और अपने स्वरूपमें अध्यात्म निर्माण रखना, कार्य करना, इसमें जो शक्तिका प्रयोग है वही अनन्त वीर्य है। तो इस प्रकार आत्मामें ये अनन्त चतुष्टय हैं, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य इन चतुष्टयात्मकताके लाभका ही नाम मोक्ष है। इस अनन्त चतुष्टयात्मकताकी प्राप्ति होना उसीको ही सिद्ध करते हैं और यह सिद्धि तब होती है जब इसका प्रतिबन्ध करने वाले कर्म दूर होते हैं। सो जिस जीवनमुक्तिमें या परम योगियोंकी विशुद्ध अवस्थामें यह परिज्ञान होता है कि वह आत्मा स्वतन्त्र है और उसमें इन गुणोंका विकास है। जब जीवन्मुक्त अवस्थामें इन अनन्त चतुष्टयोंका परिज्ञान होता है तो यह अनन्त चतुष्टय परममुक्त अवस्थामें भी है अर्थात् जहां सभी कर्मोंका और शरीरका भी वियोग हो गया वहांपर भी ये ज्ञान दर्शन सुख वीर्य पूर्णरूपसे प्रकट हैं। इस तरह ऐसा सकल ज्ञान ही परमार्थ प्रत्यक्ष कहलाता और वह परम पौरुष परमात्माके प्रकट होता है

Version 1